समभाव-समदृष्टि के
सबक़

दिनांक 02 अक्टूबर 2016 - 26 मार्च 2017

प्रकाशक
सतयुग दर्शन ट्रस्ट (रजि.)
"वसुन्धरा" ग्राम भूपानी–लालपुर रोड फरीदाबाद–121002 (हरियाणा)
ई–मेलः info@satyugdarshantrust.org
website: www.satyugdarshantrust.org
© सर्वाधिकार सुरक्षित सतयुग दर्शन ट्रस्ट (रजि.)
ISBN : 978-93-85423-08-06

प्रथम संस्करण
अप्रैल, 2017

समभाव-समदृष्टि के

सबक़

दिनांक 02 अक्टूबर 2016 - 26 मार्च 2017

सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ के अनुसार

★महामन्त्र★

साडा है सजन राम,
राम है कुल जहान

अर्थात्

ईश्वर हमारा मित्र/प्रियतम सर्वव्यापक है।

उसी को जानो,

मानो और वैसे ही

गुण अपनाओ।

शब्द है गुरु,
शरीर नहीं है।

अर्थात्

ज्ञानी को नहीं,

ज्ञान को अपनाओ ।

निमित्त में नहीं,

नित्य में श्रद्धा बढ़ाओ।

अनुक्रमणिका

क्रमांक	विवरण	पृष्ठ संख्या
1.	दिनाँक 02 अक्टूबर 2016 का सबक़	1
2.	दिनाँक 09 अक्टूबर 2016 का सबक़	15
3.	दिनाँक 16 अक्टूबर 2016 का सबक़	27
4.	दिनाँक 23 अक्टूबर 2016 का सबक़	39
5.	दिनाँक 30 अक्टूबर 2016 का सबक़	53
6.	दिनाँक 06 नवम्बर 2016 का सबक़	67
7.	दिनाँक 13 नवम्बर 2016 का सबक़	80
8.	दिनाँक 20 नवम्बर 2016 का सबक़	92
9.	दिनाँक 27 नवम्बर 2016 का सबक़	103
10.	दिनाँक 04 दिसम्बर 2016 का सबक़	117
11.	दिनाँक 11 दिसम्बर 2016 का सबक़	127
12.	दिनाँक 18 दिसम्बर 2016 का सबक़	142
13.	दिनाँक 25 दिसम्बर 2016 का सबक़	155
14.	दिनाँक 01 जनवरी 2017 का सबक़	166
15.	दिनाँक 08 जनवरी 2017 का सबक़	184
16.	दिनाँक 15 जनवरी 2017 का सबक़	198
17.	दिनाँक 22 जनवरी 2017 का सबक़	212
18.	दिनाँक 29 जनवरी 2017 का सबक़	223
19.	दिनाँक 05 फरवरी 2017 का सबक़	233
20.	दिनाँक 12 फरवरी 2017 का सबक़	246
21.	दिनाँक 19 फरवरी 2017 का सबक़	258
22.	दिनाँक 26 फरवरी 2017 का सबक़	267
23.	दिनाँक 05 मार्च 2017 का सबक़	277
24.	दिनाँक 12 मार्च 2017 का सबक़	291
25.	दिनाँक 19 मार्च 2017 का सबक़	302
26.	दिनाँक 26 मार्च 2017 का सबक़	310

दिनाँक 2 अक्तूबर 2016 का सबक़

साडा है सजन राम, राम है कुल जहान
अर्थात् ईश्वर हमारा मित्र/प्रियतम सर्वव्यापक है, उसी को जानो, मानो व वैसे ही गुण अपनाओ।

शब्द है गुरु, शरीर नहीं है,
अर्थात् ज्ञानी को नहीं ज्ञान को अपनाओ और निमित्त में नहीं नित्य में श्रद्धा बढ़ाओ।

इस पर सुदृढ़ता से डटे रह, इस अटल सत्य पर स्थिर बने रहोः-

ओ३म् अमर है आत्मा, आत्मा में है परमात्मा

आओ अब सब मिलकर बोलें
समभाव-समदृष्टि की युक्ति बेमिसाल है
अब तो होने वाला कुछ ऐसा कमाल है
सजन भाव के व्यवहार से, अब होना धमाल है।

सजनों जिसको समभाव-समदृष्टि की युक्ति और सजन-भाव का व्यवहार समझ में आ गया तो समझो वह जगत में मालोमाल हो गया। उसको फिर किसी सहारे की ज़रूरत नहीं क्योंकि वह तो अपने आप में ही स्वतन्त्र रूप से परिपूर्ण इन्सान बन गया। सजनों इस सन्दर्भ में हमें यह समझ में नहीं आता कि यह सब जानते-समझते हुए भी हम क्यों बुराई अपनाकर गरीबी खरीदते हैं और अज्ञानियों की तरह अनैतिकता पूर्ण व्यवहार करते हैं। सजनों यदि ईश्वर ने हमें अमीर बनाया है यानि अनमोल मानव चोला प्रदान कर,

संसार के सभी जीवों में सर्वश्रेष्ठ बनाया है तो उसी अमीरी में बने रहना ही हमें शोभा देता है। याद रखो अमीरी से यहाँ तात्पर्य मनुष्यों के जीवन मूल्यों से है। अतः अंतर्निहित अपनी अमूल्य निधि को जानो-पहचानो और संतोषी बन, धीरता से सब काम निष्काम करो। इस प्रकार जो भी कार्यभार कुदरत ने मनुष्य रूप में आपको सौंपा है, सच्चाई- धर्म की राह पर चलते हुए उसकी समयबद्ध सिद्धि करो। इसी सन्दर्भ में अब सुनो कि समय क्या कह रहा हैः-

सुनो, सुनो, सुनो, सुनो
समय की आवाज़ सुनो
जो समय कह रहा है
वह तो पूरी बात सुनो

मानवता में आने के लिए
विचारशील बनो और
संकल्प रहित हो जाओ
हाँ अपने प्रकाश नूं पाओ

सजनों कुदरत के इस युग परिवर्तन के संकेत को समझो और समय के साथ आगे बढ़ने के लिए जो सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में, हर मानव के लिए कलुकाल के अविचारी, दोषपूर्ण भाव-स्वभाव छोड़कर, पुनः विचारशील बनने की प्रयोगात्मक युक्तियाँ हैं उन्हें पूर्ण विश्वास व समर्पित भाव से अपनाओ। आशय यह है कि मनःशुद्धि कर अपनी उस यथार्थ आत्मिक शक्ति को पहचानो जिसके द्वारा मनुष्य अपने मन को वश में रख सकता है। अपनी इन्द्रियों को

बेलगाम घोड़े की तरह इधर-उधर दौड़ने मत दो। इस प्रकार समभाव-समदृष्टि का सबक खुद अमल में लाते हुए, अपने-अपने पख-परिवार सहित, कुल समाज को परस्पर सजन-भाव अनुसार वर्त-वर्ताव कर पाने में पारंगत बनाते हुए, एक शांत व शक्तिशाली इंसान की तरह, निष्काम भाव से अर्थपूर्ण जीवन जीना सीखो। कहने का तात्पर्य यह है कि निर्द्वन्द्व व निर्वैर बने रहने के लिए एक मानव का यथार्थ धर्म क्या है, उसे गहराई से जानो व अपने जीवनकाल में जगत से निर्लेप रहते हुए व सब कर्त्तव्य कर्म अकर्त्ता भाव से करते हुए, उसी शाश्वत मानव धर्म पर बने रहने के महत्त्व को समझो व कोई भी अन्य मनगढ़ंत धर्म मत अपनाओ। जानो इस तरह स्वतन्त्र होने पर आप के लिए अधर्म का रास्ता छोड़ सत्य-धर्म के निष्काम रास्ते पर स्थिर बने रहना सहज हो जाएगा। इसी में ही अपना व जगत का कल्याण समझो और अमानवीय चलन छोड़, अपनी खोई हुई श्रेष्ठता को प्राप्त करने के लिए पुनः विचारशील इंसान बन जाओ, इंसान बन जाओ, इंसान बन जाओ और सदाचारी बन अक्लमंद नाम कहाओ। इसी सन्दर्भ में सजनों अब ध्यान से सुनोः-

इन्सान बनो

इन्सानियत में रहने की ख़ातिर
नीयत अपनी साफ़ करो
छल-कपट करने की जगह
स्पष्टता से हर बात करो।

मोह माया से बचे रह कर
खुद के संग इन्साफ़ करो
निंदया चुगली करने वालो
अब तो खुद को माफ़ करो।

लोभ लालच को छोड़ो सजनों
संतोष में रहने की बात करो
बात-बात पर क्रोधित न हो
एह विध मन को शांत रखो।

झूठ चतुराईयाँ चोरियाँ कर-कर
जीवन भर न हताश रहो
ऐसा बुरा कर संग अपने
अपना जीवन न बरबाद करो।

अहंकार किया तो मत भूलो
विनाश होना सुनिश्चित है
नित्य स्वरूप में बने रहने का
फ़िक्र सभी दिन रात करो।

इसलिए तो कहते हैं कि:-

संतोष-धैर्य को अपनाकर
सच्चाई-धर्म की राह चलो
निष्काम कर्म करो इस जग में
और रोशन अपना नाम करो।

सजनों ऐसा सुनिश्चित करने पर जैसे ही आप अपने जीवन लक्ष्य को प्राप्त करोगे तो स्वत: ही हर सूं जय-जयकार गूँज

उठेगी। अतः ऐसे बनो हाँ, ऐसे बनो और ऐसा बनने हेतु सबको अपने साथ रखो। जानो यही सजन भाव के वर्त-वर्ताव द्वारा ख़्याल को कुसंग से बचाए रख, सजन व संगी बनाए रखने का एकमात्र तरीका है जिसके प्रभाव से आपका मन निरंतर संकल्प रहित रह सकेगा व आत्मबोध बना रहेगा।

सजनों इसीलिए विचारशील मंडली के गठन का प्रयोजन आवश्यक समझा गया ताकि समभाव-समदृष्टि का सबक अपना कर, सजन भाव अनुरूप आचार-विचार व व्यवहार में निपुणता से ढलने का जो कार्य इतने समय से सिद्ध नहीं कर पाए, उस कार्य की सिद्धि हेतु, निरन्तर यत्न द्वारा उचित विचारधारा में ढल सको व निर्मल वृत्ति, स्मृति व बुद्धि होकर, आत्मीयता के भाव-स्वभाव अनुसार जीवन जीने योग्य बन, सतयुग में प्रवेश कर सको। जानो यह उच्च बुद्धि, उच्च ख़्याल हो आत्मविश्वास के साथ आत्मनिर्भरता से जीवन जीने की बात है। ऐसे श्रेष्ठ पुरूष बनकर अपने जीवन का हर कर्त्तव्य-कर्म, सच्चाई-धर्म से निष्पादित करते हुए, परमपद प्राप्त करो। यही तो सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में इस प्रकार लिखा हुआ हैः-

इक समझ लवो कुल दुनियां अन्दर आ आ आ आ
ते दूजा राहवे न नामो निशान सजनों
फ़र्ज़ अदा वल्लों जित पाये के ते
पहुँच जाओगे परमधाम सजनों।।

सजनों यह समस्त द्वि-द्वेष समाप्त कर, समभाव नज़रों में

कर, सबके प्रति समान नज़रिया अपनाने की बात है।

इस सन्दर्भ में सजनों विचारशील बनने के लिए सबसे पहले हमें, अपने नित्य आत्म स्वरूप व नश्वर शारीरिक स्वरूप की क्षमताओं को जानना है व उनके सामंजस्य द्वारा, अर्थपूर्ण जीवन जीने हेतु, अपनी शारीरिक, मानसिक व बौद्धिक शक्तियों से परिचित होना है। इस प्रकार उनका युक्तिसंगत सदुपयोग करते हुए, हमने कैसे समभाव-समदृष्टि की युक्ति को, सजन-भाव के व्यवहार द्वारा परिलक्षित करना है, उस विधि को गहराई से समझना है। तदुपरांत वैसे ही मनुष्यत्व की मर्यादाओं में बने रह, इस शरीर रूपी मशीनरी का सदुपयोग करते हुए अपने जीवन के सभी कर्त्तव्य कर्मों को निर्भयता से धर्मसंगत निष्पादित करना है। सजनों निश्चित ही ऐसा करने पर हम, परमार्थ का रास्ता छोड़, स्वार्थपरता के रास्ते पर चढ़ने के कारण, जो भी भूलें आज तक करते आए हैं व अच्छे-बुरे कर्मों के फलस्वरूप उनका दुःख-सुख भोग रहे हैं, उन शारीरिक भाव-स्वभावों से ऊपर उठ, निरंतर आत्मीयता के भाव-स्वभावों में, एक नेक इंसान की तरह बने रह सकेंगे और यथार्थ में इस अनमोल जीवन का आनन्द उठा सकेंगे।

इस संदर्भ में सजनों हमें सावधान रहना होगा कि किसी भी कारण हम, संतोष-धैर्य व सच्चाई-धर्म के निष्काम रास्ते से विमुख हो, परोपकार प्रवृत्ति अनुसार, हर कर्त्तव्य-कर्म समयबद्ध निभाने के स्थान पर, काम, क्रोध, लोभ, मोह,

अहंकार अपनाकर हार न खा बैठें। इस तरह फिर वैसे ही दुराचारिता पूर्ण व्यवहार का प्रदर्शन करते हुए, अपने बच्चों व परिवारजनों के मन में भी, वही दुराचारी, व्यभिचारी भाव भर उन्हें सदाचारिता के रास्ते पर अग्रसर करने के स्थान पर, दुराचारिता में न फँसा दें। सजनों ऐसा इसलिए कह रहे हैं क्योंकि सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ के अनुसार काम जिसका परिवार है कामना, सब विषय-विकारों में लिप्ती की जड़ है। इसी के कारण कामुकता का भाव अन्दर पैदा होता है और नाना प्रकार की इच्छाओं की पूर्त्ति की लालसा मानव के अन्दर जागती है। इस लालसा की पूर्त्ति होने पर अन्दर लोभ-मोह और न पूरी होने पर क्रोध उत्पन्न होता है। ऐसा विकारी, नादान व नासमझ कमज़ोर इंसान, फिर विवेकहीन हो, भले-बुरे, अपने-पराए, बड़े-छोटे व सही-गलत की पहचान नहीं कर पाता इसीलिए मनमत पर चलने वाला वह असंतोषी, अहंकारी मानव बन जाता है। संक्षेपतः हम कह सकते हैं कि दीमक की तरह, कामुकता का यह रोग जिसके भी मन/हृदय को लग जाता है, शनैः-शनैः यह अन्दर ही अन्दर उस मानव के अंग-प्रत्यंग का क्षय करते हुए, उसकी शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक व आत्मिक स्वस्थता का भक्षण कर, उसे अन्दर ही अन्दर से खोखला बना देता है। तभी तो मानवीय गुणों से अपरिचित ऐसा इंसान निज धर्म हार सांसारिकता अपना बैठता है। ऐसे इंसान के संदर्भ में ही सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया है:-

साजन जी देखो पब्लिक उपरों तां पा रही सूट साड़ियाँ।

पर हृदय अन्दरों ते निगाह आ रहियां खोखलियां ओ सारियाँ।।
बाहर ते कोट पतलून पावो नाले लावो टाई।
जीवन अपना नहीं बनाया उमरां ऐवें गंवाई, उमरां ऐवें गंवाई।।
जन्म दी बाज़ी जितनी सजनों हार तुसां क्यों खाई
सजनों हार तुसां क्यों खाई।

स्पष्ट है सजनों कि जगत के विषयों में मदहोश हुआ इंसान, अपनी होश-हवास खो बैठता है और मानवता का भाव उस मानव के अन्दर से लुप्त हो जाता है। इस प्रकार उस बहिर्मुखी अमानव की दृष्टि की कंचनता, ख़्याल की स्वच्छता व जिह्वा की स्वतन्त्रता भंग हो जाती है और फिर वह विकृत मानसिकता वाला गँवार मानव सबके सम्मुख ऐसा अशिष्ट व्यवहार दर्शाता है कि अपने समेत सबका सम्मान गँवा बैठता है व अपने बिन दागों चोले को दाग लगा बैठता है। सजनों इतना सब होने पर भी, वह क्या कर रहा है उसे कुछ समझ नहीं आता है। याद रखो ऐसा होना या होने देना कर्त्तव्यपरायणता के भाव के विरूद्ध है और अपने साथ जुड़े मानवों को अपनी ही लापरवाही या मूर्खता के कारण, मानवता धर्म से भटका, दानवीय कर्म करने की लत में, फँसाने की बात है। इस परिप्रेक्ष्य में हम मानते हैं कि युग पुरुषों की शिक्षाओं के बावजूद भी, यह गलती युगों से, मानवों द्वारा पीढ़ी-दर-पीढ़ी हो रही है और परिणामस्वरूप आज का मानव, मानवता से भटक, पापाचरण करता हुआ, नरकों में गिरने के लिए, पाप की अंतिम सीढ़ी पर खड़ा है। परन्तु सजनों यहाँ यह भी स्वीकार्य है कि अगर समय रहते ऐसे मानवों को न रोका गया तो उनकी चारित्रिक गिरावट सबको हैरान-परेशान कर देगी और फिर उस विनाश का

दृश्य देखने पर, पछतावे के सिवाय किसी के हाथ कुछ नहीं लगेगा। तभी तो सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ हम सजनों को कह रहा है:-

हुण वक्त, तुसां सम्भलो सजनों फिर वक्त नहीं आना जे।
जन्म दी बाज़ी हार बैठे फिर उमरां पछोताना जे,
फिर उमरां पछोताना जे।।

अतः हममें से किसी के साथ ऐसा न हो उसके लिए ही विचारशील बनने का आवाहन दे, विचारशील मंडली का गठन करना उचित माना गया है ताकि हम सभी सजन, समय रहते ही अविचार का कवलड़ा रास्ता छोड़, विचार का सवलड़ा रास्ता अपना लें। सजनों कलुकाल की मार से बचने व अपना जीवन बनाने हेतु, यह पुरुषार्थ दिखाना आवश्यक समझो। इस हेतु, ब्रह्म-जीव-जगत के सत्य की रमज़ समझ, निर्विकार, निर्भय, निर्वैर, निरासक्त, निष्कलंक जीवन व्यतीत करने के लिए 'अमर है मेरी आत्मा, आत्मा में है परमात्मा' इस सत्य का बोध करते हुए 'शब्द गुरु करो प्रवान'। इस प्रकार मन को परमेश्वर में लीन रखते हुए यथार्थता जान जाओ कि एक श्रेष्ठ मानव के रूप में जीवन जी पाने के लिए किस प्रकार का नज़रिया व चलन अपनाने का आवाहन दे रहा है मंत्र 'साडा है सजन राम, राम है कुल जहान'।

सजनों इस शुभ बात को समझो और विचारशील बन, अपने, अपने परिवारजनों, समाज व पूरे जगत का उद्धार करने के निमित्त, ईश्वर प्रदत्त विशेष विवेकशक्ति रूपा गुण का उचित

ढंग से प्रयोग करते हुए यथाशक्ति जो कुछ भी आपके लिए करना संभव है, वह शांति से व निष्काम भाव से प्रसन्नतापूर्वक करो। इस प्रकार व्यवहारिक रूप में एक सदाचारी की तरह जीवन जीते हुए, कुल समाज के लिए ऐसा आदर्श स्थापित करो कि, इस जगत में हर मानव, सांसारिकता के स्थान पर आत्मिक ज्ञान धारण करने को तत्पर हो जाए व तदनुरूप आत्मीय व्यवहार में बने रहने हेतु, तन-मन-धन वारने से भी न सकुचाएँ। इस तरह इस धरा पर पुनः कलियुग की जगह सतवस्तु का राज लौट आए।

सजनों सजन श्री शहनशाह महाबीर जी के द्वारे पर होते हुए हम विचारशील न बन पाए तो यह हमारे लिए बहुत शर्म व दुर्भाग्य की बात होगी व इसके परिणामस्वरूप हमें यम की त्रास भुगतनी पड़ेगी। इसलिए अपने सहित सबको विचारशील बनाने के मिशन यानि उद्देश्य को आगे बढ़ाने व उसमें सफ़लता प्राप्त करने के लिए, परोपकार की भावना से ओतप्रोत हो, निष्कामता से अधिक से अधिक सजनों को विचारशील बनने के लिए प्रोत्साहित करना होगा। इसमें सजनों यथा सामर्थ्य अपना-अपना योगदान देने हेतु सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में विदित शब्द ब्रह्म विचारों को पढ़-समझ कर अन्यों को उनके अर्थों से अवगत कराने योग्य बनना होगा व तद्नुसार आचार-व्यवहार अपनाने के लिए प्रेरित भी करना होगा ताकि हमारे सहित सभी मानव सत्यनिष्ठ व धर्मपरायण बन सकें। सजनों अगर हम त्रेता युग से झुखने-रोने के स्वभाव में उलझे हुए मानव हकीकत

में मुक्ति पा सीधे रास्ते पर आना चाहते हैं तो हमें सुनिश्चित ही अविलम्ब बुद्धिमत्ता से समभाव-समदृष्टि की युक्ति अनुसार, सजन-भाव अपनाना होगा। याद रखो यह शुभ कार्य सर्वप्रथम अपने व अपने परिवारजनों से आरम्भ करना होगा।

सभी सजनों की जानकारी के लिए, अर्थपूर्ण जीवन जीने हेतु, हमें विचारशील बन कैसे कर्त्तव्यपरायण बनना है इन दोनों विषयों पर ध्यान-कक्ष में आगामी कक्षाओं में पूरी तरह से बताया व युक्तिसंगत समझाया जाएगा। अतः विचारशील बनने के संदर्भ में इस विषय को ध्यान से सुनना-समझना। याद रखना इस बात का लाभ उठा कर सजन-पुरुष बनना, हर सजन के व्यक्तिगत प्रयत्न पर ही निर्भर करता है। इसलिए याद रखोः-

वक्त है अखीरी छडो कलुकाल दियां कुरीतियाँ,
कलुकाल दियां कुरीतियाँ।
मनुं हटा दियो कलुकाल दीयां यादगीरियां,
कलुकाल दीयां यादगीरियां।।

घड़ा तुआडा ए होना है ठा, कोई विरला बच जाऊगा।
ओ इन्सानों कलुकाल ने खून पीता है बहुतेरा जी,
ओ पीता है बहुतेरा जी अपनी इन्सान बाज़ी जितने दा वेला जी,
ओ जितने दा वेला जी।।

हनुमान जी दे वचनां ते जा,
नहीं ते फेर पछताऊगा, फेर पछताऊगा।

सजनों इस मंगल कार्य की सिद्धि में कमज़ोर पड़ हममें से किसी को भी पछताना न पड़े इस हेतु सतवस्तु के कुदरती

ग्रन्थ में विदित श्री साजन जी के मुख के इन शब्दों को सदा याद रखो व ठीक उसी प्रकार अर्थपूर्ण जीवन जीना आरम्भ कर दो :-

विचार ईश्वर आप नूं मान।
अवविचार ईश्वर इक जान।।
विचार इक अपना आप ही मान।
अवविचार कुल दुनियां जान।।
विचार करो है ईश्वर अपना आप।
अवविचार ईश्वर है इक साथ।।
ईश्वर है अपना आप प्रकाश।
ईश्वर है जे अजपा जाप।।

अविचार जेहड़ा चलदा है सजन,
चार चुफ़ेर हार ओ खांदा है।
विचार है जित तुम्हारी ओ सजनों,
हर पासियों ओ जितदा रैंहंदा है।।
अवविचार है जे कवलड़ा रस्ता,
हर पासियों ओ ठोकरां खांदा है।
विचार है जे सवलड़ा रस्ता,
सदा ही ओ जितदा रैंहंदा है।।

शब्द

हम तो हैं आज़ाद, हुण किसदी सुनूं फ़रियाद,
सजनों हुण किसदी सुनूं फ़रियाद।
एहो फ़रियाद है जे अपनी कमाई,
एहो कमाई करो सजनों सुखदाई,
सजनों करो सुखदाई।।

अंत में हम ईश्वर से प्रार्थना करते हैं कि वह हम सबको इस सुखदाई कार्य की सिद्धि हेतु बल, बुद्धि व शक्ति बख़्शें ताकि हम सभी सुमति में आ इसी जन्म में ही अपने जीवन की बाज़ी जीत लें और रोशन नाम कहाएं। इस सन्दर्भ में अब समभाव-समदृष्टि की युक्ति से क्या कमाल होने वाला है वह ध्यान से सुनोः-

बाँसुरी की तान है
ढोलक की ताल है
अब तो होने वाला
कुछ ऐसा कमाल है।

तभी तो, तभी तो..... कहते हैं, कहते हैं....
समभाव-समदृष्टि की युक्ति बेमिसाल है

समभाव अपनाकर जो सजन
समदृष्टि हो जाता है
सजन-भाव मन में अपनाकर
दिव्य पुरूष कहलाता है।।

उसके लिए तो सर्गुण निर्गुण
दोनों एक हो जाते हैं
अच्छा हो या बुरा हो कोई
दोनों एकरस भाते हैं।।

सच्चाई-धर्म राह होती है उसकी
निष्काम कर्म वह करता है
शक्तिशाली इतना है होता
कि मौत से भी नहीं डरता है।।

तभी तो कहते हैं सबसे
समभाव अपनाओ जी
थोड़ी सी मेहनत करके
समदृष्टि हो जाओ जी।।

सजनों जानो कि समभाव-समदृष्टि का सबक नहीं है औखा। जो भी हिम्मत कर इसे अपनाता है, वह सौखा हो जाता है और बिन तकलीफों बिन खेचलों अपने स्वरूप को पा, ज्योति नाल जोत हो जाता है।

इन्हीं शुभकामनाओं के साथ।

दिनाँक 9 अक्तूबर 2016 का सबक़

आओ अर्थपूर्ण जीवन जीना सीखें

साडा है सजन राम, राम है कुल जहान

अर्थात् ईश्वर हमारा मित्र/प्रियतम सर्वव्यापक है, उसी को जानो, मानो व वैसे ही गुण अपनाओ।

शब्द है गुरु, शरीर नहीं है,

अर्थात् ज्ञानी को नहीं ज्ञान को अपनाओ और निमित्त में नहीं नित्य में श्रद्धा बढ़ाओ।

ऐसा इसलिए कह रहे हैं क्योंकि यदि ज्ञान के स्थान पर ज्ञानी को अपना लिया तो अर्थपूर्ण जीवन नहीं जी पाओगे। अन्य शब्दों में जब ज्ञान को अपनाना शुरू करोगे और ज्ञानी में नहीं उलझोगे तब ही अर्थपूर्ण जीवन जीने का महत्त्व समझ में आएगा क्योंकि तब आपके जीवन का वाहक यानि सारथी ज्ञान होगा। ज्ञान का मतलब है प्रकाश जो जीवन का सही व स्पष्ट मार्ग दर्शाता है। याद रखो ज्ञान का अर्थपूर्ण प्रयोग ही, व्यक्ति को सीधे रास्ते पर ले जाता है। अतः इस संदर्भ में अत्यन्त सावधानी व समझदारी से काम लेने की आवश्यकता है अन्यथा ज्ञानी में उलझ कर आत्मविश्वास खो बैठोगे। याद रखो कोई भी ज्ञानी कभी भी हर प्रकार से न तो परिपूर्ण हो सकता है और न ही हर समय उपलब्ध हो सकता है। परिपूर्णता का ज्ञान यदि प्राप्त करना है तो मन को परमेश्वर में लीन रखते हुए अंतर्निहित शब्द गुरु से ही प्राप्त कर सकते हो। अतः उसी सत्यज्ञान को प्राप्त करना व

अपनाना सीखो। इस तरह सदा अभिन्नता के भाव में बने रह सकोगे और बिना किसी हस्तक्षेप के प्राप्त ज्ञान का शक्तिशाली होकर सर्वहित के लिए उचित ढंग से इस्तेमाल कर सकोगे। यही तो उत्तम पुरुष बनने की बात है।

इस पर सुदृढ़ता से डटे रह, इस अटल सत्य पर स्थिर बने रहोः-

ओ३म् अमर है आत्मा, आत्मा में है परमात्मा

सजनों क्या आप सब जानते हो कि कौन अपने जीवन का उद्देश्य सिद्ध करने में सफ़ल हो सकता है?

जो निज स्वरूप में यथा स्थित बना रह, जीवन का परम अर्थ जानते हुए, एक सर्वश्रेष्ठ मानव की तरह, अर्थपूर्ण जीवन जीता है, वही परमार्थी धन यानि जीव और ब्रह्म सम्बन्धी सत्य आत्मज्ञान से सम्पन्न, उत्तम भाव वाला परोपकारी व्यक्ति, सदा प्रसन्नचित्त रहने के कारण अपने जीवन का उद्देश्य धीरता से सिद्ध करने में सफल होता है। कहने का आशय यह है कि जिसके अन्दर इस अनमोल मानव जीवन के इस प्रयोजन की कि मैं क्या हूँ, और मेरा जन्म क्यों हुआ है, इस सत्य की प्रतीति बनी रहती है और जो केवल उसी की सिद्धि हेतु, शास्त्रविहित् विचारों के अनुरूप जीवन के हर पल का सकारात्मकता से, सदुपयोग करने में अपना उद्धार समझता है, वह अक्लमंद संतोषी यानि अपने आप में सम्पन्न व परिपूर्ण व्यक्ति निश्चित ही अपने जीवन का परम अर्थ सिद्ध कर लेता है। इस तरह वह आत्म निर्भर होकर, आत्मविश्वास के साथ अपने आत्मबल का प्रयोग करने में सक्षम हो जाता है।

इससे सजनों स्पष्ट होता है कि जीवन के अर्थ की गंभीरता व गहराई को समझने वाला वह मानव, जीवन के अर्थगत रहते हुए, वैसा ही अर्थयुक्त जीवन जीने में गौरव का अनुभव करता है। यही नहीं वह अच्छी-बुरी परिस्थितियों अनुसार अपने जीवन का उद्देश्य बदलते रहने के स्थान पर परिस्थितियों को अपनी प्रयोजन सिद्धि अनुसार परिवर्तित कर अपने लक्ष्य की ओर निरंतर आगे बढ़ता रहता है तथा जीवन रहते ही उसे प्राप्त करने में सफ़ल हो, अन्य भूले-भटके जीवों के लिए भी प्रेरणा का स्रोत बनता है।

तभी तो वह स्थिर मानसिकता वाला वास्तव में बुद्धिमान इंसान कहलाता है। फिर उस आत्मज्ञानी, परोपकारी इंसान को कोई भी सांसारिकता में उलझा व स्वार्थपर बना, सच्चाई-धर्म के निष्काम रास्ते से भटका, अर्थहीन रास्ते पर नहीं चढ़ा सकता। निश्चित ही सजनों ऐसा व्यक्ति यह जानता है कि जीवन के अर्थ की जानकारी के अभाव के कारण ही, जीवन में अनेक प्रकार के कष्ट उठाने पड़ते हैं और इसी कारण मन में नाना प्रकार की ऐसी कामनाएँ उठती हैं जिनकी पूर्ति के लिए भिक्षुक की तरह दर-दर भटकना पड़ता है। परिणामस्वरूप वह सांसारिक सुखों में लिप्त दुःखी असंतोषी मानव, परमार्थ की जगह स्वार्थ के रास्ते पर चलना आरम्भ कर देता है। यह अपने आप में नाना प्रकार के विकार यानि काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार जैसी विनाशकारी वृत्तियाँ अपनाने की बात होती है। तभी तो वह विकृत मानसिकता वाला इंसान मन के अधीन हो इस नकली दुनियां का गुलाम बन कर रह जाता है और अचेतन

हो अपने जीवन के असली मकसद यानि परम लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर पाता। अतः इस सत्य को दृष्टिगत रखते हुए परमार्थ के रास्ते पर चलने वाला वह इंसान सावधानी से शास्त्र सम्मत जीवन जीता है और अपने जीवन की सरसता को साकार कर लेता है।

निःसंदेह जीवन के पूर्ण अर्थ का ज्ञान देने वाले आत्मज्ञान रूपी तत्व के प्रयोग द्वारा ही उसके लिए ऐसा कर पाना संभव होता है। इसीलिए वह आत्मिक ज्ञान की अर्थकारी शिक्षा ग्रहण करने को प्राथमिकता देते हुए, मनःसंतोष प्राप्त करने हेतु जीवन में हर काम सर्वहित के लिए करता है। इस संदर्भ में सजनों याद रखो कि शब्द जीवन में नहीं उतरता अपितु धारण होता है। उस शब्द विशेष का अर्थ जीवन में उतरता है। शब्द परमेश्वर के मुख की वाणी है और वह धारण करने योग्य है और उसका अर्थ समभाव-समदृष्टि की युक्ति द्वारा व्यवहार में लाने योग्य है। पुरुषार्थ द्वारा ख़्याल को अफुरता से इस लक्ष्य प्राप्ति की ओर बढ़ाने की आवश्यकता है। याद रखो जो यह पुरुषार्थ दिखाता है उसके जीवन में किसी प्रकार की कमी न आती है और न ही उसे कोई कमी खलती है।

फलस्वरूप इस संसार में कुछ भी अर्जित करने संबंधी संकट पैदा हो उसके मन को अशांत नहीं करता और उसका ख़्याल व पुरुषार्थ कभी भी अपने परम उद्देश्य पूर्त्ति से भटक सांसारिक धन-संपत्ति के संग्रह व इन्द्रिय विषयों आदि के चक्कर में नहीं फँसता। इसीलिए तो मन की इस अंतर्द्वन्द्व रहित, शांत अवस्था में वह समभावी सभी के साथ

समदर्शिता अनुरूप सजनता का व्यवहार करता है और अपने जीवन का उद्देश्य पूर्ण करने के लिए किसी की निंदा-उस्तत नहीं करता। याद रखो यह भगवान की सर्वव्यापकता के सत्य को चरितार्थ करने की बात होती है जिसके फलस्वरूप वह जीवन का अर्थदर्शी मानव अपने मन-वचन व कर्म द्वारा जो कुछ भी करता है वह सबके लिए उपयोगी, लाभप्रद व सुखदायक होता है।

संक्षेपतः सजनों अर्थपूर्ण जीवन जीने हेतु अब संसारी कनरस छोड़ दो व निंदा-चुगली के रूप में व्यर्थ की बातें करना बंद कर दो और इसके स्थान पर ईश्वर के वचनों की मननकारी का चलन अपना लो। जीवन में अब जो भी करो उचित-अनुचित का भली-भांति विचार करके ही करो। तकरार का स्वभाव अपनाकर अपनी उन्नति में बाधक मत बनो, अन्यथा परिणाम अच्छा नहीं निकलेगा। अन्य शब्दों में जो बोलो जाँच-तोल कर बोलो। जैसा आदर व व्यवहार आप अपने प्रति दूसरों से अपेक्षित करते हो वैसे ही सबके साथ करो। इस तरह सर्वव्यापक ईश्वर को हाज़िर नाज़िर जानते हुए, परस्पर बराबरी के भाव से इस जगत में एकता से विचरो। याद रखो यदि मात्र इतना ही अपने स्वभाव के अंतर्गत कर लोगे तो अर्थपूर्ण जीवन जीने में किसी कठिनाई का सामना नहीं करना पड़ेगा।

इस संदर्भ में सजनों यह भी जान लो कि ऐसा व्यक्ति कभी भी न तो निरर्थक विचार अपनाता है और न ही व्यर्थ की बातों में अपना जीवन व्यर्थ गँवाता है। अन्य शब्दों में वह अपने जीवन का एक पल भी फ़िज़ूल खर्च नहीं करता

क्योंकि वह मानता है कि जीवन के अर्थ की प्राप्ति के प्रति कमज़ोर पड़ना यथार्थता से विपरीत चलन अपनाने की बात है। इस तरह वह जीवन में कोई भी ऐसा काम करने को अनुचित मानता है जिससे कर्मफल के रूप में अर्थहीन जीवन जीने का दंड उसे भुगतना पड़े। उसकी मानना के अनुसार इस क्षति पूर्त्ति हेतु उसे जन्म-जन्मांतर तक इस मृतलोक में भटकना पड़ सकता है। इसी तथ्य को दृष्टिगत रखते हुए वह कभी भी किसी संसारी प्रयोजन की पूर्ति के लिए भक्ति नहीं करता और न ही अपने जीवन मे अनुचित ढंग से कुछ ऐसा करता है जिससे उस पर कोई दोषारोपण हो। अन्य शब्दों में तभी तो वह कदाचित् धन-जोड़ने के लिए लोभी तथा क्रूर व्यक्ति की तरह पिशाचों के समान अमानवीय कार्य व व्यवहार नहीं करता। यह अपने आप में स्वार्थपरता से बचे रह मज़बूती से सच्चाई-धर्म के निष्काम रास्ते पर बने रह अमीरों से भी अमीर अवस्था को प्राप्त हो आत्मतुष्ट होने की बात होती है।

सारतः सजनों हम कह सकते हैं कि ऐसा अर्थपूर्ण जीवन जीने वाला व्यक्ति, किसी अन्य प्रकार का जीवन उद्देश्य लेकर जीवनयापन करने को, अपने निर्विकारी स्वरूप को विकृत कर, अपनी जीवन शक्ति की क्षीणता के कारण अचेतन अवस्था को प्राप्त हो, यथार्थ जीवन लक्ष्य सिद्ध करने में बाधक मानता है। यह मनुष्यत्व की प्रतिष्ठा से गिरने की बात होती है। इसीलिए तो वह जीवन की अर्थ सिद्धि यानि मोक्ष प्राप्ति हेतु आजीवन ईमानदारी से शुद्ध बना रहता है और सदा परस्पर सत्य अनुरूप व्यवहार करता है। इस तरह वह सत्यनिष्ठ व धर्मज्ञ व्यक्ति अभीष्ट उद्देश्य की प्राप्ति

कर, हर मानव के कल्याण हेतु, अपने मन-वचन-कर्म द्वारा समभाव-समदृष्टि की युक्ति अनुसार परस्पर सजन-भाव का वर्त-वर्ताव करने के लिए प्रेरित करता है। सजनों हम सब भी अपने जीवन का परम लक्ष्य इसी जीवन में प्राप्त कर सकें, उसके लिए हमें भी समभाव-समदृष्टि की युक्ति अपनाकर, परस्पर सजनता का व्यवहार करने में किसी प्रकार से भी कमज़ोर नहीं पड़ना होगा।

इस संदर्भ में सजनों जानो कि सच्चेपातशाह जी ने कलुकाल के समयकाल में ही, घर-परिवार व समाज की कठिन परिस्थितियों के होते हुए भी, उन परिस्थितियों के जीवन पर पड़ने वाले दुष्प्रभावों से मुक्त रह अर्थपूर्ण जीवन जी पाने का आदर्श सबके सामने रखा। उन्होंने अपने पुरुषार्थ से जो कुछ भी प्राप्त किया वह सब अन्दर से ही प्राप्त किया। इस परिपूर्णता के परिणामस्वरूप उनके मन से एक तो संसारी इच्छाओं का दमन हुआ और दूसरा निष्काम भाव से परोपकार करने की प्रवृत्ति पनपी। इस तरह अन्दरूनी वृत्ति में उन्हें जो भी दिव्य संपत्ति प्राप्त हुई उसे सर्वहित हेतु जगतवासियों को बाँटने में ही उन्होंने प्रसन्नता का अनुभव किया। हम कह सकते हैं कि ईश्वरीय नीति-नियमों की मर्यादा में सुदृढ़ता से बने रह उन्होंने अपने सहित अन्य जीवों को भी सच्चाई-धर्म के निष्काम रास्ते पर कुशलता से आगे बढ़ाने का पुरुषार्थ दिखाया और अपने साथ-साथ कई जीवों का जीवन उद्धार करके उनका भी भला किया। सजनों यही कारण था कि परमेश्वर को प्रसन्न कर वह, तीनों कालों की जानने वाले, स्थिरता व त्याग भावना से अर्थपूर्ण जीवन जी पाए और संसारिक भयावह

परिस्थितियों में उलझने के स्थान पर, अन्यों को भी सजन-पुरुष बनने हेतु नवनिर्माण के रास्ते पर चढ़ा पाए। इसी तरह सजनों उन्होंने कलुकालवासियों को समभाव-समदृष्टि का सबक पढ़ा सतवस्तु जो आने वाली है उसके अनुकूल स्वाभाविक ताना-बाना बुन, मानसिक रूप से तैयार किया और आत्मीयता में बने रह अपने शरीर को जीवन के परम अर्थ की सिद्धि हेतु सजन-भाव का सही मायने में प्रयोग करने का उचित तरीका समझाया व उसी पर स्थिर बने रहने का आवाहन दिया।

सजनों हम भी ऐसा अर्थपूर्ण जीवन जीने के प्रति उत्साहित हों इस हेतु आदि, अनादि, परमादि, युग-युग विच खेडां खेडन वाले, सूरजां दे सूरज, सब जगह पहले ही प्रकाशित, सच्चेपातशाह जी ने, कुएँ में पड़े हुए जीवों की पुकार सुन कर, दुनियाँ का भार उतारने के लिए, अपने पावन जीवन चरित्र के रूप में दुनियाँ के सामने यह सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ रखा। इस ग्रन्थ के विचारों द्वारा उन्होंने कलियुग का घोर अंधकार मिटा दिया और दुनियाँ में चानणा लाकर दुःखी जीवों का उद्धार किया। इस हेतु उन्होंने सर्वप्रथम आप गुरु-चेले के बन्धन में से निकल कर, सजन श्री शहनशाह हनुमान जी की युक्ति लेकर, शब्द गुरु मान कर दिखाया और फिर वही स्वतन्त्र युक्ति सबको अपनाने का आवाहन दिया ताकि सब मैं-तूं का भेद मिटा कर, आवागमन के चक्कर से आज़ाद हो जाएं। यही नहीं अपने प्रयोजन में सफ़लता प्राप्त कर सबको उत्साहित करने के लिए उन्होंने कुदरती साईंस के तजरबों द्वारा कईयों की शरीर रूपी मशीनरी के काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार के पुर्ज़े

निकाल कर, संतोष, धैर्य, सच्चाई, धर्म के पुर्ज़े लगाए और ख़्याल को पलटा खवा कर शरीर रूपी मशीनरियों को ठीक किया। इस तरह कुदरती साईंस के द्वारा उन्होंने घर बैठे ही दुनियां वालों को सूरज लोक, चन्द्र लोक, वरूण लोक, शिवपुरी, ब्रह्मपुरी, इन्द्रपुरी, कुबेरपुरी, देवपुरी, सर्गुण, निर्गुण, निर्वाण, परमधाम के नज़ारे दिखाए और आकाशों, आकाश, पातालों-पाताल, जनचर, बनचर, जड़-चेतन में एक जोत का नज़ारा दिखा के कईयों को अपने साथ मिलाया और उनके जीवन बनाए। सजनों सतवस्तु की रचना रचा कर उन्होंने कईयों को तारा, कईंयों को सँवारा और सारे ब्रह्मांड में शान्ति और शक्ति का झंडा लहरा दिया।

सजनों उनकी परोपकार प्रवृत्ति की महानता देखो जो उन्होंने बाल अवस्था व युवावस्था की भक्ति-भाव की स्पष्टता देते हुए कुल सगली को तारने के लिए समभाव-समदृष्टि की युक्ति बताकर उस युक्ति पर सजनों को खड़ा करने के लिए यानि सजन-भाव का सबक पढ़ाने के लिए समभाव-समदृष्टि का स्कूल ही खोल दिया। इस स्कूल के माध्यम से वह अब भी सजनों को समझा रहे हैं कि गृहस्थाश्रम में रहते हुए व फ़र्ज़ अदा ठीक से निभाते हुए विचार शब्द में खड़े होकर जीवन बनाओ। तभी युक्ति की प्रवानगी द्वारा दिव्य दृष्टि लेकर तीनों कालों की पहचान कर सकोगे और अविचार को मिटा कर विचारवान बन सकोगे। इस तरह सजनों सच्चेपातशाह जी अब भी रोतों को हँसा रहे हैं, उजड़ों को वसा रहे हैं, सोते हुओं को जगा रहे हैं, कुरस्ते पड़े हुओं को रास्ते पर ला रहे हैं और कई जन्मों के बिछड़े हुओं को अपना आप दिखा कर आत्मस्वरूप से मेल खाने का

तरीका बता रहे हैं। तभी तो सजनों सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ कह रहा है:-

श्री साजन जी के मुख के शब्द

सर्व राम रूप दिस्सां, सर्व है स्थान मेरा।
सर्व जोत मेरी जगे, जगमगे जहान जेहड़ा,
सर्व राम रूप दिस्सां।।

राम रूप हां घट घट वासी, राम रूप हां सर्व निवासी।
राम रूप मन मन्दिर सुहावा, राम हर अन्दर रहावा।।

सर्व राम रूप दिस्सां, सर्व है स्थान मेरा।
सर्व जोत मेरी जगे, जगमगे जहान जेहड़ा,
सर्व राम रूप दिस्सां।।

श्री हनुमान जी कह रहे हैं

श्री राम दा दीदार है जे हीरा अनमोल ओय।
गरूड़ उत्ते साजन आये, श्री राम जी दे कोल ओय।
शिव ब्रह्मा दी चिट्ठी आई, हनुमान जी सुनाई ए।
साजन जी फ़र्स्ट निकले, श्री राम नू वधाई ए।।
सारी नगरी विचों फ़र्स्ट निकले, श्री राम नू वधाई ए।।
साजन जी फ़र्स्ट निकले, श्री राम नू वधाई ए।।
बात बताई श्री राम जी, सुनाई हनुमान जी।
जोत मेरे साजन जी दी जग रही महान जी।।
फ़र्स्ट निकले देश देशान्तर जोत जगे कुल जहान जी।
जोत मेरे साजन जी दी जग रही महान जी।।

इस पदवी ते कोई मुश्किल जावे,
जेहड़ी पदवी साजन जी ने पाई ए।
शहनशाह ओ नगरी ऊपर, त्रिलोकी जैंदी शरणाई ए।
त्रिलोकी जैंदी शरणाई ए, त्रिलोकी जैंदी शरणाई ए।
शहनशाह ओ नगरी ऊपर, त्रिलोकी जैंदी शरणाई ए।
हनुमान जी ने बात बताई, श्री राम जी ने खोल सुनाई।
हो जी चतुर्भुजधारी, हर अन्दर है जोत तुम्हारी।
हर अन्दर है जोत तुम्हारी, हर अन्दर है जोत तुम्हारी।
हो जी चतुर्भुजधारी, हर अन्दर है जोत तुम्हारी।
श्री राम चन्द्र जी ने बाजा ओ दित्ता ए बजा।
आद अन्त ए जोत प्रकाशे, प्रकाश ओ रही जे दिखा।।
प्रकाश ओ रही जे दिखा, प्रकाश ओ रही जे दिखा।
आद अन्त ऐ जोत प्रकाशे, प्रकाश ओ रही जे दिखा।।

ध्वनिः-- हो जी चतुर्भुजधारी, हर अन्दर है जोत तुम्हारी।।

हमें भी सजनों सच्चेपातशाह जी के परम पवित्र जीवन चरित्र से प्रेरणा ले, सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ नियम से पढ़ते-समझते, यथार्थपूर्ण जीवन जीने हेतु उसमें वर्णित नीतियों का विचारयुक्त होकर पालना करने के योग्य बनना है। याद रखो ऐसा करने पर ही हम सच्चेपातशाह जी द्वारा बताई गई युक्ति अनुसार अर्थपूर्ण जीवन जीने की महत्ता को सही अर्थों में समझ पाएंगे और अपना जीवन सार्थक कर औरों को भी निर्दोष निर्विकार जीवनयापन करने की कला से परिचित कराने का परोपकार दिखा पाएंगे। इस तरह वे सब भी अपने जीवन के सब कर्त्तव्य निष्कामता व सक्षमता से निभा सकेंगे। ऐसा करना अपने जीवन का मुख्य कर्त्तव्य

मानो और इस प्रकार कर्त्तव्यपरायण बन, उनके सुपुत्र कहलाओ व यथार्थ में यश के अधिकारी बनो। इस संदर्भ में अब ध्यान से सुनोः-

जो सजनता की जगह तेरा-मेरा का भाव अपनाता है
वह यह तेरा यह मेरा करते-करते ही मर जाता है
पर अंत संग कुछ भी नहीं ले जा पाता है
तभी तो वह स्वार्थपर इंसान
जन्म-मरण के चक्रव्यूह में फँस जाता है।
स्वार्थपर होते ही मानव जब मानवता से गिर जाता है
फिर तो वह अधीर, असंतोषी
सच्चाई-धर्म की राह पर नहीं टिका रह पाता है।
इस प्रकार छल-कपट, झूठ-चतुराईयाँ करते-करते
अपना अमोलक जीवन व्यर्थ गँवाता है।

इसीलिए

जीवन लक्ष्य प्राप्त करने की खातिर
अपना फ़र्ज अदा हँस कर करो
साग को कड़ाह समझते हुए
कर्त्तव्यपरायण बनो, कर्त्तव्यपरायण बनो
और अपने जन्म की बाज़ी को जीत जाओ।

दिनाँक 16 अक्तूबर 2016 का सबक़

कर्त्तव्य

साडा है सजन राम, राम है कुल जहान
अर्थात् ईश्वर हमारा मित्र/प्रियतम सर्वव्यापक है, उसी को जानो, मानो व वैसे ही गुण अपनाओ।

शब्द है गुरु, शरीर नहीं है,
अर्थात् ज्ञानी को नहीं ज्ञान को अपनाओ और निमित्त में नहीं नित्य में श्रद्धा बढ़ाओ।

इस पर सुदृढ़ता से डटे रह, इस अटल सत्य पर स्थिर बने रहोः-

ओ३म् अमर है आत्मा, आत्मा में है परमात्मा

सजनों यदि मुख से यह शब्द बोलते हुए, आप साथ-साथ इस सत्य का एहसास भी करो तो निश्चित रूप से आपको अंतर्निहित आत्मिक शक्ति का बोध हो सकता है और आप इस जगत में अपने आत्मिक बल का आत्मविश्वास के साथ प्रयोग करते हुए जो भी इस जगत के उद्धार के निमित्त करने आए हो वह कर्त्तव्य हँस कर पूरा करने के योग्य बन सकते हो।

सजनों कर्त्तव्य पालन के संदर्भ में सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ कह रहा हैः-

गृहस्थ धर्म विच रह के, अपने आप नूं पकड़ो,
फिर फ़र्ज़ अदा तुसां हँस के करो हँस के करो,
उस ईश्वर दे घर है सब कुछ,
उस ईश्वर दा द्वारा आके फड़ो।

फ़र्ज़ अर्थात् कर्त्तव्य। इस शब्द का शाब्दिक अर्थ है, जो कुछ उचित हो या होना चाहिए यानि अवश्य करने योग्य कार्य को कर्त्तव्य कहते हैं। फ़र्ज़ यानि उत्तरदायित्व का निर्वाह करना कर्त्तव्य ही है। धर्म का पालन करना भी कर्त्तव्य है। इस अर्थ से जो धर्म द्वारा स्वीकार्य हो और जिसमें स्वार्थ के अतिरिक्त परमार्थ की भी भावना हो, वही कर्त्तव्य है।

इस संदर्भ में जानो कि मानव का प्रमुख गुण यानि धर्म मानवता ही है। अतः आजीवन विचारशीलता द्वारा, इसी धर्म की मर्यादाओं में बने रह, अपने जीवन लक्ष्य की प्राप्ति हेतु जो करना उचित हो वैसा ही हँस कर करो। निःसंदेह आरम्भ में ऐसा करना कठिन प्रतीत होगा परन्तु धीरे-धीरे अभ्यास करने से, यह आपके स्वभाव के अंतर्गत हो जाएगा और आप, अपने हित का ध्यान रखने के साथ-साथ, जनहित के प्रति भी अपने कर्त्तव्य का पालन निष्काम भाव से करने में भी सक्षम हो सकोगे। जानो सजनों तभी कर्त्तव्यपरायण कहलाओगे अन्यथा कर्त्तव्यविमुख हो, बुरे परिणाम प्राप्त होंगे। ऐसा इसलिए कह रहे हैं क्योंकि निष्कामता की भावना से रहित होकर जब कोई इंसान कर्म करता है तो वह कर्म, कुकर्म भी हो सकता है, अधर्म भी हो सकता है व सुकर्म भी हो सकता है। इन तीनों प्रकार के कर्मों का अलग-अलग परिणाम यानि फल उस सजन को भोगना पड़ता है। जबकि धर्मसंगत किया हुआ निष्काम कर्म, जो कर्त्तव्य कहलाता है, उसका फल नहीं भुगतना पड़ता। याद रखो यही कर्त्तव्य कर्म त्रेता में श्री राम जी ने, द्वापर में कृष्ण भगवान जी ने व कलियुग में दस पातशाह जी ने, धर्मसंगत निष्काम भाव से निभाया और नैतिक रूप से पतित

मानव जाति को पुनः नैतिकता की राह दिखाकर उसका उद्धार किया। अतः आप सबको भी इसी तरह से सम्पूर्ण जगत के प्रति अपना कर्त्तव्य निभाना है। इसलिए तो कहते हैं कि कर्त्तव्य कर्मकांड का त्याग एवं प्रयत्न की पराकाष्ठा है।

उपरोक्त विवेचना से सजनों स्पष्ट होता है कि सज्जन व्यक्ति द्वारा किए जाने वाले वे सभी मंगल-विधायक, लक्ष्यनिष्ठ कर्म कर्त्तव्य कहलाते हैं, जो परिवार, समाज, देश के हित को ध्यान में रखकर उनके नैतिक उत्थान के दृष्टिगत, निष्काम भाव से संपन्न किए जाते हैं तथा जिनके निष्पादन से कर्त्ता को आत्मोत्कर्ष, आत्मबल, आत्म संतोष यानि आत्मतृप्ति व शांति-शक्ति की अनुभूति होती है और वह समाज में प्रतिष्ठा का पात्र समझा जाता है। इस परिभाषा से सजनों स्पष्ट होता है कि कर्त्तव्य सम्पादन में ही मानव का अधिकार है, उसके फल में नहीं। अतः न तो कर्म में आसक्त होकर उसके फल प्राप्ति के हेतु बनो और न ही कर्मविहीन बने रहो। इसके स्थान पर सदैव फल की इच्छा से रहित होकर निष्कामता से अपने कर्त्तव्य का पालन करो व परोपकारी कहलाओ।

सजनों उपरोक्त तथ्य से स्पष्ट होता है कि कर्त्तव्य पालन के साथ नैतिक समर्थन की भावना जुड़ी होती है यानि कर्त्तव्य के व्यापक अर्थ में आवश्यक नैतिक, पवित्र और पुण्य के भाव निहित होते हैं। तभी तो परहित में प्राणों का बलिदान भी कर्त्तव्य के अंतर्गत आता है। अतः इस भावना से ओत-प्रोत होकर, जीवन में आगे बढ़ो और अपना जीवन सफल करो। इस संदर्भ में याद रखो कि कर्त्तव्य, फ़र्ज़ आदि शब्द मनुष्य के कर्मों का एवं शुभ-अशुभ, अच्छा-बुरा, उत्तम-अधम आदि

शब्द उसके चरित्र का मूल्यांकन करते हैं।

मत भूलो कि जब तक अंतः प्रेरणा नहीं जाग्रत होगी, तब तक कर्त्तव्यपरायण नहीं बन सकोगे। अन्य शब्दों में कर्त्तव्य के लिए स्वतः प्रेरणा का होना अत्यन्त आवश्यक है। जब तक कर्त्तव्य करने के लिए स्वतः प्रेरणा न होगी, कोई भी बाहरी शक्ति व्यक्ति से कोई भी कार्य नहीं करा सकेगी। स्वतः प्रेरणा के साथ इच्छा शक्ति का होना भी आवश्यक है अन्यथा कार्य कभी सम्पादित हो ही नहीं सकेगा। याद रखो यदि एक बार अपने कर्त्तव्य को निष्पादित करने का दृढ़ निश्चय ले लिया तो फिर आगे का मार्ग स्वयं प्रशस्त हो जाता है और मार्ग में आने वाली कठिनाईयाँ स्वयं दूर होती जाती हैं। इसके अतिरिक्त कर्त्तव्य भावना को विकसित करने के लिए आसपास के परिवेश का अनुकूल होना भी आवश्यक है, ताकि वातावरण की सृष्टि हो सके।

व्यक्ति के स्वयं के संदर्भ में कर्त्तव्य निर्णय की प्रक्रिया अत्यन्त जटिल है। इस हेतु उसे सर्वप्रथम अपनी परिस्थितियों का धैर्यपूर्वक मूल्यांकन करना होता है, तत्पश्चात् अपने कर्त्तव्य को निश्चित करना होता है। फिर नीति शास्त्र तथा मानव धर्म की कसौटी पर उसे अपने निर्णय की परीक्षा करनी होती है। तदुपरांत जो निर्णय लिया है, उसे व्यवहारिक स्तर पर प्रयुक्त करना होता है। इस संदर्भ में यदि अंतिम क्षण में भी परिस्थिति में परिवर्तन हो, तो पुनः कर्त्तव्य का निर्णय कर कार्य करना होता है। याद रखो कर्त्तव्य का सही निर्णय केवल स्वहित को केन्द्र में रखकर नहीं लिया जा सकता अपितु कर्त्तव्य पालन के लिए तो व्यक्ति को अपने में कष्ट सहन करने की क्षमता भी विकसित करनी होती है। इस

प्रकार अपने वैयक्तिक, पारिवारिक, सामाजिक, राष्ट्रीय आदि सभी प्रकार के कर्त्तव्य का बोध कर उनका पालन करना अनिवार्य होता है। सभी प्रकार के कर्त्तव्यों के लिए व्यक्ति में श्रद्धा और निष्ठा अपेक्षित होती है। इस श्रद्धा को क्रियात्मक रूप देने के लिए उसे उत्साहपूर्वक आचरण करना होता है। इस प्रकार की मानसिक दृष्टि विकसित करके जब उसे क्रियात्मक रूप दिया जाता है तभी कर्त्तव्यपूर्ति की चेतना पूर्णतः विकसित हो पाती है।

इस सन्दर्भ में मत भूलो कि मनुष्य स्वभावतः कर्त्तव्य पालन से बचने की मनोवृत्ति रखता है, इसके लिए उसे विशेष प्रयास करना पड़ता है। कहने का आशय यह है कि कर्त्तव्य के प्रति मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति नहीं होती और वह उससे बचना चाहता है तथापि मनुष्य लोक-लाज के भय से कर्त्तव्यों की उपेक्षा भी नहीं कर पाता। इससे यह स्पष्ट होता है कि व्यक्ति के मन में कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य के मध्य सदा द्वंद्व की स्थिति बनी रहती है। वह कर्त्तव्य से बचने का प्रयास अवश्य करता है किंतु व्यक्तिगत परिस्थितियों एवं सामाजिक व्यवस्था का मनोवैज्ञानिक दबाव इतना अधिक होता है कि वह न चाहते हुए भी कर्त्तव्य का मार्ग चुनने के लिए विवश हो जाता है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि पारिवारिक-सामाजिक मर्यादाओं का दबाव ही वह अंतर्वर्ती तत्व है, जो सबको अपने-अपने कर्त्तव्यों के पालन के लिए सचेत एवं प्रेरित करता है।

इसी संदर्भ में कभी-कभी व्यक्ति के जीवन में ऐसे क्षण भी आते हैं कि जब दो कर्त्तव्यों में से एक का चयन करना पड़ता

है अथवा यह प्राथमिकता निश्चित करनी पड़ती है कि किस कर्त्तव्य का पालन पहले किया जाए। इसका निर्णय व्यक्ति की आवश्यकता, समय और परिस्थिति के आधार पर ही किया जा सकता है। इस अर्थ से स्वविवेक द्वारा कर्त्तव्य के औचित्य व अनौचित्य पर विचार करना आवश्यक होता है।

सजनों जहाँ कर्त्तव्य की बात होती है, वहाँ अधिकार की बात अवश्य उठती है। इन दोनों में अंतर होते हुए भी घनिष्ठ संबंध है। इसी तरह कर्त्तव्य और उचित कर्म में भी घनिष्ठ संबंध है जिसका मुख्य कारण यह है कि जो कर्त्तव्य है, वह उचित कर्म तो होगा ही लेकिन प्रत्येक उचित कर्म कर्त्तव्य हो यह संभव नहीं। इन दोनों में अंतर का आधार यह है कि कर्त्तव्य में जो बाध्यता है वह उचित कर्म में नहीं होती। कर्त्तव्य का पालन न करने पर समाज में निंदा की जाती है लेकिन उचित कर्म करने पर यह संभव नहीं। उदाहरणस्वरूप वृद्धावस्था में माता-पिता की सेवा करना पुत्र का प्रथम कर्त्तव्य है। ऐसा न करने पर पुत्र की निंदा होती है लेकिन माता-पिता का उचित सम्मान करना उसका उचित कर्म है।

सजनों कर्त्तव्य भावना से ऊँचा है अतः यदि प्राण भी निकल जाएँ तो भी अकर्त्तव्य कर्म नहीं करने चाहिएँ यानि चाहे प्राणों की बली लगी हो तब भी कर्त्तव्य कर्म ही करने चाहिए। इस संदर्भ में सदा याद रखो कि कर्त्तव्यहीन निकम्मा व्यक्ति अपने स्वभाव और स्वाभाविक रुचियों का विकास नहीं कर पाता और अपनी आवश्यकताओं की पूर्त्ति के लिए वांछित उपार्जन न कर पाने के कारण भूखा मरता है। अतः अकर्मण्यता

निषिद्ध है तथा कर्मरत रहना विधेय यानि नीति व विधान के अनुरूप है। कर्त्तव्य हीन मनुष्य न केवल सम्मान, यश, आत्मसंतोष और आनंद से वंचित रहता है अपितु वह तो दूसरों की दृष्टि में भी गिर जाता है। कई बार तो कर्त्तव्य की अवहेलना करने के कारण उसे अपमान, निंदा और दंड का भागी भी बनना पड़ता है। ऐसे ही सजनों के लिए सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ कह रहा हैः-

जेहड़ा फ़र्ज़ अदा वल्लों रोये पड़े,
ओ चौरासी भुगतने नूं जाय खड़े।

निष्कर्षतः सजनों हम कह सकते हैं कि परिवार, समाज, विश्व की संपूर्ण व्यवस्था संबंधों और उन संबंधों के अनुरूप कर्त्तव्यों के सूत्र में निबद्ध है। संबंधों की शिथिलता कर्त्तव्य-पालन में शिथिलता लाती है और कर्त्तव्य-पालन में शिथिलता आते ही सम्बन्धों में भी दरार आने लगती है। उदाहरणस्वरूप घर में यदि पति-पत्नी के पारस्परिक सम्बन्ध ठीक नहीं है तो वे परिवार के प्रति अपने कर्त्तव्यों का संपादन ठीक से नहीं कर सकते। परिणामस्वरूप परिवार बिखर जाता है। इसीलिए तो कहते हैं कि कर्त्तव्य-पालन सारी विश्व व्यवस्था का मूल आधार है। परिवार के सभी सदस्यों के पारस्परिक कर्त्तव्यों के निर्वाह पर ही परिवार की व्यवस्था आधारित है। सजनों यह कर्त्तव्यपरायण बनने का मूल आधार है। इसी से घर-परिवार व समाज में एकता व शांति पनप सकती है।

कर्त्तव्य के विषय में इतना सब कुछ जानने के पश्चात् सजनों हमारे लिए बनता है कि हम हर किसी के प्रति अपना

कर्त्तव्य-कर्म, उचित ढंग से समयबद्ध पूरा करने हेतु निर्भयता व लगन से तत्पर हो जाएँ व अपने जीवन का हर कर्त्तव्य सत्य-धर्म अनुरूप निष्कामता से निभाएँ। निश्चित ही ऐसा करने से हमारा मन संकल्प रहित हो जाएगा और ख़्याल सतयुग में प्रवेश कर जाएगा और अपनी दिव्य शक्तियों का बोध कर हम मान-अपमान, लाभ-हानि, दुःख-सुख आदि से अप्रभावित रह सम अवस्था में बने रहेंगे। इस संदर्भ में मत भूलो कि सर्वहित की ख़ातिर निष्काम भाव से अपने कर्त्तव्यों का पालन करने से कर्म में आसक्ति नहीं होती। फलतः निर्लिप्तता व अकर्त्ता भाव से किए हुए कर्मों का फल नहीं भोगना पड़ता।

इसके विपरीत स्वार्थपरता के कारण, कामनायुक्त भाव से अपने कर्त्तव्यों का पालन करने से कर्म में आसक्ति हो जाती है और इस प्रकार कर्त्ता भाव से किए हुए कर्मों का अच्छा या बुरा फल भोगना पड़ता है। अधिकतर ऐसे स्वार्थपर इंसान राक्षस प्रवृत्ति अपना कर हर संभव चेष्टा द्वारा अपनी मनोरथ सिद्धि करने का यत्न करते हैं और परिणामस्वरूप अपने मन की शांति भंग कर बैठते हैं। निश्चित ही तब वे यह सत्य भूल जाते हैं कि मन की शांति यानि संतोष ही मनुष्य की सबसे उत्तम दौलत है और अपने मन को इस दौलत से भरपूर रखने हेतु, परस्पर सजन-भाव के वर्त-वर्ताव द्वारा सत्तावान वस्तुओं के प्रति मोह व उनकी प्राप्ति की होड़ छोड़ देनी चाहिए। अतः सजनों इस तथ्य को दृष्टिगत रखते हुए निष्कामता से कर्म करने वाले कर्त्तव्यपरायण सुपुत्र बनो और मानव धर्म की मर्यादाओं में बने रहो। जान लो कि कर्त्तव्यपरायणता संतोष-धैर्य का प्रतीक है और इसका

कुशलता से पालन करने वाला ही सच्चाई-धर्म पर डटा रह सकता है व परोपकारी श्रेष्ठ पुरूष कहलाता है। अतः कर्त्तव्य पालन में ही जीवन की सच्ची सार्थकता सन्निहित मानो। इस संदर्भ में सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ से उद्धृत इन शब्दों के माध्यम से ईश्वर हमें क्या आदेश दे रहे हैं, ध्यान से सुनोः-

उस ईश्वर नाल प्यार तूं पाके,
दुनियां ते अपनी ओ अकल दिखावीं तूं

दुनियां ते अपनी ओ अकल दिखावीं तूं,
दुनियां ते अपनी ओ अकल दिखावीं तूं।।

अपनी अकल टिकाणे लिया के,
फ़र्ज़ अदा वल्लों जित तूं पाके,
अपना जीवन सफल बनावीं तूं।

आप सब इस उद्देश्य पूर्ति में सफ़ल हों, इस हेतु हमारी शुभकामनाएँ आपके साथ हैं। इसी सन्दर्भ में कर्त्तव्यपरायण बनने के लिए सब याद रखोः-

मन जितयो जग जीत सजन जी,
मन जितयो जग जीत ऐसा सुनिश्चित करने की खातिर,
प्रभु को बना लो मीत सजन जी
प्रभु को बना लो मीत।।

जानो वही है नायक हमारा उसी का तो है यह जगत पसारा
जगत की रमज़ उससे बेहतर कौन जाने
इसीलिए तो बनता है हम सब उसी का ही कहना मानें
और प्रभुता का भाव अपनाकर उसकी सेवा करने की ठानें
मन जितयो जग जीत सजन जी......।।

जानो सुरत भी अन्दर है और शब्द ब्रह्म भी अन्दर है
सुरत को चाहिए कि शब्द संग जुड़ ख़ुद को प्रभूत करे
न की भिन्नता का भाव अपनाकर खुद को प्रभु से दूर करे
और अपनी शक्ति से गिर कर बुरे भाव अपनाने का कसूर करे
मन जितयो जग जीत सजन जी......।।

सजनों यह जीवन बनाने का सबसे आसान तरीका है। तभी तो सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में श्री साजन जी सजनों को समझा रहे हैं:-

सुरत कंचन होवे, हो सुरत कंचन होवे,
फिर नाम ते ध्यान किवें न होवे।
हो सुरत कंचन होवे,
सुरत कंचन होवे हो सुरत कंचन होवे।।

भक्ति फिर शक्ति होवे,
भक्ति फिर शक्ति होवे फिर प्रेम ते मस्ती किवें न होवे।
हो सुरत कंचन होवे सुरत कंचन होवे हो सुरत कंचन होवे।।

फिर हनुमान जी दे वचन करो प्रवान,
उच्ची है पदवी उन्हां दी बल है कैसा महान।
डरो इन्सान डरो इन्सान डरो इन्सान।
सुरत कंचन होवे हो सुरत कंचन होवे।।

सम सन्तोष होवे सम सन्तोष होवे,
फिर धैर्य ते विचार किवें न होवे।
वैराग वाली डोर होवे,
वैराग वाली डोर होवे फिर सुरत चरणां दे कोल किवें न होवे।
हो सुरत कंचन होवे सुरत कंचन होवे हो सुरत कंचन होवे।।

हनुमान जी दी इक इक गल है बड़ी महान,
इक इक बात फड़ो इन्सान।
डरो इन्सान डरो इन्सान डरो इन्सान।
सुरत कंचन होवे, हो सुरत कंचन होवे।।

रघुवर जी दयाल होवे रघुवर जी दयाल होवे
फिर नाल बलधार किवें न होवे।
हृदय विच उमंग होवे हृदय विच उमंग होवे,
फिर हनुमान जी संग किवें न होवे।।

एहो चढ़या रंग होवे एहो चढ़या रंग होवे,
फिर जगत देख के दंग किवें न होवे।।

हो सुरत कंचन होवे सुरत कंचन होवे हो सुरत कंचन होवे।।
जेहड़ा वचनां ते जावे, जोत नाल मेल ओ खावे,
फिर ओहदी रौशनी है ओ महान।
है ओ महान है ओ महान है ओ महान।
सुरत कंचन होवे हो सुरत कंचन होवे।।

अर्थात् सजनों यदि अपनी सुरत यानि अन्दर के ख़्याल को कंचन रख लेते हो और अपने दिल-दिमाग की विशुद्धता बनाए रख सकते हो तो जानो मात्र इतना करने से ही इन्सान को सब कुछ प्राप्त हो जाता है। इसीलिए सजनों याद रखो कि सबसे बुद्धिमान व शक्तिशाली इंसान वही होता है जो जीवन के कर्त्तव्य सक्षमता से, धर्मसंगत व समयबद्ध पूरा करने हेतु किसी कारण भी, मन से नहीं हारता। इस संदर्भ में सजनों याद रखो जो मन से हारता है, वह परमार्थ का चलन छोड़, सांसारिकता अपनाता है और जीवन का हर कार्य मनमत अनुसार स्वार्थपरता के भाव से करता है और आजीवन झुखता-रोता रहता है।

इसी कारण ही सजनों आत्मज्ञान प्राप्ति की बात समझ आती है। एक आत्मज्ञानी ही एक शक्तिशाली इंसान की तरह अपने मन पर अंकुश रख, उस ताकतवर मन का, बुद्धिमत्ता से प्रयोग करते हुए, एक विवेकशील इंसान की तरह, अपने

जीवन का हर कर्त्तव्य-कर्म, धर्मसंगत निभाते हुए जगजीत नाम कहलाता है। यह अपने मन को संकल्प रहित रखते हुए, इन्द्रियों सहित, उस द्वारा अपने घर-परिवार व समाज का उद्धार करने का उचित तरीका है। इसी युक्ति के प्रयोग द्वारा ही मन में शांति स्थापित रहती है और मन-वचन-कर्म द्वारा एकता का भाव यानि सजन भाव नहीं छूटता। अंततः सजनों हम कह सकते हैं कि इस उत्तम अवस्था में उस इंसान के लिए समभाव-समदृष्टि की युक्ति पर यथा बने रहना सहज हो जाता है और वह चित्त की स्थिरता द्वारा दृढ़ संकल्प हो, वीरता से अपने जीवन के कर्त्तव्य हँसते-हँसते निभाने का पराक्रम दिखा पाता है।

सजनों कर्त्तव्य पालन के विषय में इससे आगे आगामी सप्ताह आपको बताया जाएगा।

दिनाँक 23 अक्तूबर 2016 का सबक़

कर्त्तव्य-2

साडा है सजन राम, राम है कुल जहान
अर्थात् ईश्वर हमारा मित्र/प्रियतम सर्वव्यापक है, उसी को जानो, मानो व वैसे ही गुण अपनाओ।

शब्द है गुरु, शरीर नहीं है,
अर्थात् ज्ञानी को नहीं ज्ञान को अपनाओ और निमित्त में नहीं नित्य में श्रद्धा बढ़ाओ।
याद रखो नित्य में श्रद्धा वही बढ़ा पाएगा जो मानव-धर्म अनुरूप चलन अपनाएगा।

इस पर सुदृढ़ता से डटे रह, इस अटल सत्य पर स्थिर बने रहोः-
ओ३म् अमर है आत्मा, आत्मा में है परमात्मा

सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ के अनुसार सजनों कर्त्तव्य पालन के विषय में गत सप्ताह हमने जाना कि फ़र्ज़ अदा को निष्काम भाव से सच्चाई-धर्म से निभाना है। किसी के घेरे में आकर उसके प्रति किसी प्रकार की भी कमज़ोरी नहीं दिखानी अपितु कर्त्तव्यपरायण बनना है। कर्त्तव्यपरायण बनने के लिए सजनों आपको स्वार्थ का रास्ता छोड़ना होगा। क्या ऐसा कर सकोगे?

हाँ जी।

क्या स्वार्थी बातें करना छोड़ सकोगे?

हाँ जी।

क्या इस हेतु अपने ऊपर आत्मनियन्त्रण रख सकोगे?

हाँ जी।

याद रखो यह बुराई का चलन है। इस बुरे चलन को अपनाने की तरफ से रूकना ही श्रेयस्कर है। जो इस उत्तम बात को अपना लेगा वह कर्त्तव्य परायण सीधा अपने सच्चे घर परमधाम की ओर प्रस्थान कर सकेगा।

इसी संदर्भ में आओ अब आगे जानते हैं कि यह ग्रन्थ फ़र्ज़ अदा की महिमा का वर्णन कैसे कर रहा हैः-

श्री साजन जी के मुख के शब्द

गरूड़ ते भगवन चल पड़े,
दरबार पहुंचदियाँ ऊपर फुल वर्षे।
वर्षे बेशुमार फुल्लां दी झड़ी हो गई,
हेठां संस्था बैठी सी उठ के खड़ी हो गई-
हथ जोड़ उठ के खड़ी हो गई।।

कव्वाली

वक्त दे मुताबिक सजन ओ वक्त दे मुताबिक सजन,
ओ सब कोई प्यार करता है।
सब कोई प्यार करता है, ओ सब कोई प्यार करता है।
वक्त दे मुताबिक ओ सजन सब कोई प्यार करता है।।

ओ जदों वृद्ध अवस्था आवे हां हां जदों वृद्ध अवस्था आवे,
फर्ज़ अदा से डरता है।
जदों वृद्ध अवस्था आवे,
फ़र्ज़ अदा से डरता है।।

फ़र्ज़ अदा है ओ जीत, बाज़ी जित लई उस अपनी ।
जीत सदा ही जीत सजनों जीत सदा ही जीत।।

फ़र्ज़ अदा करो इन्सान, फ़र्ज़ अदा है बड़ा महान।
इस बात दा विचार जेहड़ा सजन करदा है।।

फ़र्ज़ अदा दी महिमा है महान,
फ़र्ज़ अदा करो इन्सान।
ओ बेख़ौफ़ा बेख़तरा ही विचरदा है,
ओ बेख़ौफ़ा बेख़तरा ही विचरदा है।।

फ़र्ज़ अदा जेहड़ा करे इन्सान,
बुद्धि लई उस अपनी पहचान।
इन्सानां विच्चों अक्लवान,
उस जीवन अपना बना ही लिया,
पा लिया आत्मिक ज्ञान।।

आत्मिक ज्ञान उसने पा लिया,
ओहदी जोत जगे निर्वाण।
ओहदा रूप रंग न रेखा राहवे,
ओ पहुंच गया परमधाम।।

परमधाम ओ पहुंच गया,
बेअन्त है ओहदा नाम।।

जेहड़ा खुश हो के करे फ़र्ज़ अदा,
ओहदे ते खुश किवें न होवन परवरदिगार।
ओ महाराज जी दे दर्शन पांदा है,
ओ जीवन सफल बनांदा है।
जैं जीवन सफ़ल बना लिया अपना,
ओ फिर नहीं पछोतांदा है।।

ध्वनिः--

स्वार्थी मतलब दे, मतलब दे हिन यार, स्वार्थी मतलब दे।
मतलब जेहड़े वेले निकल गया, फिर करदे नहीं ओ प्यार।
स्वार्थी मतलब दे, मतलब दे हिन यार, स्वार्थी मतलब दे।

शब्दः-

ओहदी जोत जगे मन मन्दिर।
ओहदी जोत जगे जग अन्दर।

सजनों चाहे हम परमार्थी परिवार में विचर रहे हों या स्वार्थी परिवार में, आमतौर पर प्रतिदिन हम अपनी दैनिक दिनचर्या के दौरान कदम-कदम पर, इस तथ्य की सत्यता का सामना करते हैं कि 'स्वार्थी मतलब दे, मतलब दे हिन यार, स्वार्थी मतलब दे, मतलब जेहड़े वेले निकल गया, फिर करदे नहीं ओ प्यार, स्वार्थी मतलब दे'। उदाहरणस्वरूप जब किसी के जीवन में कोई दुःख-क्लेश आता है या कोई इच्छा पूरी करनी होती है तो वह इच्छापूर्त्ति हेतु मीठा बोल कर दूसरों को चतुराई से पटाने का यत्न करता है। उस समय उसके बोलने यानि बातचीत करने का ढ़ंग इतना मधुर हो जाता है कि फिर चाहे उसे कुछ कठिन भी बोला जाए तो वह मतलब परस्ती के पीछे उसे भी बर्दाशत कर जाता है।

परन्तु जब उसका स्वार्थ सिद्ध हो जाता है और इच्छापूर्ति हो जाती है तो वही गीदड़ शेर बन जाता है यानि उनकी वाणी, दृष्टि स्वार्थपरक हो जाती है और फिर वह उलटा गुर्राता है। कुछ तो यहाँ तक स्वार्थी हो जाते हैं कि मतलब पूरा होने के पश्चात् फिर मिलना-मिलाना ही छोड़ देते हैं यानि लम्बे अन्तराल तक नज़र ही नहीं आते। यह आज के कलियुगी मानव की अत्यन्त दुःखद परिस्थिति है। इस परिस्थिति के

वशीभूत हुआ इन्सान न तो स्वतन्त्र रूप से अपना कल्याण कर सकता है और न ही किसी दूसरे का हितकारी बन सकता है। इस तरह झुखते-रोते वह खुद तो परेशान रहता ही है साथ ही अपशब्द बोल कर व अपना दुखड़ा सुनाकर दूसरों के लिए भी परेशानी का कारण बनता है। अतः सजनों याद रखो कि जब तक स्वार्थपरता का रास्ता नहीं छोड़ोगे तब तक मतलब परस्त ही बने रहोगे और स्वार्थसिद्धि हेतु चतुराई से दूसरों से जुड़ते रहोगे व लड़ते रहोगे। इस तरह सब को तो भ्रमित करोगे ही करोगे साथ ही अपने प्रति, अपने परिवार के प्रति व कुल समाज के प्रति अपना कर्त्तव्य भी हँस कर नहीं निभा पाओगे यानि कर्त्तव्य की तरफ से हार खा अपना जीवन हार जाओगे और अपयश प्राप्ति के पात्र बनोगे। सजनों सजन श्री शहनशाह महाबीर जी के द्वारे पर होने के नाते, आपको फिर से सावधान कर रहे हैं कि अपने साथ ऐसा मत होने देना और जीवन की हर परिस्थिति में अपना मानसिक संतुलन सम रखते हुए व सब के प्रति अपना फर्ज़-अदा हँस कर पूरा करते हुए ईश्वर के कर्त्तव्यपरायण पुत्र बनना।

इस सन्दर्भ में सजनों कर्त्तव्य पालन के सम्बन्ध में सबने अपना आत्मनिरीक्षण करना है कि 'क्या मैं मानव-धर्म अनुरूप अनुशासित ढंग से जीवन जीने में समर्थ हो पा रहा हूँ या फिर ईश्वरीय आदेशों का उल्लंघन कर उसके विपरीत कर्त्तव्य विमुख होकर, परस्पर, भिन्न-भेद का चलन अपनाकर, अपने साथ-साथ औरों को भी दुःखी कर रहा हूँ।' याद रखो यदि आपसे ऐसा ही हो रहा है तो यह एक बुरे इन्सान की निशानी है। यहाँ एक महत्त्वपूर्ण बात याद रखने

की है कि एक बुरा इन्सान अपने बच्चों के लालन-पालन के दौरान उन्हें बुराई से ही सींचता है और इस प्रकार उनके अन्दर बुरे भाव उत्पन्न कर बाद में खुद ही बुरा फल भोगता है।

इसी परिप्रेक्ष्य में ध्यान दो कि दो तरह के इन्सान होते हैं। एक तो वह जो ईश्वर के विधि-विधान में विश्वास रखते हैं और आस्तिक कहलाते हैं, दूसरे वे जो ईश्वर को नहीं मानते और नास्तिक कहलाते हैं। नास्तिक इंसान मतलबी होते हैं और उनका माथा मनमत से ठना होता है। इसलिए वह अहंकारी किसी सभ्य इन्सान की सही बात पर गौर फरमाना पसंद नहीं करते।

इसके विपरीत आस्तिक इन्सान एकात्मा के भाव से विचरते हैं और गिर-गिर कर फिर-फिर संभलते हुए, अपने जीवन को उन्नतिशील बनाने में रत रहते हैं। इस तरह जहाँ नास्तिक इन्सान कर्त्तव्यविमुख होने के कारण विनाश को प्राप्त होते हैं, वहीं आस्तिक इंसान कर्त्तव्यपरायण बन, अपने जीवन के लक्ष्य को सिद्ध कर लेते हैं। इस विषय में सब सत्यता से अपनी जाँचना करो कि आप कैसे इन्सान हो और फिर अपना परिणाम खुद प्राप्त करो व कलुकाल के भाव-स्वभाव छोड़ कर सतवस्तु का चलन अपना लो। आओ अब उपरोक्त कीर्तन के भावाशय को समझते हैं।

सजनों इस कीर्तन के भावाशय से स्पष्ट होता है कि फ़र्ज़ अर्थात् कर्त्तव्य पालन से तात्पर्य दायित्व यानि अपने व सबके प्रति अपनी ज़िम्मेदारी के बोध से है। इसे कर्त्तव्यबोध, निष्ठा व आज्ञापालन के नाम से भी सम्बोधित किया जाता है

क्योंकि कर्त्तव्य निष्ठा से इसका विकास संभव है। यही उत्तरदायित्व भी है। दृढ़ता और कर्मठता इसके विधि पक्ष यानि आवश्यक तत्व हैं और शिथिलता, चंचलता व आलस्य इसका निषेधक यानि अवरोधक पहलू है। जान लो कि कर्त्तव्य परायणता अनुशासन से पनपती है जिससे निरंतर कर्त्तव्य-पथ पर आगे बढ़ने की प्रेरणा मिलती है।

कर्त्तव्यबोध के संदर्भ में सजनों हम आपको यह भी बताना चाहते हैं कि जो कार्यभार सौंपा जाए अर्थात् जो करणीय हो उसको निष्ठापूर्वक सम्पन्न करने की भावना उत्पन्न होना और कुशलतापूर्वक निभाना ही असली दायित्व है। दायित्व में आनाकानी करने, शिथिलता बरतने के लिए किंचित भी अवकाश नहीं है। एक बार किसी कार्य के दायित्व की हामी भर दी, तो उसे पूरा करना है, यह भाव, यह निश्चय, यह संकल्प ही दायित्व है। दायित्व को बोझ नहीं समझना होता अपितु उसके निर्वाह को अपना कर्त्तव्य मानना चाहिए। यदि देखा जाए तो वास्तव में दायित्व को रखकर ही किसी की योग्यता की परख की जा सकती है। याद रखो दायित्व से मुकरने वालों पर कोई विश्वास नहीं करता। अतः दायित्व से छुटकारा पाने के लिए बहाना बनाना गलत है।

स्पष्ट है सजनों जीवन में उन्नति के लिए कर्त्तव्यबोध का जाग्रत होना आवश्यक है। कर्त्तव्यबोध कदाचित् बल प्रयोग या उत्पीड़न द्वारा नहीं सिखाया जा सकता अपितु स्वयं से या बड़ों के अनुकरण से विकसित होता है। ऐसा इसलिए कह रहे हैं क्योंकि बचपन से ही बच्चा बड़ों को जो करते देखता है, वही सीखता है और यही अनुकरण उसमें कर्त्तव्यबोध जाग्रत करता है। अतः मनुष्य की प्रकृति,

आचार-विचार, गुण-दोष तथा जन्मजात संस्कार एवं अर्जित संस्कारों के सहारे कर्त्तव्यों को वहन करने की सामर्थ्य मिलती है। चूंकि संस्कार नींव वस्तुतः घर-परिवार में ही दृढ़ हुआ करती है, अतः माता-पिता का फ़र्ज़ है कि वे प्रारम्भ से ही बच्चों के संस्कार इतने स्पष्ट और सहज बनाएं कि उन्हें कब, क्या करना है इसकी सूझ स्वतः ही हो जाए। इस विषय में सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया है:-

सजन माता-पिता का फ़र्ज़ अदा जो है, उच्च पदवी है।
इसी से आत्म पदवी की प्राप्ति हो सकती है।

अतः सजनों आत्पद प्राप्त करने हेतु इस अत्यंत महत्त्वपूर्ण, किन्तु कठिन कार्य को, अपना पावन धर्म समझ के निभाओ क्योंकि यह जीवन को महान बनाने में पूर्णतः सहायक है। याद रखो इसके प्रभाव से ही व्यक्ति अधिकाधिक कर्मठ, आज्ञाकारी व अनुशासित बनता है और अपने परिवार, समाज, देश और विश्व में अपना स्थान बनाता है।

कर्त्तव्य बोध सजनों मुख्यतः दो प्रकार का होता है यथा अपने प्रति व दूसरों के प्रति। प्रतिकूलताओं में विचलित न होकर स्वयं की शारीरिक-मानसिक क्षमताओं के विकास के लिए प्रयत्नरत रहना स्वयं के प्रति कर्त्तव्य है। इसके लिए मनुष्य का शारीरिक, मानसिक व आत्मिक रूप से सक्षम एवं समर्थ होना अनिवार्य है। समर्थ एवं सुयोग्य कर्त्ता ही अपने कर्त्तव्य का विवेकपूर्वक निर्धारण और योग्यतापूर्वक पालन कर सकता है। स्वयं से विमुख होकर अपने को अयोग्य रखना अपराध है। इससे कर्त्ता कुंठित और अवसादग्रस्त रहता है। यह खुद पर विश्वास उठने व दूसरों का आधिपत्य स्वीकारने की बात होती है। इसी कारण ही ऐसे मानव के मन में संतोष

का अभाव होने के कारण कामुकता व अन्य विकार घर कर जाते हैं। परिणामस्वरूप वह कर्त्तव्यपरायणता के भाव से भटक व सांसारिक रसों में उलझ स्वार्थपरता का सिद्धान्त अपना बैठता है।

अतः सजनों अपने आप ही अपना उद्धार करो क्योंकि मनुष्य स्वयं ही तो अपना मित्र है और स्वयं ही अपना शत्रु है। इस हेतुः स्वाध्याय, आत्मानुशासन, साधना के द्वारा, अपनी शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक शक्तियों का विकास करके स्वयं को सुयोग्य कर्त्ता के रूप में प्रतिष्ठित करो। याद रखो जो व्यक्ति आत्म-कल्याण नहीं कर सकता, वह लोक-कल्याण भी नहीं कर सकता।

सजनों कर्त्तव्य का क्षेत्र कर्त्ता से प्रारंभ होकर परिवार, समाज, देश और विश्व तक व्याप्त होता है। परिवार व समाज के अन्य सदस्यों की सुख-सुविधाओं व हित का ख़्याल व ध्यान रखना तथा उनके सर्वांगीण विकास के प्रति यत्नशील होना दूसरों के प्रति कर्त्तव्य पालन कहलाता है। इस विषय में यदि हम वर्त्तमान परिस्थितियों के दृष्टिगत इसे गौर से समझें तो ज्ञात होगा कि आज संसार में चारों ओर जो अशांति, विषमता एवं संत्रास दिखाई दे रहा है, वह सब इसलिए हो रहा है क्योंकि लोग कर्त्तव्यविमुख होकर, सच्चाई-धर्म का निष्काम रास्ता छोड़, छल-कपट के चलन द्वारा अपनी स्वार्थ सिद्धि की होड़ में लगे हुए हैं। यह एक दूसरे की देखा-देखी धर्म हारने व शिष्टाचार से विपरीत दुराचारिता का चलन अपनाकर इस नित्य सत्य को भूलने की बात है कि कर्म और कर्मफल का लेखा-जोखा व्यक्तिगत होता है। याद रखो कर्त्तव्य के रूप में किए गए उचित कर्म

ही एक व्यक्ति के मनुष्यता अनुरूप स्वभाव में ढलने व बने रहने के प्रतीक होते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि कर्त्तव्य परायण व्यक्ति ही श्रेष्ठ पद को प्राप्त होता है। सामाजिक दृष्टि से कर्त्तव्य की श्रेष्ठता स्वयं सिद्ध है क्योंकि कर्त्तव्यपालन द्वारा ही हम समाज में भाईचारे, सहयोग, क्षमा, शांति, समृद्धि, सुरक्षा, एकता आदि के बीज बो सकते हैं और चहुं ओर शांति व एकता का वातावरण स्थापित कर सकते हैं।

कर्त्तव्य के संदर्भ में सर्वदा याद रखने की बात यह है कि आत्मज्ञान का सम्पादन करना और आत्मकेन्द्र में स्थिर रहना मानव का सबसे पहला और मुख्य कर्त्तव्य है। स्वेच्छापूर्वक इस कर्त्तव्य का पालन करने से व्यक्ति का समुचित मानसिक व आत्मिक विकास होता है यानि उसमें संयम, समत्व, संतोष, धैर्य, श्रद्धा, विश्वास, नम्रता, प्रसन्नता, सहिष्णुता, त्याग आदि प्रवृत्तियाँ सहज ही विकसित होने लगती हैं और वह भयमुक्त, दृढ़, कर्मठ, उदार हो, योग्य बनने की शक्ति प्राप्त करता है। इससे मन की अनेक उलझी गाँठें स्वतः खुल जाती हैं, बुद्धि का विकास होता है और उसके स्वभाव और व्यवहार में बदलाव आने लगता है। तब वह केवल कर्त्तव्य पालन के दायित्व को अपने तक ही सीमित नहीं रखता वरन् अन्यों के प्रति दायित्व निभाने की भी उसे प्रेरणा मिलती है। साथ ही वह पूरी तरह से उसे अपना धर्म समझकर करने में जुट जाता है। परिणामस्वरूप उसमें मानवीय चेतना का उद्भव होता है और वह अपने जीवन के प्रयोजन के अनुरूप, अपने समस्त कर्त्तव्य ईश्वर के निमित्त समर्पित कर, अकर्त्ता भाव से

उनका पालन करता है। इस तरह वर्तमान परिस्थितियों में अकर्त्ता भाव से किए हुए उसके तमाम कर्म, निष्काम कर्म की तरह पवित्र हो जाते हैं और वह अपने निहित कर्मों में लीन होकर परम सिद्धि प्राप्त करता है। इस प्रकार कर्त्तव्यपरायणता अभेद भावना की ओर ले जा कर ईश्वर से मेल कराती है।

यद्यपि सजनों प्रत्येक व्यक्ति की असली पहचान उसकी कर्त्तव्य भावना से ही होती है तथापि वर्तमान युग में कर्त्तव्यपालन सबसे बड़ा तप है। ऐसा इसलिए कह रहे हैं कि मनुष्य को जीवन पर्यन्त कर्त्तव्य निर्वाह की अग्निपरीक्षा देनी होती है। अपने भरसक साहस और सामर्थ्य के बावजूद, कई बार वह असफल भी होता है परन्तु हिम्मत न हारने वाला सत्यनिष्ठ पुरुषार्थी अंत सफलता को प्राप्त करता है। इस प्रकार इस तप के प्रभाव से व्यक्ति के मुख पर तेजस्विता आती है और उसका आभामंडल विकसित होता है। ऐसा ओजस्वी व्यक्ति ही निज धर्म का पालन कर कर्त्तव्यनिष्ठ कहलाता है और अपेक्षारहित भाव से, समय और परिस्थिति के अनुसार कर्त्तव्य करता हुआ, अंतर्मन में असीम शांति का अनुभव करता है। इस प्रकार कर्त्तव्य-पालन करने से उसको आत्म-तुष्टि, आत्म-गौरव, स्वाभिमान और आत्मोत्कर्ष की सुखद अनुभूति होती है। उसमें नैतिक-चारित्रिक गुण यथा निस्वार्थ भावना, दया, क्षमा तथा पक्षपातरहित व्यवहार एवं बल और साहस विकसित होता है। अस्तित्व की सार्थकता की अनुभूति से उसके जीवन में नई चमक आती है। उसका जीवन दूसरों की दृष्टि में महत्वपूर्ण सिद्ध होने के साथ स्वयं अपनी दृष्टि

में भी मूल्यवान हो जाता है। यहीं पर आत्मा के माध्यम से स्व का साक्षात्कार होता है और ऐसा कर्त्तव्यपरायण मनुष्य कर्त्तव्य कसौटी पर खरे उतर कर भावी पीढ़ियों के लिए आदर्श बन जाता है व अपने जीवन के परम लक्ष्य मोक्ष को प्राप्त कर लेता है। कर्त्तव्य पालन की इसी महत्ता को समझाते हुए ही सजनों सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया है:-

इक समझ लवो कुल दुनियां अन्दर आ आ आ आ
ते दूजा राहवे न नामो निशान सजनों
फ़र्ज़ अदा वल्लों जित पाये के ते
पहुँच जाओगे परमधाम सजनों।।

अंततः सजनों जान लो कि जो कुछ भी आप यहाँ पर पढ़ते, सुनते व समझते हो उसको अपने पर, अपने बच्चों पर व परिवार पर लागू भी किया करो। इस सन्दर्भ में हम आप से पूछते हैं कि क्या कभी आप ऐसा करते हो?

हाँ जी, प्रयत्न तो करते हैं।

प्रयत्न करते हो तो क्या कभी उस प्रयत्न के फल को देखा है यानि जो उचित फल इस यत्न द्वारा प्राप्त होना चाहिए वह प्राप्त हुआ भी है या नहीं?

हाँ जी, देखा है, अधिकतर फल पूरा नहीं प्राप्त होता।

अगर ऐसा होता है तो इसके द्वारा क्या आपको यह समझ में आता है कि, आगे मेरे जीवन में क्या होने वाला है?

हाँ जी।

तो फिर क्यों नहीं समय रहते ही परिवारजन मिलकर, भावी दुःख से अपने आप को बचाने का यत्न करते? इस सन्दर्भ में हम आप सब से प्रार्थना करते हैं कि सब इस सप्ताह अपनी व अपने बच्चों की भाल करो। इससे पहले कि आपके जीवन में कोई संकट उत्पन्न हो और आप उसमें उलझकर, मानसिक यातना भोगते हुए, हाय-तौबा मचा कर, औरों का भी चैन हरने की क्रिया करो और इस तरह अपनी यश-कीर्ति, प्रतिष्ठा व मान-मर्यादा सब को दाँव पर लगा, अपना सब कुछ हार बैठो, खुद को व अपने परिवारजनों को नैतिक पतन के गर्त में जाने से पूर्व ही संभाल लो।

इस हेतु जाँचना करो कि परमार्थ का जो रास्ता मुझे अच्छा लगता है क्या मैं अपने परिवार को उस रास्ते पर साथ लेकर चलने में समर्थ हूँ या नहीं? अगर उत्तर नहीं में प्राप्त हो तो उस रूकावट को जानने-समझने का यत्न करो कि वह क्या कारण है जिसके वशीभूत हो, मैं अपने कर्त्तव्य की तरफ से हार खा रहा हूँ और अपने बच्चों व परिवार को सत्य कहने व सत्य मार्ग पर अग्रसर करने की हिम्मत नहीं जुटा पा रहा। सजनों यदि सत्यता से इस बात का अन्वेषण करोगे तो जान जाओगे कि इसके पीछे मुख्य कारण मैं खुद आप ही हूँ क्योंकि मैंने अपने बच्चों की पालना पारमार्थिक विचारों के स्थान पर भौतिक विचारों के अनुसार की है, इसी कारण वे भौतिकता में अटक कर रह गए हैं। अब चाहे पानी में पड़ रही परछाई की तरह उनकी भौतिक सम्पन्नता हमको नज़र आती है परन्तु वस्तुतः वह सम्पन्नता, सम्पन्नता नहीं होती क्योंकि इस भौतिक सम्पन्नता की आड़ में जितनी वे अपनी चारित्रिक हानि कर बैठते हैं, वह अपना खून होने के

नाते मोहवश हमको नज़र नहीं आती या फिर धन के रूप में उनसे जो हमारी स्वार्थ सिद्धि होती है, वह कामना पूर्ति हमें उन्हें सत्य-धर्म से परिचित कराने से रोकती है। अतः सजनों अपनी इस गलती का एहसास करो और यदि हकीकत में उन्हें सच्चाई-धर्म के रास्ते पर चलाना चाहते हो तो इस सप्ताह इस बात पर गहराई से विचार करो। इस तरह भौतिकता में फँसे उनके ख्याल व मानसिकता को अब परमार्थ की तरफ मोड़ने की तरकीब खुद खोज निकालो। इस हेतु सर्वप्रथम अपने अन्दर निहित स्वार्थपर भौतिकवादी सिद्धातों का समर्थन करने वाली भावना को मार डालो और फिर उनका परिवर्तन करो। याद रखो कि इसके प्रति आपकी हिम्मत देखकर ही, वे कर्त्तव्यपरायण बन सकेंगे।

अतः सजनों फिर प्रार्थना कर रहे हैं कि भुलेखे में उलझ, धोखा मत खा जाना अन्यथा बुरा नतीजा प्राप्त होने पर सिर पर हाथ रख कर रोना पड़ेगा। अगर इस सन्दर्भ में पहले मूर्खता कर ली है तो भी घबराओ नहीं क्योंकि अभी भी सुधार हो सकता है। अतः बार-बार अपनी मूर्खता को मत सोचो अपितु अपनी गलती को स्वीकार कर खुद का खुद सुधार करो ताकि न केवल वर्तमान पीढ़ी अपितु भावी सन्तानें भी इन्सानियत का चलन अपनाने में कामयाब हो सकें और युगों-युगान्तरों तक अपने पूर्वजों का गुणगान करें। सजनों इसी में ही अपने जीवन की सार्थकता समझो व अपने व सबके हितकारी बनो।

दिनाँक 30 अक्तूबर 2016 का सबक़

नीति पालन की महत्ता

साडा है सजन राम, राम है कुल जहान

अर्थात् ईश्वर हमारा मित्र/प्रियतम सर्वव्यापक है, उसी को जानो, मानो व वैसे ही गुण अपनाओ।

शब्द है गुरु, शरीर नहीं है,

अर्थात् ज्ञानी को नहीं ज्ञान को अपनाओ और निमित्त में नहीं नित्य में श्रद्धा बढ़ाओ।

इस पर सुदृढ़ता से डटे रह, इस अटल सत्य पर स्थिर बने रहोः-

ओ३म् अमर है आत्मा, आत्मा में है परमात्मा

सजनों सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ कह रहा हैः-

श्री राम जी प्रसंग चलान लगे,
चलाया हनुमान जी चलाया हनुमान जी।

नीतियाँ वर्ताव करदे आए,
मर्यादा पुरुषोत्तम श्री राम जी
नीतियाँ पालना सिखा गए, सिखा गए कृपानिधान जी,
सिखा गए कृपानिधान जी
बेसमझ तुसां समझो मेरे सजनों,
हो तुसां इन्सान जी

उपरोक्त कथन के अनुसार सजनों इंसान होने के नाते अब हमें कर्त्तव्यपरायण बनने हेतु शास्त्रविदित नीतियों पर बने

रहना सीखना होगा। इस संदर्भ में सजनों याद रखो वेद-शास्त्रों में विहित्, मानव धर्म अनुरूप आचार-पद्धति अपना कर ही हम अपना व समाज का हित सिद्ध कर सकते हैं। सजनों हम सब सुनिश्चित रूप से ऐसा करने के योग्य बनें, उसके लिए सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ हमें कह रहा है कि जिस तरह त्रेता युग से लेकर अब तक, युग पुरुषों ने आत्मज्ञान की प्राप्ति कर व सत्य-धर्म के निष्काम रास्ते पर स्थिरता से बने रह, एक नीति परायण इंसान की तरह, दुःख-सुख में एकरस रहते हुए, प्रसन्नचित्तता से अपने जीवन का हर कर्त्तव्य कुशलता से निभाया, ठीक वैसे ही हमें भी उनसे शिक्षा ले, अपने जीवनकाल में मानव धर्म अनुरूप नीतियों पर बने रह, समयबद्ध हर कर्म धर्मसंगत करने का पराक्रम दिखाना होगा।

इस सन्दर्भ में याद रखो नीतियों के वर्त-वर्ताव के दौरान अपने-पराए का भेदभाव नहीं करना होता अपितु जो न्यायसंगत व उचित हो तद्नुसार निश्चय लेकर उचित कदम उठाना होता है। अन्यथा फुरना फैल जाता है। अतः अनीति जो फुरने का कारण है, उसे ही समाप्त कर दो और इस तरह नीतियों की पालना द्वारा खुद सम्भलते हुए दूसरों को भी नीतियों की पालना करने के लिए बाध्य करो।

ऐसा करने पर ही नेक इन्सान बन पाओगे व अपने तथा अपने परिवार के शुभचिंतक कहलाओगे। इसके विपरीत यदि ऐसा न किया तो एक कमज़ोर इन्सान की तरह कुरस्ते पर अग्रसर हो आजीवन रोते-झुखते रहोगे। सजनों ऐसी गलती भूल कर भी मत करना क्योंकि यह बुद्धिहीनता की

निशानी है और इस नादानी से बहुत नुकसान हो जाता है। ऐसे सजनों के बारे में सच्चेपातशाह जी कहते हैं कि आयु बीतदी जांदी है, यानि बाल काले दे चिट्टे हो गए परन्तु अगर इतनी आयु व्यतीत होने के बावजूद भी आप नहीं समझते और मन काले का काला ही रहता है तो फिर आपको पतन की गर्त में जाने से कोई नहीं रोक सकेगा। इसीलिए कह रहे हैं वक्त रहते ही सम्भल जाओ और अनमोल मानव जीवन को व्यर्थ न गँवाओ।

अतः सजनों यह सब जानने के उपरान्त हमारे लिए बनता है कि हम सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में नीतियों की पालना की महत्ता के संदर्भ में विदित, निम्नवर्णित कीर्तन को भावार्थों सहित सही ढंग से समझें व उन जैसा उत्तम पुरुष बनने का साहस दिखाएं। इस सन्दर्भ में अब ध्यान से सुनोः-

श्री साजन जी के मुख के शब्द

नीतियां वर्ताओ ते चलना सिखा गये,
मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान।
कोई विरला यत्न करे इन्सान,
कोई विरला यत्न करे इन्सान।।

धर्म सच्चाई दे रस्ते ते चल गये,
पिता जी दे वचन करन प्रवान।
श्री राम सेवा में सीता लक्ष्मण चल पड़े,
पकड़ लिया शब्द विचार महान।
कोई विरला यत्न करे इन्सान,
कोई विरला यत्न करे इन्सान।।

नीतियां मुताबिक चले हनुमान जी,
अमर जगत ते कर लिया नाम।
नीति विरूद्ध सीता लै गया रावण,
हनुमान जी सोने दी लंका करन वैरान।
कोई विरला यत्न करे इन्सान,
कोई विरला यत्न करे इन्सान।।

नीतियां वर्ताओ चलना सिखा गये,
अर्जुन नूं श्री कृष्ण चन्द्र भगवान।
महाबीर जी दी युक्ति करो प्रवान,
सजनों पा लवो आत्मिक ज्ञान।
कोई विरला यत्न करे इन्सान,
कोई विरला यत्न करे इन्सान।।

नीतियां पकड़ो मेरे सजनों,
नीतियां विरूद्ध न चलो इन्सान।
नीतियां वर्ताओ जेहड़ा करदा,
ओन्हां दी जोत जगे निर्वाण।
कोई विरला यत्न करे इन्सान,
कोई विरला यत्न करे इन्सान।।

हनुमान जी दी युक्ति करो प्रवान,
नीतियां विरूद्ध न चलो इन्सान।
विचार शब्द जेहड़ा कर लवे,
फिर जित्त ओन्हां दी जान।
कोई विरला यत्न करे इन्सान,
कोई विरला यत्न करे इन्सान।।

शब्द

देख पिता दियां अनीतियां,
ध्रुव प्रह्लाद नीतियाँ वर्ताओ करन।
देखो गुरुगोबिन्द सिंह जी दे लाडले,
धर्म ते जानां वारियां ओ रौशन नाम करन।
अनीतियां छडो मेरे सजनों,
नीतियां दा तुसां करो वर्ताओ।।

सजनों क्या यह सब सुन-समझ कर आप के अन्दर नीतियों पर सुदृढ़ बने रहने की हिम्मत उत्पन्न हुई है या अभी भी अनीतियाँ करते हुए, कमज़ोर इन्सान की तरह दुःखमय जीवन व्यतीत करना चाहते हो?

मौन।

इस सन्दर्भ में याद रखो जो इन्सान खुद नीतियों पर नहीं चलता, वह अपने परिवारजनों व औरों को भी नीतियों पर चलाने का पराक्रम नहीं दर्शा पाता। इस तरह बाद में वह इस करनी का दुःखद फल प्राप्त होने पर अपने कर्मों को रोता है।

क्या आप यह फल प्राप्त करना चाहोगे?

नहीं जी।

तो फिर नीति पालना पर सुदृढ़ हो जाओ और अब चाहे जीवन में कुछ भी हो जाए, कुछ भी छूट जाए आपको उसका फुरना न सताए। इस हेतु चाहे जान भी वारनी पड़े तो भी मत सकुचाओ अपितु खुद नीति पर मज़बूत बने रहो और अपने

परिवारजनों को भी इसके प्रति सुदृढ़ बनाओ। आओ अब यह मज़बूती लेने के लिए इस कीर्तन का भावार्थ समझते हैं:-

सजन जी क्या आप हमें बता सकते हैं कि इस कीर्तन के माध्यम से श्री साजन जी नीतियों के वर्ताव के संदर्भ में त्रेता युग का उदाहरण देते हुए हमें क्या समझा रहे हैं?

सजन जी, वह हम सजनों को बता रहे हैं कि त्रेता युग में राम रूप में, विष्णु स्वरूप मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान, मानव जाति को, मानवता अनुसार परस्पर व्यवहार करने की परिपूर्ण नीतियाँ सिखा गए, पर आज के समयकाल में कोई विरला इंसान ही उनका अनुसरण करने हेतु यत्नशील है यानि आत्मनिरीक्षण द्वारा अंतर्निहित बुराईयों को खोज, उचित उपचार द्वारा, पुनः धर्मज्ञ बन, सत्यनिष्ठा से, आत्मीयता अनुसार जीवन जीने की युक्ति अपनाने में रूचि रखता है। आशय यह है कि उन्होंने यह शिक्षा, अपने जीवन में आई अनेकानेक कठिन परिस्थितियों के बावजूद भी, खुद क्षमाशीलता व त्याग भावना से एक आत्मतुष्ट उत्तम मनुष्य की तरह, शत्रु-मित्र आदि के भाव से उदासीन रह, निष्पाप सदाचारिता की मर्यादा में बने रहकर अन्यों को प्रदान की व इस तरह मानव धर्म का गौरव बढ़ाया और मर्यादा पुरुषोत्तम कहलाए। इसलिए तो वह परिपूर्ण आज भी भगवान की तरह पूज्य और आदरणीय माने जाते हैं।

सजन जी, इससे उन्हें क्या लाभ हुआ?

इससे जीवन की अच्छी-बुरी हर परिस्थिति में, उनके मन में धर्म वृत्ति सदा बनी रही व उनके स्वभाव के अंतर्गत हो गई।

तभी तो वह आपसी व्यवहार सम्बन्धी नियम का पालन करते हुए, समाज की रक्षा और सुख-शांति की वृद्धि कर पाए और उन्होंने ईमानदारी से अपने पिता के वचनों को सत्यता से प्रवान करते हुए, राजपाट का मोह त्याग कर एक वनवासी की तरह, आजीवन सत्कर्म करते हुए, सम्पूर्ण मानव जाति को धर्म-सच्चाई के रास्ते पर चलाने हेतु आदर्श स्थापित किया। उन्हीं के नक्शे-कदम पर, लोक मर्यादा अनुसार पवित्रता के प्रतीक श्री राम जी का स्थाई संग प्राप्त करने हेतु, श्रेष्ठता की प्रतीक उनकी पत्नी सीता जी व भ्राता लक्ष्मण जी ने, महान शब्द विचार पकड़, अपनी आत्मा की आवाज़ के अनुसार भावनायुक्त हो, ऐश्वर्यपूर्ण जीवन त्याग दिया और उनकी सेवा के निमित्त उनके संग वन को चल पड़े। इस प्रकार उन्होंने नीति अनुसार सम्बन्धों के प्रति सम्मान प्रदान करने का धर्म या कर्त्तव्य निभाया। श्री साजन जी कहते हैं कि इस संदर्भ में विडम्बना की बात यह है कि यह सब कुछ जानने-समझने के बावजूद भी आज के समय में कोई विरला निष्कामी ही ऐसा उद्यम दिखा पाता है।

सजनों वर्णित इस उदाहरण से हमें क्या शिक्षा मिलती है?

यही कि वर्तमान हालातों में अपने मुख्य जीवन लक्ष्य यानि श्रेष्ठ पद प्राप्त करने हेतु, हर इंसान को उन द्वारा दर्शाई जीवन आचार-पद्धति यानि वैसा ही जीवन जीने का ढंग अपनाना होगा और इस प्रकार जनता अथवा समाज के हित के लिए निश्चित अच्छे आचार-व्यवहार और चलन की नीति के अनुसार जीवन में वही कार्य करने सुनिश्चित करने होंगे जिससे अपना हित हो तथा दूसरों को कष्ट अथवा हानि न

पहुँचे। निश्चित ही इस ठहराव वाली मानसिक स्थिति में बने रहने पर ही हम, वर्तमान में जीते हुए अपने हृदय में धर्म स्थापित रख सकेंगे।

सजन जी, सजन श्री शहनशाह हनुमान जी व रावण के प्रसंग में, नीति के वर्त-वर्ताव की महत्ता इस कीर्तन में किस प्रकार व्यक्त की गई है?

श्री साजन जी इस कीर्तन के माध्यम से हमें बताते हैं कि सजन श्री शहनशाह हनुमान जी ने, समभाव-समदृष्टि की युक्ति अनुसार, परस्पर सजन भाव के वर्त-वर्ताव की नीतियों पर चलकर ही, इस जगत में अपना नाम अमर कर लिया। नीतियों पर बने रहने का महत्त्व समझाते हुए, वह रावण द्वारा अनीतिपूर्ण सीता हरण कर लंका ले जाने की बात बताते हुए कहते हैं कि रावण के इसी अनीतिपूर्ण चलन के कारण ही सजन श्री शहनशाह हनुमान जी ने उसकी सोने की लंका को विरान कर दिया। इस संदर्भ में एक अन्य कीर्तन के अंतर्गत रावण का उदाहरण देते हुए यह भी कहा गया है:-

मेरियो प्यारियो भैणों,
हुन न करो तुसीं अनीतियाँ।

बलधारी जी दे बल दा है सब नूं पता,
जो रावण नाल बीतियां।

सजनों यहाँ हैरानी की बात यह है कि यह जानते हुए भी आज कोई विरला इन्सान ही उचित व्यवहार की रीति अपनाने के प्रति यत्नशील है।

नीतियों के वर्त-वर्ताव की आवश्यकता पर बल देने हेतु द्वापर युग की बात बताते हुए श्री साजन जी हम सजनों को क्या समझौता दे रहे हैं?

वह कहते हैं कि श्री कृष्ण चन्द्र भगवान जी ने भी अर्जुन को आत्मिक ज्ञान प्रदान कर धर्म रक्षा हेतु नीतियों के अनुसार चलने की क्रिया सिखाई। इस परिप्रेक्ष्य में आज के दुराचारी मानसिकता वाले इंसानों की बुरी हालत को दृष्टिगत रखते हुए वह कहते हैं कि चाहे कोई विरला ही, इस भयावह परिस्थिति से उबर अपना सुधार कर सकता है पर आप सब तो मनुष्यत्व अनुरूप व्यवहार में बने रहने हेतु, सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में विदित महाबीर जी की युक्ति को प्रवान कर, आत्मिक ज्ञान प्राप्त करो व इस तरह श्रेष्ठ मानव बन जाओ।

हम यथार्थतः सजन पुरुष बन पाएं, उसके लिए श्री साजन जी हम सबको क्या संदेश दे रहे हैं?

वह कह रहे हैं कि अब नीतियों के विरूद्ध, स्वार्थपर अधर्म के अन्यायपूर्ण व अत्याचारयुक्त बुरे रास्ते पर चलना छोड़ दो और नैतिक पतन से उबरने हेतु नीतिपरायण यानि सदाचारी बनो। इस तरह अपने जीवन का हर कार्य सर्वहित के लिए सम्पन्न करो और अपना आचार-व्यवहार समाज के कल्याण के निमित्त बनाए रखो।

सजन जी जो इंसान श्री साजन जी के कथन अनुसार, अपने जीवनकाल में नीतियों का वर्ताव करना सुनिश्चित करते हैं, उन्हें क्या लाभ प्राप्त होता है?

सजन जी जो इंसान अपने जीवनकाल में नीतियों का वर्ताव

करना सुनिश्चित करते हैं, वह ही मोक्ष के अधिकारी बनते हैं और उनकी ही ज्योतिर्मय आत्मा निर्वाण पहुँच शांत हो पाती हैं।

सजनों जीवन जीने का सही ढंग अपनाने के लिए, श्री साजन जी हमें क्या कहते हैं?

वह कहते हैं कि जीवन जीने का सही ढंग अपनाने के लिए खुद को बाध्य करो। वह कहते हैं कि हम जानते हैं कि चाहे आज सांसारिकता में उलझे हुए विषय-विकारी इंसानों में से कोई विरला इंसान ही आत्मपद को प्राप्त करने का यत्न करने हेतु तत्पर होगा पर फिर भी इस अमोलक इंसानी चोले का पूर्ण लाभ उठाने के लिए हनुमान जी की युक्ति प्रवान कर नीतियों के विरूद्ध चलना छोड़ दो। इस तरह नीति पुरुषोत्तम बनने के लिए आज तक अपनाए अपने मनोभावों को समझो व विचारसंगत नीतियों पर स्थिरता से बने रहने की भावना को अपने अन्दर जाग्रत करो व जगत विजयी बनो। इस संदर्भ में हम नीतियों से गिरे हुए इंसान पुनः व्यवहारिक नीतियों पर खड़े रहने का पुरुषार्थ दिखा पाएं उसके लिए वह हमें सचेत करते हुए पुनः कहते हैं कि यह शुभ कार्य कोई विरला ही इंसान कर पाएगा, अतः वह विरला इंसान बनने हेतु खुद को तैयार करो।

सजनों हमारी हिम्मत बढ़ाने के लिए कीर्तन के अंत में ध्रुव-प्रह्लाद व गुरु गोविन्द सिंह जी के लाडलों का ज़िक्र करते हुए वह हमें क्या कहते हैं?

इस प्रसंग द्वारा वह हमें नीतियों की पालना की अद्वितीय

महत्ता बताते हुए कहते हैं कि, अनीतियों पर चलने वाले पिता रूपी मुखिया के होते हुए भी, भक्त ध्रुव-प्रह्लाद ने, अन्याय का रास्ता अपनाने के स्थान पर, उनके बुरे चलन से अप्रभावित रह, कष्ट-क्लेश सहकर भी, नीतियों का कुशलता व निर्भयता से वर्त-वर्ताव करके अद्भुत साहस दिखाया। इसी तरह गुरु गोविन्द सिंह जी के लाडलों ने भी धर्म पर अपनी जानें कुर्बान कर अपना नाम रोशन किया। अतः हमें भी ऐसा पराक्रम दिखाना चाहिए और इस हेतु अपना तन-मन-धन वारने से नहीं सकुचाना चाहिए।

अंततः सजनों इस कीर्तन के माध्यम से श्री साजन जी हम सबको बड़े प्यार से व अपनेपन से एक नेक इंसान बनने हेतु कहते हैं कि हे मेरे सजनों ! अब अनीतियों का अंधकारमय रास्ता छोड़ दो। अनीतियों को अंधकारमय रास्ता इसलिए कह रहे हैं क्योंकि अज्ञानवश अनीति करने वाले को यह बोध ही नहीं रहता कि मैं क्या अनीति कर रहा हूँ और यदि कोई उसको उसकी गलती का बोध कराने का यत्न करता भी है तो वह मान-अपमान में आ तुरन्त भड़क उठता है। इस तरह इस अज्ञान के कारण उस अंधकार में भटकने वाले को सही मार्ग नज़र ही नहीं आता और वह आवेशित हो उठता है। अतः सजनों अनीति से प्राप्त होने वाले दुष्परिणामों को दृष्टिगत रखते हुए आप यह भूल कदाचित् मत करना और नीतिपरायण बन समभाव-समदृष्टि की युक्ति अनुसार परस्पर सजन-भाव का वर्त-वर्ताव करते हुए अविलम्ब नीतियों के प्रकाशमय रास्ते पर चलना आरम्भ कर देना। इस तरह मोक्ष के अधिकारी बन अपना जीवन सफ़ल

बनाना। इस संदर्भ में सजनों सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ कह रहा है:-

नीतियाँ ते चलने दा तरीका ओ बेटा,
एहो सजनां नूं समझाई ओ जावो।
हिम्मत बढ़ाई ओ जावो,
एहो तरीका सारी विश्व नूं समझाई ओ जावो।

सजनों यह ईश्वर का हुक्म है। अतः हुक्मानुसार नीतियाँ पालन करने के सन्देश को कुल दुनियां तक पहुँचाना है और मर्यादा पुरुषोत्तम श्री राम की तरह समभाव-समदृष्टि की युक्ति अनुसार, सजन-भाव की नीतियों में सबको बाँध देना है। निश्चित ही ऐसा करने पर निज परमतत्व को जान, उसे अपने मन-वचन-कर्म द्वारा प्रकाशित करने का पराक्रम दिखाने के योग्य बन जाओगे। सजनों यदि ऐसा पराक्रम दिखा दिया तो जानते हो सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ के अनुसार क्या कह उठोगे:-

सच्चे पातशाह जी कह रहे हैं

सब तों है महाबीर जी प्यारा ओ प्यारा,
कैसे छड्डां रघुनाथ जी रीतियां।
कैसे छड्डां रघुनाथ जी रीतियां,
हुण कैसे छड्डां रघुनाथ जी रीतियां।।
कर्ता वी आप हो अकर्ता वी आप हो,
कर्ता वी आप हो अकर्ता वी आप हो।
इन्हां रीतियां मिलाया महाबीर प्यारा ओ प्यारा,
कैसे छड्डां रघुनाथ जी रीतियां।

सिंहासन है हुण आपदा,
दूसरा कोई नहीं जापदा।
इन्हां रीतियां दिखाया तुआडा द्वारा ओ द्वारा,
कैसे छड्डां रघुनाथ जी रीतियां।
बिन सूरजों प्रकाश जग अन्दर,
तेरा निवास हर वस्त अन्दर।
प्रकाश ही प्रकाश नज़र आया ओ आया,
कैसे छड्डां रघुनाथ जी रीतियां।।
अन्दर प्रकाशी बाहिर प्रकाशी,
बाहिर प्रकाशी मन मन्दिर प्रकाशी।
सब विच आप समाया ओ समाया,
कैसे छड्डां रघुनाथ जी रीतियां।
हनुमान जी दे चरणां ते ढावां,
पूरण महाबीर जी दे चरणां ते ढावां।
सहंसर बार खुशियां मनावां,
लख लख वारी खुशियां मनावां।
जैं अटल राज दिखाया दिखाया,
कैसे छड्डां रघुनाथ जी रीतियां।।

हमें विश्वास है सजनों कि अब तो आप सबको सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में विदित नीतियों व रीतियों अनुसार जीवन जीने की शैली समझ में आ गई होगी और अब आप सहज ही कह उठोगे:-

मायापति ओ धनुषधारी ओ हां ओ हां,
नीति पुरुषोत्तम ओहदा है नाम है ओ जगत बिहारी।

अंत में सजनों हम तो यही कहेंगे कि जितनी देर आपको इस

द्वारे पर आते हुए हो गई है, उस समय काल को देखते हुए अब तक तो आप को इन नीतियों पर मज़बूत बने रह, अपने परिवारजनों को उन्हीं नीतियों अनुसार चलाने में सक्षम हो जाना चाहिए था। परन्तु ऐसा नहीं हो पाया। शायद इसके पीछे कारण चहुं ओर फैला कलियुगी वातावरण का दुष्प्रभाव है। सजनों आत्मनिरीक्षण द्वारा इस दुष्प्रभाव को समझो और सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में विदित शब्द विचार को पकड़, सपरिवार इंसानियत की मर्यादाओं में बँधे रह घर सतयुग बनाओ। इसी में सजनों अपना बचाव समझो और आज के शुभ दिवस हिम्मत से इन नीतियों पर बने रहने का पुरुषार्थ दिखाओ व अटल राज पाओ।

इन्हीं शुभकामनाओं के साथ।

दिनाँक 6 नवम्बर 2016 का सबक़

पुनरावृत्ति

साडा है सजन राम, राम है कुल जहान

अर्थात् ईश्वर हमारा मित्र/प्रियतम सर्वव्यापक है, उसी को जानो, मानो व वैसे ही गुण अपनाओ।

शब्द है गुरु, शरीर नहीं है,

अर्थात् ज्ञानी को नहीं ज्ञान को अपनाओ और निमित्त में नहीं नित्य में श्रद्धा बढ़ाओ।

याद रखो यदि इससे विपरीत चलन अपनाया तो किसी अज्ञानी के हाथ की कठपुतली बन अपना जीवन बरबाद कर बैठोगे। सो अपने साथ ऐसा अनर्थ मत होने देना।

इस पर सुदृढ़ता से डटे रह, इस अटल सत्य पर स्थिर बने रहोः-

ओ३म् अमर है आत्मा, आत्मा में है परमात्मा

सजनों ईश्वर बहुत कृपालु है। उनकी कृपा का उचित पात्र बनने का यत्न करो ताकि इस जीवन का भरपूर आनन्द मानते हुए अपने सच्चे घर की ओर प्रस्थान कर सको। इस संदर्भ मे जानो कि कलियुग में तो वह दयालु अपनी तरफ से पहल कर कुपात्रों को भी अपनी कृपा का पात्र बनाने का यत्न करते हैं ताकि उनके अन्दर भी परिपूर्ण परमार्थी धन को प्राप्त करने की इच्छा पैदा हो सके और वह भी एक आत्मतुष्ट इंसान की तरह जीवन जीने के योग्य बनें। पर कलियुगी जीव यहां भी उनकी कृपा को न समझते हुए

निरादरी कर जाते हैं और निरादरी का फल प्राप्त होने पर रोते-झुखते हैं। सजनों हमें ऐसा नहीं करना चाहिए अपितु उस समय यह विचारना चाहिए कि अगर वह दाता हमें सब सुख प्रदान कर रहे हैं तो हमें उन संग बने रह जो भी दात वह दे रहे हैं उसको धारण करने हेतु हर संभव चेष्टा करनी है ताकि फिर हमें उस दयालु के अतिरिक्त किसी और से कुछ माँगने के लिए उसके आगे सीस न झुकाना पड़े और हम उनके संरक्षण में रह उचित दिशा निर्देशन प्राप्त कर अपना जीवन बना सकें। इसी सन्दर्भ में सजनों आज हमने आत्मनिरीक्षण करना है कि कहीं किसी बुरे भाव-स्वभाव में या रोने-झुखने में अटक कर हम अपनी किस्मत को आप ठोकर तो नहीं मार रहे। आओ इस हेतु पिछले सबक की पुनरावृत्ति करते हैं।

पुनरावृत्ति का अर्थ है किए हुए काम को दोहराना या दोबारा करना। ऐसा करना इसलिए आवश्यक होता है ताकि जिस उद्देश्य सिद्धि हेतु हम कार्यरत हैं, उस को पूर्ण करने के मार्ग में यदि कोई कमी-पेशी है तो उसका सज्ञान लें, उसे समय रहते ही पूरा कर लिया जाए। इस तरह आत्मिक ज्ञान प्राप्ति द्वारा हम जिन कलुकाल के स्वभावों से छुटकारा पाने हेतु तथा जिस खोई हुई सतवस्तु को पुनः प्राप्त करने के लिए यत्नशील हैं, हमारे हृदय में उसका पुनरागमन हो जाए और हमारे लिए अपने जीवन काल में सत्य-धर्म के निष्काम रास्ते पर बने रहना सरल व सहज हो जाए। इसे, जो अधर्म के रास्ते पर चलते हुए बार-बार जीवन हार कर हम जन्म-जन्मांतरों तक जन्म-मरण के दुःखद चक्रव्यूह में उलझे रहते

हैं, उससे आज़ाद होकर, फिर से एक धर्मपरायण इंसान की तरह, सत्यनिष्ठा से पुण्य कर्म करते हुए जगत विजयी होने की बात मानो। इसलिए आत्मनिरीक्षण कर छोड़े हुए कार्य को पूर्ण एकाग्रचित्तता द्वारा समयबद्ध पूरा करने में ही अपना व अपने परिवारजनों का हित मानो व बार-बार संसार में कर्मानुसार जन्म ग्रहण करने के सिद्धान्त को छोड़ अपने यथार्थ अजर-अमर नित्य ज्योति स्वरूप में स्थित हो जाओ। यह मिथ्या संसार से प्रीति छोड़ प्रभु संग प्रीत लगाने की शुभ बात है। अतः आत्मनिरीक्षण करने की क्रिया को अपने स्वभाव के अंतर्गत करने हेतु पुनर्विचार कर आत्मनियन्त्रण द्वारा आत्मसुधार करने का निर्णय लो और एक आत्मज्ञानी यानि सचेतन इंसान की तरह प्रसन्नचित्तता से आनन्दमय जीवन जीना सुनिश्चित करो।

इस सन्दर्भ में संगी-साथियों की क्रियाओं में उलझना छोड़ दो यानि एक दूसरे की बात को मन में लेकर सारा दिन उस को ही सोचते रहने के स्वभाव में अपना समय व्यर्थ मत करो। याद रखो इस से मन में दुर्भाव पैदा होते हैं और ख़्याल जगत में उलझ जाता है। इन्हीं दुर्भावों के कारण ही हम, परस्पर दुई भाव वाला व्यवहार करते हुए दुराचार करते हैं। यही नहीं इसी से सम्बन्धों में झंझट खड़े होते हैं और तनाव के कारण हृदय की आनंदमय अवस्था भी भंग हो जाती है और मानसिक तनाव अपने दुःखद रूप से हमें बार-बार त्रस्त करता है। इसीलिए कह रहे हैं कि जो समय दूसरों की बातें सुनने व करने में बरबाद करते हो, वह समय अब अपने सुधार व उद्धार हेतु लगाना शुरू कर दो। जानो जैसे बहार

आने पर मुरझाई हुई कली खिल उठती है वैसे ही ऐसा करने से आपका हृदय बहार की तरह खिल उठेगा और आप मृत्यु के चंगुल से छूट सही अर्थों में फिर से जी उठोगे। याद रखो ऐसा होने पर आप नैतिक पतन से उबर जीवन के उन्नति पथ पर अग्रसर होने में सामर्थ्यवान हो जाओगे और अन्त अपने जीवन लक्ष्य को प्राप्त कर लोगे। इसलिए फिर से कह रहे हैं कि शब्द ब्रह्म विचारों को ग्रहण कर जाग्रति में आओ व अपना पुनरुद्धार करो। ऐसा करना, यह मिथ्या जगत रूपी आडम्बरी संसार का संग छोड़, पुनर्निमाण द्वारा, अपने सच्चे घर वापस लौट आ बसने की बात है। इसीलिए तो कह रहे हैं सजनों सम्भलो , सम्भलो, सम्भलो, अब सम्भल ही जाओ, मानव जन्म है अमोलक मिलया, इसे वृथा मत गँवाओ। अब ध्यान से सुनोः-

सम्भलो सम्भलो सम्भलो
अब सम्भल ही जाओ
मानव जन्म अमोलक मिलया
इसे वृथा न गँवाओ।

झूठ चतुराईयाँ छड के सारे
सच्चाई धर्म दी राह अपनाओ
समदृष्टता का व्यवहार अपनाकर
अपना जीवन सफ़ल बनाओ।

जिस कारण भी दिल उखड़े हों
वह बीती विहाणी भूल ही जाओ
एक जोत से सब उपजे हो
यह सत्य समझ एक हो जाओ।

भूखे भिखारी न बन के जीओ
औरों के शिकारी न बन के जीओ
जीना चाहते हो सुख से अगर
तो संतोष धैर्य आनन्द से जीओ।

मोह माया से पीछा छुड़ा कर
स्वतन्त्र रूप से जीना सीखो
ऐसे नित्य स्वरूप में रहकर
सच्चे घर की ओर प्रस्थान करो।

सजनों इस उत्तम उद्देश्य की प्राप्ति हेतु न तो अपने कदमों को परमार्थ की राह पर आगे बढ़ने से रोको और न ही किसी और को जो इस राह पर अग्रसर हो रहा है, उसके रास्ते में विघ्न उत्पन्न करो। याद रखो यदि स्वार्थसिद्धि हेतु ऐसा किया तो मात्र हताशा के और कुछ नहीं प्राप्त होगा। अतः सब इस अनुचित स्वभाव के प्रति सतर्क रहना और दृढ़ता से सच्चाई-धर्म के निष्काम पथ पर डटे रहना। इसके लिए चाहे आपको जो कुछ भी बर्दाश्त करना पड़े, धैर्य शक्ति के प्रयोग द्वारा, वह सब हँस कर सह जाना और किसी भी फुरने को अपने सद्मार्ग की बाधा मत बनने देना। इस तरह संभल-संभल के आगे बढ़ना।

इसी सन्दर्भ में आओ अब पिछले सबकों को दोहराते हुए आत्मनिरीक्षण करते हैं और अपनी उन्नति के विषय में स्पष्टता लेते हैंः-

1. क्या आप युग परिवर्तन के संकेत को समझते हुए, समय के साथ आगे बढ़ने के लिए, सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में जो

हर मानव के लिए कलुकाल के अविचारी, दोषपूर्ण भाव-स्वभाव छोड़कर, समभाव-समदृष्टि अनुरूप, पुनः विचारशील बनने की प्रयोगात्मक युक्तियाँ हैं, उन्हें पूर्ण विश्वास व समर्पित भाव से अपना पा रहे हो या नहीं?

2. क्या आप नित्य आत्म स्वरूप में स्थिर रहने यानि निरंतर संकल्प रहित अवस्था में बने रहने हेतु सजन भाव के वर्त-वर्ताव द्वारा, ख़्याल को कुसंग से बचाए रख, सजन व संगी बनाए रखने का यत्न करने में सफ़ल हो पा रहे हो या अभी भी काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार के कुसंग ने आपके ख़्याल को दबोच रखा है और आप परमार्थ के विचारयुक्त सवलड़े रास्ते पर अग्रसर होने के स्थान पर, स्वार्थपर अविचारी अवलड़ा रास्ता छोड़ने में ख़ुद को विवश पा रहे हो?

3. क्या आप जीवन के अर्थ की गंभीरता व गहराई को समझते हुए, मानव जीवन के अर्थगत रहते हुए, वैसा ही अर्थयुक्त जीवन जीने हेतु जीवन के हर पल का सदुपयोग करने में सक्षम हो रहे हो या व्यर्थ ही समय इधर-उधर बेकार कर अपना जीवन नकारा कर रहे हो?

4. क्या अब आप जीवन में जो भी करते हो वह उचित-अनुचित का भली भांति विचार करके यानि जाँच तोल कर ही करते हो या अभी भी संसारी कनरस के कारण, तकरार का स्वभाव अपनाकर व्यर्थ की कल्पना में फँसे हुए, परेशानियों का सामना कर रहे हो?

5. क्या आप घर-परिवार व समाज की कठिन परिस्थितियों के होते हुए भी, परम पुरुषार्थ द्वारा उन परिस्थितियों के

जीवन पर पड़ने वाले दुष्प्रभावों से मुक्त रह अर्थपूर्ण जीवन जी पाने का आदर्श सबके सामने रखने में कामयाब हो रहे हो या अभी भी यानि इतना समझाने के बावजूद भी जीवन की बदलती परिस्थितियों अनुसार आपके जीवन का प्रयोजन भी बदल जाता है? यदि आपके साथ ऐसा होता है तो जान लो यह एक अत्यन्त ही कमज़ोर, लापरवाह व आलसी इंसान की निशानी है।

6. क्या आप घर-परिवार व समाज के समस्त सदस्यों के प्रति अपना कर्त्तव्य निष्कामता व निर्लिप्तता से हँस कर निभा पा रहे हैं या फिर कामना सिद्धि के कारण, कर्म फल के प्रति आसक्ति का भाव आपको सताता रहता है?

7. क्या आप स्वविवेक द्वारा कर्त्तव्य के औचित्य व अनौचित्य पर विचार कर अपनी आवश्यकता, समय और परिस्थिति के आधार पर अपना कर्त्तव्य-कर्म, उचित ढंग से समयबद्ध पूरा करने हेतु धर्मसंगत बने रह पाते हो या नहीं?

8. क्या आप आत्म-कल्याण हेतु आत्मनिरीक्षण की महत्ता को समझते हुए, आत्मानुशासन द्वारा अपनी शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक शक्तियों का विकास कर, आत्मसुधार करने में जुटे हुए हो या अभी भी आदतन विवश हो जो यहाँ सुन जाते हो उसे यहीं छोड़ संसारी बातों के कनरस में फँस अपना अनमोल जीवन बरबाद कर रहे हो?

9. क्या आत्मज्ञान प्राप्ति, जो आपका सर्वप्रथम कर्त्तव्य है, उसका सम्पादन कर आप आत्मकेन्द्र में स्थिर रह पा रहे हो या मनमत अभी भी एक श्रेष्ठ पुरुष बनने में आपके आड़े आ रही है व आपके जीवन हारने का कारण बन रही है?

10. क्या आप जीवन जीने का सही ढंग अपनाने के लिए खुद को बाध्य कर पा रहे हो यानि नीति पुरुषोत्तम बनने के लिए आज तक अपनाए अपने मनोभावों को समझ, विचारसंगत नीतियों पर स्थिरता से बने रहने की भावना को अपने अन्दर जाग्रत कर रहे हो या नहीं?

11. क्या आप मानव धर्म अनुरूप आचार-पद्धति अपना कर, परस्पर व्यवहार करने की परिपूर्ण नीतियों का अनुसरण करने हेतु, जीवन में केवल वही कार्य/कर्म कर रहे हो जिससे अपना हित हो तथा दूसरों को कष्ट अथवा हानि न पहुँचे यानि हर कर्म धर्मसंगत करने का पराक्रम दिखा पा रहे हैं या अभी भी नीतियों के विरुद्ध, स्वार्थपर अधर्म के अन्यायपूर्ण व अत्याचारयुक्त बुरे रास्ते पर चल रहे हो?

हम मानते हैं कि उपरोक्त बातचीत द्वारा, आज तो आत्मनिरीक्षण का महत्त्व आपको भली-भांति समझ में आ गया होगा। इस परिप्रेक्ष्य में सजनों सारतः याद रखना कि यदि हम शारीरिक, मानसिक व आध्यात्मिक रूप से शक्तिशाली नहीं है तो कोई भी हमें अपने छल-बल, धन व मोह-पाश में फँसाकर परमार्थ के रास्ते पर आगे बढ़ने से रोक सकता है। अतः किसी भी कमज़ोरी के कारण तनाव युक्त होकर, विघ्नकारी कार्यों में रत हो पथभ्रष्ट मत हो जाना। इसके स्थान पर सर्वरूपेण अपनी शक्तियों का विकास करने का यत्न करना। इस विषय में यह सोचकर कि हाय यह मैं कैसे करूँगा, अपने आप को परमार्थ के रास्ते पर अग्रसर होने हेतु विवश मत समझना अपितु संसारी बातों के कुसंग से बचने का पराक्रम दिखाना। याद रखो यदि ऐसा

कर दिखाया तो एक समझदार इंसान की तरह अपनी सम्भाल खुद कर सकोगे। अतः पूर्ण सफ़लता हेतु अब अपने मनोभावों का गहराई से अवलोकन करना सुनिश्चित करो और हृदय पर छाया दुर्भावों का अंधकार मिटा कर पुनः प्रकाशित हो पुण्य आत्मा बनने का पराक्रम दिखाओ। इसके लिए क्या करना होगा, अब ध्यान से सुनोः-

हृदय अंधकार मिटाने की खातिर
मन का बुझा दिया जलाओ
ए विध हृदय प्रकाशित करके
आत्मिक ज्ञान सब ही पाओ

आत्मिक ज्ञान सब प्राप्त करके
आत्मज्ञानी हो जाओ
विवेकशीलता से जग में विचरो
और सदा निर्लेप राहवो

हाँ हाँ सब ऐसे ही बनकर
एक निगाह एक दृष्टि हो जाओ
फिर संकल्प रहित होकर
एक दर्शन में स्थित हो जाओ

इस तरह सतवस्तु में आकर
विचार ते सतज़बान अपनाओ
समभाव समदृष्टि के सबक अनुसार
सब सजन पुरुष बन जाओ

सजनों सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ के अनुसार सजन कलुकाल हटने वाला है और सतवस्तु आने वाली है।

सतवस्तु में विचार ते सतज़बान होसी, एक दृष्टि, एकता महान होसी। न जप, न तप, न भजन, न बन्दगी, एक अवस्था ओ जगत जहान होसी। इसीलिए सजनों उच्च बुद्धि, उच्च ख़्याल हो जाओ व दिव्य दृष्टि का सबक़ ले अपनी असलियत की पहचान कर लो यानि 'जेहड़ा मन मन्दिर प्रकाश, ओही असलियत ज्योति स्वरूप है मेरा अपना आप' इस नित्य ब्रह्म भाव पर निषंग खड़े हो जाओ। इस तरह जनचर, बनचर, जड़-चेतन में एक दर्शन का अनुभव करते हुए सदा एकता और एक अवस्था में बने रहो। इसे अपने आप में शांतिपूर्वक, आनन्दमय जीवन जीने की बात समझो। इस प्रकार जो इस जगत में करने आए हो उसको भली-भांति जानो व अन्य संसारी झंझटों में उलझने के स्थान पर केवल उसे ही समयबद्ध, धर्मसंगत करना सुनिश्चित करो और सदा अफुर अवस्था में विश्राममय बने रहो। हाँ सब ऐसे बनकर अपना जीवन सफ़ल बनाओ, अपना जीवन सफ़ल बनाओ, अपना जीवन सफ़ल बनाओ।

सारतः सजनों हृदय अंधकार मिटाने के लिए, अन्य सोचों में डूबे रहने के स्थान पर, अक्षर के अजपा जाप द्वारा, मन का बुझा दीपक जलाओ ताकि इस जगत में जो भी करने आए हो उसको भली-भांति यथार्थता जान सको और तत्पश्चात् संसारी झंझटों से खुद को रक्षित रख मानव जीवन के परम लक्ष्य को समयबद्ध धर्मसंगत पूरा करने का पराक्रम दिखा सको। निश्चित ही ऐसा करने से ख्याल अफुरता से प्रभु संग जुड़ जाएगा और आप अपना जीवन सफ़ल बना सकोगे। इस सन्दर्भ में हम आप सब प्रभु की सुन्दर कलाकृतियों को इसके प्रति सचेत करने के लिए कहना चाहते हैं कि:-

प्रभु के सुन्दर गुड्डे-गुड़ियो
आत्मज्ञान प्राप्त करके
समझदार सब बनना
कभी भी मोह माया में फँस कर
किसी की कठपुतली मत बनना।

तभी तो याद रहेगा सबको
एक ही पिता है सबका
जो सखा व स्वामी भी है
अपने ही रचाए जग का।

यही तो विचार शब्द है
पकड़ो और मन वश में रखो
मन वश में है तो सब अपना है
सब अपना है तो मौजां ही मौजां।

आओ अब मौजें मनाएँ ....
मौज मना ली तो इसी मौज में ही रहना वरना.....

कठपुतली बने तो
औरों के इशारों पर नाचोगे
फिर विषय विकारों में फँस कर
अनुचित ही सब कार्य करोगे।

ए विध् अपराधी बन
दंड के भागी बनोगे
इसी बड़ी भूल के कारण
यथार्थ स्वरूप से अपरिचित रहोगे।

तभी तो कहते हैं सबसे
ऐसी भूल कभी न करना
निर्विकारी रह जगत में
समभाव से ही विचरना।

ऐसा सुनिश्चित कर पाए तो
परमार्थ की राह पर डटे रहोगे
सत्य-धर्म की साधना कर।

केवल परोपकार ही करोगे,
हाँ परोपकार ही करोगे
तो ऐसे बनना, हाँ ऐसे ही बनना,
और सब ऐसे बन, यश-कीर्ति प्राप्त करना।

अर्थात् सजनों भूल कर भी कभी कलुकाल के भाव-स्वभावों की कठपुतली मत बनना क्योंकि उस की कठपुतली बनने का अर्थ होगा विषय-विकारों में फँसना। अगर विषय-विकारों में फँसे तो हृदय पर अज्ञान का बादल छा जाएगा और अपना यथार्थ स्वरूप नज़र नहीं आएगा। परिणामतः अपनी असलियत से विमुख ख्याल द्वि-भाव के फुरने में जा फँसेगा और इस प्रकार बुद्धि के भ्रमित होते ही अंतर्द्वन्द्व पैदा हो जाएगा। इसी अंतर्द्वन्द्व के कारण मानसिक रोगी जा बनोगे और अपने मन-वचन व कर्म पर से अकुंश छूट जाएगा। इस तरह सत्य-धर्म का विचारयुक्त रास्ता छूटते ही जीवन हार बैठोगे। अतः यह भूल मत करना और इस हेतु याद रखना कि आपका यथार्थ धर्म सतवस्तु है। जो कलुकाल के स्वभावों की कठपुतली नहीं बनता वह आत्मिक ज्ञान प्राप्त कर, स्वभाविक तौर पर अपने इसी असलियत स्वरूप में बना

रहता है और श्रेष्ठ इंसान कहलाता है। अपने यथार्थ स्वरूप की पहचान करने हेतु सजनों आत्मिक ज्ञान प्राप्त कर समझदार इन्सान बनो और संतोष-धैर्य अपनाकर सर्वोत्तम आत्मपद पर आसीन हो जाओ। यही आध्यात्मिक, आधिभौतिक व आधिदैविक--तीनों तापों पर फ़तह पा त्रिकालदर्शी होने की बात है। इस बात पर अमल फरमा सजनों जीवन की मौज उड़ाओ।

इन्हीं शुभकामनाओं के साथ।

दिनाँक 13 नवम्बर 2016 का सबक़

ऐक्य भाव

साडा है सजन राम, राम है कुल जहान

अर्थात् ईश्वर हमारा मित्र/प्रियतम सर्वव्यापक है, उसी को जानो, मानो व वैसे ही गुण अपनाओ।

सजनों विचार करो कि क्या यह विचार ऐक्य भाव का प्रतीक है या नहीं?

हाँ जी।

जानो यह मन्त्र हमें ऐक्य भाव में बने रहकर जीवन व्यतीत करने का सन्देश दे रहा है। अतः इस भाव का आदर करो और इसे अपने स्वभाव के अंतर्गत कर, सदा संतुलित मानसिक अवस्था में बने रहो। इस तरह सत्-ज़बान, एकता और एक अवस्था के प्रतीक बन जाओ। याद रखो जो सजन ऐसा कर लेगा, उसके लिए मन, वचन, कर्म में दुई भाव के अभाव के कारण समभाव नज़रों में कर परस्पर सजनता का व्यवहार कर पाना सहज हो जाएगा।

शब्द है गुरु, शरीर नहीं है,

अर्थात् ज्ञानी को नहीं ज्ञान को अपनाओ और निमित्त में नहीं नित्य में श्रद्धा बढ़ाओ।

यह विचार दर्शा रहा है कि आत्मा-परमात्मा अभिन्न हैं। अन्य शब्दों में सुरत यानि सचेतन शक्ति का मूलाधार, शब्द रूपी परमात्मा ही, वास्तव में उसका गुरु है। यह ऐक्य भाव का

प्रतीक है क्योंकि इसमें सुरत को संदेश व निर्देश दिया गया है कि किसी नश्वर शरीर को अपना गुरु मानकर उसके साथ मत जुड़ो। अन्यथा एकता भंग हो जाएगी और व्यर्थ में ही ईश्वर की खोज का सिलसिला आरम्भ हो जाएगा। यही भूल त्रेता युग के मानवों से भी हुई और उनके मन में नाना प्रकार के संकल्प-विकल्प उठने लग गए। परिणामतः कुछ मनुष्यों का ख़्याल परमात्मा की तरफ़ से विमुख हो शरीरों के साथ जुड़ गया और वह आत्मीयता के स्थान पर शारीरिक भाव-स्वभाव अपना बैठे। यही कारण है कि तब से लेकर अब तक ऐसे भ्रमित बुद्धि मानवों की गणना बढ़ती गई और आज अधिकतर मानव अधर्म का रास्ता अपना परस्पर भ्रष्ट आचार के प्रभावों से दुःख भोग रहे हैं और उस दुःख में निरन्तर इस तरह से बढ़ोतरी हो रही है कि आज दुःख ही उन का जीवन बन गया है।

हम कह सकते हैं कि वे परमार्थ से विमुख इंसान, संसारी सम्बन्धों में गलतान हो, झुखना-रोना इस तरह अपने स्वभाव के अंतर्गत कर बैठे हैं कि सुख को स्वीकारना ही नहीं चाहते। वे मानना ही नहीं चाहते कि आत्मा-परमात्मा अभिन्न है और उसकी प्राप्ति हेतु कोई भी मनगढ़ंत आडंबर युक्त रास्ता अपनाना व्यर्थ है यानि जगत में भटकने की बात है। आजकल के कलुषित समय काल में अधिकतर इसी मूर्खता में फँसे होने के कारण कुरस्ते पर चढ़ मनुष्यता के विपरीत आचरण करते हुए अपना जीवन बरबाद कर रहे हैं। पर आप जिन्हें सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ की सत्य ज्ञान धारा प्राप्त हो रही है वे तो यह मूर्खता मत करो और आत्मा और परमात्मा

को अभिन्न मान, ऐक्य भाव में आ, अपना जीवन सफ़ल बनाओ व अन्य सद्मार्ग से भटके हुए जीवों को भी सही रास्ते पर ला परोपकार कमाओ।

इस पर सुदृढ़ता से डटे रह, इस अटल सत्य पर स्थिर बने रहोः-

ओ३म् अमर है आत्मा, आत्मा में है परमात्मा

सजनों इसी तरह ऐक्य भाव पर अटल बने रह किसी अन्य भ्रमित बुद्धि के वश में कदापि मत फँसो। एकमात्र मूल मन्त्र ओ३म् आद् अक्षर के अजपा जाप द्वारा सत्य को अपने अन्दर उजागर करो। इस तरह आत्मप्रकाश के प्रभाव से अपने मानवीय स्वरूप को विकसित करो और स्थिरता से एकता में रहते हुए आनन्दमय जीवन व्यतीत करो।

स्पष्ट है सजनों कि यह तीनों ही विचार ऐक्य भाव यानि समभाव के द्योतक हैं और यह संदेश दे रहे हैं कि हम सम हैं। अतः सम ही अपने भाव, भावना में अपनाओ और स्वभाव के अंतर्गत कर आपस में समदृष्टि अनुरूप सजन भाव का व्यवहार करो। सजनों याद रखो जो सजन इन विचारों को आत्मसात् कर इन पर स्थिरता से बना रहता है वही समभाव-समदृष्टि के सबक अनुसार सहजता से सत्य धर्म के निष्काम रास्ते पर बने रह परस्पर सजन भाव का वर्त वर्ताव कर सकता है और ब्रह्म नाम कहा सकता है। आओ अब आज इसी बारे में विस्तार से जानते हैं:-

सजनों क्या आप जानते हो कि सर्वोच्च व सर्वोत्कृष्ट सत्य

क्या है?

यही कि सारे संसार के प्राणियों तथा पदार्थों में एक ही आत्मा व्याप्त है। यह सत्य आत्मा की समरूपता या विश्व की परमात्मा से एकरूपता को प्रगट करता है तथा अपने आप में समता, समानता, मेल, ऐक्य व बराबरी के भाव को प्रगट करता हुआ, आत्मीयता की भावना से भरपूर होकर अभिन्नता का व्यवहार या आचरण करने का निर्देश देता है। इस प्रकार यह ऐक्य का भाव, स्व और पर यानि मैं और तूं का अन्तर मिटाते हुए, आत्मा और परमात्मा के एकत्व अर्थात् आत्मिक आनन्द का बोध कराता है और अपने मन से पारस्परिक भेदभाव को मिटाकर सत्य, अहिंसा, प्रेम, धर्मनिष्ठा, सद्भावना और त्याग के साथ आपसी सहयोग, सहानुभूति और मैत्री भाव यानि सजन भाव जैसे मानवीय गुणों की अपेक्षा करता है।

वास्तव में यह अपने आप में सत्य-धर्म के निष्काम रास्ते पर स्थिरता से बने रहने की बात है। स्पष्ट है सजनों समानता व एकता का प्रतीक यह ऐक्य भाव अपने आप में अनुपम व बेजोड़ है तथा एक ही तरह की, एक ही बात दर्शाता है यानि इसके अंतर्गत होने पर परस्पर कोई भेदभाव नहीं रहता। इसलिए तो समभाव को एकता का प्रतीक कहते हैं। इस विषय में ठीक ही किसी ने कहा है कि ऐक्य भाव हमारी आत्मा का गुण/धर्म है तथा इसका किला इतना प्रौढ़ है कि इसके भीतर रहकर कोई प्राणी, समदर्शिता अनुरूप व्यवहार करता हुआ कभी भी दुःख नहीं पाता। यहाँ स्पष्ट कर दें कि मानव का निज धर्म ही उसका विशेष गुण होता है और यही

धर्म ही मानवता के रूप में आगे मानवीय व्यवहार द्वारा प्रसारित होता है। यह होता है परमात्म स्वरूप होकर जगत में निर्लिप्तता से विचरना। इससे आत्मा तुष्ट रहती है व मन को पर्याप्त संतोष प्राप्त रहता है। यह मन की वह संकल्प रहित अवस्था होती है जिसके द्वारा उसकी शांति व आनन्द कदाचित् भंग नहीं होता तभी तो सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ कह रहा है:

एक दा करो अजपा जाप,
फिर ब्रह्म शब्द दा पाओ प्रकाश
एहो सजनों पकड़ो इतिहास,
फिर ब्रह्म स्वरूप है अपना आप।

इस संदर्भ में सजनों जानो कि इस ऐक्य भाव में बने रहना, हमारी आदिकालीन संस्कृति यानि सतयुगवासियों का स्वभाव होता है। तभी तो तद्कालीन मानव जाति 'एक' ही सृष्टिकर्त्ता से संबंध रखते हुए यानि सर्व में उसी के होने के सत्य को स्वीकारते हुए, उसी अनुसार अपना कर्त्तव्य विधिवत् सम्पन्न करती है। इस प्रकार वे मानव एकाग्रचित्तता द्वारा, एक छत्र शासन यानि उस परमात्मा के अपने ऊपर आधिपत्य या पूर्ण प्रभुत्व को मानते हुए, उसी की आज्ञाओं का व्यवस्था व कुदरती विधान अनुरूप पालन करना, अपना धर्म समझते हैं। इसीलिए वे मानव सब को बराबर समझते हुए, आपसी मेल-मिलाप से जीते हुए 'एकता का प्रतीक' कहलाते हैं व अपने मन-वचन-कर्म द्वारा परस्पर व्यवहार के दौरान सत्य-निष्ठा से मानव-धर्म को प्रतिष्ठित करते हैं।

हम कह सकते हैं कि उनके अंतर्निहित पूर्ण समानता का भाव ही उनके समदर्शी होने का प्रतीक होता है। इसलिए तो उन एक दृष्टि सज्जनों के लिए, सर्वव्यापक भगवान में अपने मन को लीन रखते हुए, जगत के समस्त कार्यव्यवहार निष्कामता भाव व परोपकार प्रवृत्ति से सम्पन्न करना सहज होता है। ऐसे सजनों के लिए ही तो इस पावन ग्रन्थ में कहा गया है:-

इक पहचान लिया जिसने आप नूं,
उसने देख लई अपनी झांकी

यही नहीं उस परमेश्वर के तेज और प्रताप द्वारा, वे सदा समान मत वाले बने रहते हैं। यही कारण होता है कि सतवस्तु में विचार सत् ज़बान, एक दृष्टि, एकता, एक अवस्था महान होती है और वे एकात्मा के भाव से प्रसन्नतापूर्वक जी सकते हैं। इसीलिए वे सर्गुण-निर्गुण सम कर जानते हैं और अन्दरूनी व बैहरूनी वृत्ति में जीवन का खेल खेलते हुए सदा अफुर बने रहते हैं। इस प्रकार उनके मन में किसी अन्य भाव का प्रवेश कर पाना नामुमकिन होता है। परिणामस्वरूप उनके मन में परमेश्वर को छोड़, कुछ भी प्राप्त करने हेतु जगत के संग जुड़ने की संभावना ही नहीं रहती। यही तो सत्यनिष्ठा व धर्मपरायणता से एक नेक इन्सान की तरह जगत उद्धार हेतु निष्काम भाव से जीवन जीने की बात है। तभी तो कहा गया है:-

जहाँ समभाव है, वहाँ एकता है महान
ऐसे निर्मल माहौल में, एक अवस्था ही जान।।
सजन जी ....

जिसके मन में है एक भाव, वही दृढ़ निश्चयी इंसान
एकता भाव के छूटते, बिगड़ते हैं सारे काम।।
सजन जी ....

एक भाव अपनाए वही, जो पकड़े शब्द ब्रह्म विचार
सत्य-धर्म पर डटे रह, फिर कभी नहीं खाता हार।।
सजन जी ....

एकता में जो रहे, उसी की जग में शान
तभी तो सजन भाव का, रिश्ता सर्व महान।।
सजन जी ....

यह कहावत याद रखो, होते एक और एक ग्यारह
तभी तो एक जान वह, सीखे एक डाल पर रहना।।
सजन जी ....

एक तो एक है, जहाँ एकता वही बलवान
संगठित रहकर ही मानव, सिद्ध कर सकता हर काम।।
सजन जी ....

उपरोक्त बातचीत से सजनों स्पष्ट होता है कि 'सबमें एक ही आत्मा है, इस नाते समस्त प्राणी समान हैं', इस एकात्म भाव को अपनाने पर ही इंसान, आत्मिक रूप से एक हो, अपनी मानसिक शक्ति द्वारा न केवल अपना समुचित विकास कर सकता है अपितु समदृष्टि जैसे महान गुण अनुसार परस्पर सजनता का व्यवहार अपनाकर एकता में भी बना रह सकता है। इस परिप्रेक्ष्य में सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया है:-

सूरजां दा सूरज चढ़या होया है हमेश,
ओही सजन देख सकदा है जेहड़ा सब नूं समझे एक।

इस संदर्भ में जानो कि समदृष्टि, जैसा महान दिव्य गुण उसी मनुष्य में ही उजागर होता है जो समभाव नज़रों में कर, अपने विवेकशक्ति रूपा विशेष गुण के बलबूते पर, हर प्रकार के पूर्वाग्रह तथा भेदभाव से ऊपर उठ, सबके साथ न्यायोचित व्यवहार करता है। समदृष्टि से ही समानता की भावना प्रतिष्ठित यानि स्थापित होती है। इस प्रकार मानव को उसके उत्कृष्ट स्वरूप तक पहुँचाने के लिए इस दृष्टि का विशेष महत्त्व है। इस दृष्टि से संसार को देखने के पश्चात् ही उसके अन्दर सबको अपनी तरह ही सुखी व शान्त देखने की परोपकारी भावना जाग्रत होती है। इस प्रकार यह समरूपता का भाव न केवल दूसरों के प्रति उसका समभाव प्रकट करता है अपितु इसी के द्वारा वह जीवन में आने वाली प्रत्येक परिस्थिति को भी सम मानता है व समझता है। इस प्रकार जिसके भी मन में एकरूपता का भाव स्थिर रहता है वह सुख-दुःख, खुशी-गमी, मान-अपमान, अमीरी-गरीबी को सम कर जानता है। तभी तो सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ हमें कह रहा हैः-

एक ही मानो, एक ही जानो,
सजनों एक ही करो प्रवान
इक इक ही सारा जग दिस्से,
इक है ओ सर्व महान।

सारतः सजनों ऐक्य भाव में बने रहने की महत्ता जानने के पश्चात्, हम सबके लिए बनता है कि एक ही में लीन होकर,

उसी भाव में, निर्विकारता से एकरूप बने रह, एक ही सर्वव्यापक परमेश्वर के आदेशों की पालना आवश्यक रूप से करें। सजनों यही अखंड एकता यानि पूर्ण समानता में बने रह, एक ब्रह्मज्ञानी यानि समदर्शी की तरह, नेक नीयती, समझदारी, स्पष्टता व एकनिष्ठा से उस ईश्वर की प्रभुता स्वीकारते हुए, परमात्म-स्वरूप अनुरूप यथार्थता से जीवन जीना है। याद रखो ऐसा होने पर ही हम, मैत्री भाव अपनाकर, एकतान में आ, अपना हर कर्त्तव्य-कर्म, एकाग्रचित्तता यानि ध्यान की स्थिरता द्वारा कुशलता से निभा सकते हैं और कह सकते हैं:-

हम एक हैं हम एक हैं,
एक दा है प्रवेश ओ हम एक हैं।
एक ही विशेष सजनों एक हैं।।

यही नहीं इस संदर्भ में हमें सब बुराईयों यानि तेरी-मेरी, वैर-विरोध, लड़ाई-झगड़े की जड़, द्वि-द्वेष के भाव में उलझे हुए मानवों को समभाव-समदृष्टि का सबक पढ़ाकर, उन सबका पुनर्मिलन करा, उन्हें भी एकता के सूत्र में बाँधना होगा ताकि वे भी एकीभाव में आ जाएं। सजनों यह संसार में व्यापक रूप से फैले हुए अलगाववाद को जड़ से उखाड़ फेंक, हर मानव को मानवोचित महान कार्य करने के प्रति प्रेरित करने की बात होगी।

इस संदर्भ में जान लो कि अनेक मनगढ़ंत धर्मों में उलझी हुई सम्पूर्ण मानव जाति को, मानव-धर्म से जोड़ एक सूत्र में बाँधने का प्रयास करना, एक ऐसा अद्वितीय काम है जिसके परिणामस्वरूप हर मानव, समभाव-समदृष्टि की युक्ति

अनुरूप, इस यथार्थ का पारखी बन कि, 'इस जगत की हर वस्तु एक ही जोत से उपजी है', परस्पर सजनता का व्यवहार कर पाएगा। इस तरह अंतर्द्वन्द्व रहित होने पर ही वह हृदय स्वच्छ कर व सहजता से ब्रह्म, जीव व जगत की रमज़ जान, मानव धर्म अनुसार, एक ही रंग में रंग, जीवन जीने का एकरस ढंग अपना पाएगा व एकता और शांति से जीवन जीता हुआ परमपद को प्राप्त कर लेगा। इस परिप्रेक्ष्य में सजनों आप सब स्वीकारेंगे कि यही आज व्यापक रूप से समाज में फैले, जात-पात, छुआछूत, रंग-भेद, वर्ण-भेद, जाति-भेद, भाषा-भेद, लिंग-भेद, ऊँच-नीच आदि के भेद-भाव से ऊपर उठ, पक्षपात रहित, न्यायसंगत, समानता से आनन्दमय जीवन जीने की बात है।

अतः यदि हम सब ऐसा आनन्दमय जीवन जीना चाहते हैं तो हम सबको उपरोक्त बताए गए, जीवन के सर्वोच्च व सर्वोत्कृष्ट सत्य को आत्मसात् कर, ऐक्य भाव में आना होगा और समभाव-समदृष्टि के प्रतीक इस भाव के अनुरूप परस्पर सजन-भाव का व्यवहार करते हुए, एकता के सूत्र में बँध जाना होगा। याद रखो ऐसा करने पर ही हर मानव, संतोष-धैर्य अपनाकर, परमार्थ के रास्ते पर दृढ़ निश्चयी होकर, सच्चाई-धर्म अनुरूप विचर पाएगा और जीवन के हर कर्त्तव्य का निष्कामता से निर्वाह करते हुए, जीवन का परम अर्थ सिद्ध कर पाएगा। सजनों जब सर्व एक ही निगाह आएगा तो सहसा ही कह उठोगेः-

एक हूँ एक हाँ, एक नज़रों में एक ही एक हर अन्दर सुहा रहा,
जनचर बनचर जड़ चेतन ओ हर्षा रहा।

इको रूप तुम्हारा, इको रूप तुम्हारा,
शरीर दी बनावट अलग-अलग कोई पतला कोई भारा कोई गोरा कोई काला।

इस प्रकार सजनों एकभाव में आने से सब शास्त्र सिमट जाते हैं और सुध यानि चेतना व बुद्ध यानि बुद्धि का हम ताकतवर होकर ठीक से इस्तेमाल कर पाते हैं। इसीलिए तो कहा गया है:-

सुध है तो बुद्ध है, बुद्ध से बुद्धिमान
बुद्धिमान इंसान ही, करता जगत कल्याण।।
सजन जी ....

सुध गई तो बुद्ध गई, बुद्धि भ्रमित ही मान
अज्ञान अपनाने वाला, बनता है बुरा इन्सान।।
सजन जी ....

एक ही आत्मव्याप्त है, इस सत्य को समझो
यही सिद्धान्त अपना के फिर, एकी भाव हो जाओ।।
सजन जी ....

एकता में रहने की खातिर, एक ही शासक जानो
जो जगत आधार है, उस शक्तिवान का हुक्म ही मानो।।
सजन जी ....

फिर एक जोत से उपजने का, आत्मिक रिश्ता मानो
समभाव नज़रों में कर, उसी एक को ही पहचानो।।
सजन जी ....

सारे एक चित्त हो, दिल से दिल मिलाओ
वैर-विरोध छोड़ कर, सजन भाव अपनाओ।।
सजन जी ....

जगत में विचरते हुए, फुरनों से रहो आज़ाद
फिर देखो अपने आप ही, चंचल मन रहता कैसे शांत।
सजन जी ....

एक धाम से आए सब, जिसे कहते हैं परमधाम,
वहीं लौट कर ही तो, जीव पाता है विश्राम।।
सजन जी ....

अंत में सबसे प्रार्थना है कि ऐक्य भाव अपनाओ और आजीवन उसी पर ही स्थिर बने रह परमधाम पहुँच विश्राम को पाओ।

दिनाँक 20 नवम्बर 2016 का सबक़

द्वि-भाव

साडा है सजन राम, राम है कुल जहान

अर्थात् ईश्वर हमारा मित्र/प्रियतम सर्वव्यापक है, उसी को जानो, मानो व वैसे ही गुण अपनाओ।

शब्द है गुरु, शरीर नहीं है,

अर्थात् ज्ञानी को नहीं ज्ञान को अपनाओ और निमित्त में नहीं नित्य में श्रद्धा बढ़ाओ।

इस पर सुदृढ़ता से डटे रह, इस अटल सत्य पर स्थिर बने रहोः-

ओ३म् अमर है आत्मा, आत्मा में है परमात्मा

सजनों यह तीनों विचार किस भाव के प्रतीक हैं?

ऐक्य भाव के।

सो अब जब भी द्वि-भाव सताने लगे यानि किसी के प्रति बुरा भाव मन में आने लगे और उससे घृणा कर, उसकी बुराई करने का दिल करने लगे तो इन विचारों का स्मरण कर संभल जाना।

सजनों गत सप्ताह हमने ऐक्य भाव अपनाने की महत्ता के विषय में जाना। आओ अब उसके विपरीत, द्वि-भाव को अपनाने से होने वाली हानियों के बारे में जानते हैं ताकि हम में से कोई भी इस स्वार्थपर बुरे भाव को अपनाने की गलती कर अपना जीवन बर्बाद न कर बैठे।

सजनों सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ के अनुसार, सतवस्तु में संकल्प नहीं होता इसीलिए सब समभाव-समदृष्टि के सबक़ अनुसार, एक भाव से एकता के अखंड सूत्र में बँधे रहते हैं। इस प्रकार मनःशांति की शक्ति से इंसानियत में बने रह आनन्दमय जीवन व्यतीत करते हैं। पर जैसे ही मनुष्य के मन में संकल्प पैदा हो जाता है तो उसके मन में, एकता के प्रतीक - समभाव व निष्काम भाव के स्थान पर, कामनायुक्त, द्वि-द्वेष का स्वार्थपर भाव उत्पन्न हो जाता है और झुखना शुरू और रोना उग पड़ता है। फिर ज्यों-ज्यों द्वि-भाव बढ़ते-बढ़ते इंसानों की भावना व स्वभाव के अंतर्गत हो जाता है वैसे-वैसे ही इंसानों के कुकर्मों व अधर्मों के फलस्वरूप संकल्प का झुखना और इंसानों का रोना भी बढ़ता जाता है। यह अपने आप में मानवों द्वारा मानवता विपरीत दुराचारिता व व्यभिचारिता का चलन अपनाने की बात होती है। सजनों सजन श्री शहनशाह महाबीर जी के द्वारे पर होने के नाते, इस दुःखद अवस्था से रक्षित रखने हेतु सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ हमें अपनी, अपने परिवारजनों व कुल समाज की एकता व शांति सुनिश्चित करने हेतु यह संदेश दे रहा है:-

तेरी-मेरी दुई नूं भैणां छोड़ के, आओ महाबीर जी दे द्वार।

ताकि हम उन परमपिता के वचनानुसार, अपने मन से तेरी-मेरी हटा, दुई-द्वेष के दुष्प्रभावों से संतप्त होने से बचे रहें व इस तरह आत्मसंयम द्वारा होश-हवास में रह, एक पूर्ण सचेतन इंसान की तरह, जीवन जीने के योग्य बन सकें। जानो यह अपने आप में, मन में से द्वि-मिटा व सजन भाव

अपना, हौं-मैं के रोग से बचने व एकता, एक अवस्था में बने रहने की बात है।

यहाँ द्विभाव के अर्थ को स्पष्ट करते हुए हम बताना चाहते हैं कि द्विभाव का अर्थ है दो का भाव व दुराव। याद रखो जिसके मन में दो भाव होते हैं उसे बुरे स्वभाव का कपटी व द्वेषी इंसान भी कहते हैं। द्वेष दूसरों के प्रति घृणा, शत्रुता व वैर-भाव का द्योतक है व चित्त को अप्रिय लगने वाली वृत्ति है। इसी अपने-पराए के भेदभाव यानि परस्पर विरोधी भावों के विकास द्वारा ही मानव के मन में भ्रम यानि दुविधा उत्पन्न हो जाती है और वह सर्वव्यापक एक ही ईश्वर है, इस सत्य को मानने के स्थान पर आत्मा और परमात्मा अर्थात् जीव और ईश्वर के एक होते हुए भी उन्हें दो अलग-अलग दिव्य तत्व मानने लग जाता है।

फिर तदनुसार ही उसकी विचारशक्ति क्रियाशील होती है और वह 'ईश्वर है अपना आप प्रकाश', इस सत्य विचार से विमुख होकर, अविचार में अर्थात् 'ईश्वर है इक साथ' में फँस जाता है। इस प्रकार अक्ल पर भ्रम का पर्दा पड़ते ही उसके प्रकाशित हृदय में अंधकार छा जाता है। तभी तो इस दोषयुक्त वातावरण में विचरते हुए वह अपने यथार्थ के प्रति अनभिज्ञ हो 'मैं-मेरा' जैसा अहंकारी भाव अपनाता है। यह अपने आप में उसकी पकड़ से समभाव के छूटने व उसकी सुरत यानि ख़्याल के अस्वच्छ होने व जिह्वा की स्वतन्त्रता व दृष्टि की कंचनता भंग होने का द्योतक होता है। आशय यह है कि जिस मानव को अपने जीवन का हर कर्त्तव्य धर्म-संगत करते हुए सदा आनन्दपूर्वक एक ही अवस्था में बने

रहना होता है वही मानव द्वैतवाद यानि ड्यूअलिज़्म का सिद्धान्त अपना बैठता है। यही तो कलियुग की कहानी है। ऐसे सत्य-धर्म के निष्काम रास्ते से विपरीत चलने वाले अमानवों का मार्गदर्शन करते हुए, उन्हें पुनः विचार में लाने व मनगढ़ंत बाल अवस्था के भक्ति भावों से मुक्त कराने के लिए सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में श्री साजन जी कहते हैं:-

एक ही मैं हो चुका, दूसरा नहीं कोय।
दूसरा कोई किस तरह कहे, जब एक एक ही होय।।
कौन करे मेरी मानता, कौन करे मेरी पूजा।
एक हूँ सारे भूमंडल, है नहीं कोई दूजा।।

स्पष्ट है सजनों द्वि-भाव से मानव के मन के अन्दर असमानता का भाव उत्पन्न होना शुरू हो जाता है और उसके अन्दर अनैतिकता विकसित होने लगती है जिसके फलस्वरूप वह परस्पर वैर-विरोध, लड़ाई-झगड़ा व टकराव जैसे तुच्छ व नीच भाव-स्वभाव अपनाता है। इस प्रकार द्वि-द्वेष वश, दूसरों से आगे निकलने की होड़ में वह समभाव-समदृष्टि जैसे महान गुण से वंचित हो जाता है और परमार्थ से हट, स्वार्थपर रास्ता अपनाकर, दो तरह की बातें करता है। इसी दोष के कारण कुछ भी बोलते व करते समय यानि कथनी व करनी के समय वह मुख्य उद्देश्य छिपा कर दूसरा उद्देश्य प्रगट करता है जिसे डिप्लोमेसी कहते हैं। ऐसे सजनों के विषय में सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ कह रहा है:-

साजन जी क्या क्या बताऊँ दुनियां दी हालत
पल में सजन, पल में दुश्मन, पल में करदे मुखालफ़त

सजनों इसके प्रति आत्मनिरीक्षण करो व जानो कि यह वह दोषयुक्त मानसिक अवस्था होती है जिसमें वही व्यक्ति विभिन्न अवसरों पर भिन्न प्रकार का संदेहजनक आचरण/व्यवहार करता है यानि सत्य बात कहने के स्थान पर झूठ व छल-कपट द्वारा अन्यों को भ्रमित कर उन्हें दगा देता है। यह असमंजस की परिस्थिति होती है और ऐसे मानव का सदा नर्कों में ही वास होता है। यह होता है उसका अपने असली व्यक्तित्व से अपरिचित हो, परमार्थ का रास्ता छोड़ स्वार्थ का रास्ता अपनाना। परिणामस्वरूप सदाचारिता के रास्ते से भटक, भ्रष्टाचारिता का रास्ता अपनाना यानि पुण्य कर्मों के स्थान पर कुकर्म और अधर्म का बुरा मार्ग अपनाना।

संक्षेपतः- सजनों जानो कि द्वि-भाव अपनाना, समता के विपरीत चलन अपनाकर, जगत में बंधनमान होने की व अपने मन की सुन्दरता खो, सजनता के स्थान पर, परस्पर वैर-विरोध का भाव अपनाने की बात है। इस भाव के अंतर्गत होने पर, हमारा संकल्प कुसंगी हो जाता है और हमारे मन को, अन्य संगी-साथियों की कोई बात भी नहीं भाती और इस प्रकार उन सबके प्रति हमारे मन में अप्रियता व शत्रुता की वृत्ति पनपती है।

परिणामस्वरूप हमारे व उन सबके मन से प्रसन्नता का भाव लुप्त हो जाता है। ऐसा होने पर यानि द्वि-द्वेष के भाव के प्रभाव से, हमारे लिए अपने मन-वचन-कर्म द्वारा आत्मीयता के भाव पर टिका रहना कठिन हो जाता है और हम स्वार्थसिद्धि हेतु, सांसारिकता का भाव अपनाने पर विवश हो

जाते हैं। इसी अज्ञान के कारण, मनुष्यत्व के विपरीत तेरी-मेरी, वड-छोट आदि के संग-संग मान-अपमान और अमीरी-गरीबी जैसे दुर्भावों की उपस्थिति से मन अस्थिर हो जाता है और मनुष्य संतोष-धैर्य पर बने रहने में अपने आप को कमज़ोर पाता है। अन्य शब्दों में फिर स्वार्थसिद्धि हेतु यानि व्यक्तिगत इच्छाओं की पूर्ति की लगन में, तरह-तरह के मनसूबे बाँधने में व्यर्थ समय गँवाना व काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार जैसी विकृत वृत्तियाँ अपना निर्बल इंसान की तरह खोटी बातें करना व सुनना उसके स्वभाव के अंतर्गत हो जाता है। परिणामतः वह मन में बदले की भावना रखते हुए एक दूसरे पर प्रभुत्व जमाने की इच्छा से मरने-मारने पर उतारू हो जाता है व संगी-साथियों को एक ही लाठी से हाँकते हुए, उनके दिलों को ठेस पहुँचाता हुआ, तुच्छ पापयुक्त कर्म करने लगता है। सजनों इंसान की इसी हालत को देखकर सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया हैः-

इंसान वनजणे आया था धर्म सच्चाई
ख़रीद लियो ने झगड़ा, ख़रीद लियो ने झगड़ा।
झूठ चतुराईयाँ चोरियाँ कर कर, पा लियो ने रगड़ा

याद रखो ऐसे अचेतन अवस्था को प्राप्त चोर-ठग, छल-कपट, मिथ्या बोलने वाले दुष्ट इंसान ही तो दुःसाध्य होते हैं और सत्य-धर्म के निष्काम मार्ग पर चलने वालों के रास्ते में, अनेक प्रकार की रुकावटें खड़ी करते हैं। इसी भाव के कारण, हर मानव का दिल परेशान व दिमाग तनावयुक्त रहता है, गृहस्थ आश्रम टूटते हैं व मानव जाति की अखंडता भंग हो जाती है। यही आज घर-घर व कुल संसार की

कहानी है, जिससे सब भली-भांति परिचित ही हैं। इसी कारण ही तो हम सब सजन श्री शहनशाह हनुमान जी द्वारा प्राप्त युक्ति से परिचित होते हुए भी अपने ख़्याल को एकाग्रचित्तता से अपने असलियत आत्मिक स्वरूप में अफुरता से जोड़े नहीं रख पाते और इस जगत में व्यर्थ जीवन जीते हुए आत्मपद को कदाचित् प्राप्त नहीं कर पाते।

सारतः सजनों जान लो कि आत्मपद को प्राप्त न करना जीवन हारने की बात है। निःसंदेह इंसान जो जीवन उद्देश्य लेकर इस जगत में आता है उसे द्वि-भाव के कारण भूल जाता है। परिणामतः वह संसार में उलझ ऐसा स्वार्थपर, पापयुक्त रास्ता अपना बैठता है जो कहीं भी नहीं पहुँचता। यह अपने असली घर से भटकने की बात होती है और इसी कारण मानव जन्म-जन्मांतरों तक जन्म-मरण की पीड़ा भुगतता रहता है। ऐसे सजनों को यदि विचार देकर उचित रास्ते पर लाने का यत्न भी करते हैं तो दुई भाव में गलतान उन दुःसाध्य इंसानों को आसानी से अपने हित की बात समझ में नहीं आती। अन्य शब्दों में अपनी मनमत में उलझे वे अहंकारी इंसान अपनी आदतों को किसी कारण भी परिवर्तित कर सुधरना नहीं चाहते। अतः आखिर में ऐसे इंसानों को उनके हाल पर ही छोड़ दिया जाता है। सजनों आप में से किसी इंसान की ऐसी हालत न हो इस हेतु आपसे प्रार्थना है कि सजन श्री शहनशाह हनुमान जी के वचन प्रवान कर, अविलम्ब द्वि-भाव को त्यागकर, खुद को ऐक्य भाव में साध लो अन्यथा जीवन हार बैठोगे व पछताना पड़ेगा।

उपरोक्त सारी बातचीत को सुनते समझते हुए हम सूक्ष्मतः

कह सकते हैंः-

द्वि भाव अपनाए जो, प्रभु से अलग हो जाए
तभी तो वह दुर्बुद्धि, अविचार अपनाए
सजन जी ....

अच्छाई की राह छोड़ कर, बुरा चलन अपनाए
समभाव से भटक कर, द्वि-द्वेष में फँस जाए
सजन जी ....

द्वि-दो पहियों वाला वह चक्र है, जो बुद्धि को यूँ घुमाए
अच्छा भला इन्सान भी, असुर वृत्ति अपनाए
सजन जी ....

एक हो तो एक बात है, दो हो तो पक्षपात
यही तो होती है, अपना-पराया समझने की बात
सजन जी ....

एक पर एक होता जहाँ, वहाँ किसी की नहीं चलती
क्योंकि किसी विध् भी, उन की समान मत नहीं बनती
सजन जी ....

अहं भाव के कारण ही, आपस में है ठनती
एक बार जो बिगड़ गई, वह बात फिर नहीं बनती
सजन जी ....

दिल अगर है उखड़ चुके तो, एक आत्मा हो जाओ
ऐसा पराक्रम दिखाकर, घर सतयुग बनाओ
सजन जी ....

सजनों द्वि-द्वेष के कारण किसी का आधिपत्य न मानो
पूर्ण समानता के भाव से, सबको खुद सम जानो
सजन जी ....

सारतः सजनों यह सब जानने समझने के उपरान्त अब सब दिल से द्वि-भाव को समाप्त कर ऐक्य भाव में आ जाना और एक दूसरे की खुशी में खुशी का अनुभव करना। याद रखना ईर्ष्या यानि जलन मन में द्वि-भाव का होना जतलाती है और इससे सम्बन्धों के साथ-साथ, इंसान के मन का सुख-चैन सब समाप्त हो जाता है। अतः अलगाववाद के प्रतीक, इस दुःखदाई, द्वि-भाव को त्याग कर एकता के प्रतीक ऐक्य भाव को अपना लेना। याद रखो ऐक्य भाव को अपनाने वाले इंसान की मानसिक स्थिति सदा एक अवस्था में बनी रहती है और इसी कारण उस सजन का ख़्याल अपने सच्चे घर में बना रहता है जबकि द्वि-भाव अपनाने वाले इंसान की मानसिक स्थिति पल-पल बदलती रहती है, परिणामस्वरूप वह भ्रमित बुद्धि सबसे अलग-थलग पड़, बहिर्मुखी हो, इस नश्वर संसार में अपना अलग घर बसाता है। तो क्या यह अक्लमंदी की बात है?

नहीं जी।

तो फिर कोई भी ऐसा मत करना।

सजनों द्वि-भाव की इन्हीं हानियों को देखते हुए ही, सभी शास्त्रों के अनुसार दो का भाव अपनाना वर्जित है क्योंकि इस दो के भाव को अपनाने का मतलब है, एकता में संगठित बने रहने के स्थान पर, दो दलों में बँट जाना यानि इंसानियत में बने रहने के स्थान पर नटखट हो जाना। याद रखो बुरे संग के कारण, इस भाव के अधीन हुआ अच्छा-भला, उच्च बुद्धि, उच्च ख़्याल मानव, कई बार अपने निजी स्वार्थ सिद्धि हेतु अमानवीय पापयुक्त कार्य करना आरम्भ कर देता है।

परिणामस्वरूप उसकी वृत्ति-स्मृति व बुद्धि विकार ग्रस्त हो जाती है और मन की शांति के साथ-साथ चित्त की प्रसन्नता भी भंग हो जाती है तथा बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है। यह तन-मन-धन तीनों तरीकों से हार जाने की बात होती है। यहाँ हम यह भी बताना आवश्यक समझते हैं कि कई ऐसे चतुर इंसान ही वेद-शास्त्रों पर मनमत के अनुसार टीकाएँ लिख कर व वैसे ही प्रवचनों द्वारा अन्य मानवों को उलझा उन्हें ईश्वर प्रदत्त सत्य ज्ञान का अनुयायी बनाने के स्थान पर अपना अनुयायी बना देते हैं। सजनों वर्तमान काल में प्रचलित शारीरिक गुरु-चेले की प्रथा इसका साक्षात् प्रमाण है।

सजनों हममें से किसी के साथ ऐसा न हो, इस हेतु हमें अपने मन में उठने वाले भावों के रूप, महत्त्व व उनके अपने चरित्र पर पड़ने वाले अच्छे या बुरे प्रभावों को समझना है व आत्मनिरीक्षण करते हुए उनके प्रति सतत् रूप से जाग्रत रहना है। इस सन्दर्भ में सबको स्पष्ट हो ही गया होगा कि जहाँ समता के प्रतीक निर्मल, शुभ, मंगलकारी व कल्याणमय ऐक्य भाव को अपनाने से जीव अध्यात्म का पूरा आनन्द प्राप्त करता है वहीं इसके विपरीत किसी भी प्रकार का कोई अन्य भाव अपनाने से उसकी सर्वरूपेण हानि होती है। इसके अतिरिक्त यह भी जान लो कि सबसे उत्तम व अपनाने योग्य भाव हमें प्राप्त 'अक्षर' व 'नाम' में निहित है जो आत्मा और परमात्मा यानि ब्रह्म तत्व के प्रति हमें जागरूक रखते हुए, अपने असलियत दिव्य मानवीय स्वरूप के गुणों को, अपने आचार-विचार में उतारने व व्यवहार द्वारा

दर्शाने में सक्षम बनाते हैं। यही पूर्ण आत्मज्ञान का सार व व्यवहारिक रूप है जिसको जानकर व अपनाकर हर जीव स्व यानि अहं-भाव से मुक्त रह एक अच्छे इंसान की तरह परमात्म स्वरूप हो जीवन जी सकता है। तभी तो सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया हैः-

ना किसी से प्यार कर, ना किसी से वैर रख।
दोस्ती ला लै तूं आद् दे नाल, दिलों दुई भाव नूं छड।।

इस संदर्भ में सजनों नाम-अक्षर की महत्ता जानने के पश्चात् हमारे लिए बनता है कि हम अन्दरूनी व बैहरूनी दोनों वृत्तियों में इस अजपा जाप को, अपने व्यावहारिक चलन का अभिन्न अंग बना लें। यहाँ अजपा जाप से तात्पर्य बार-बार इस शब्द में निहित गुणों/धर्म का अनुभव कर उसका यथा इस्तेमाल करने से है। यह प्रयोगात्मक भक्ति होती है जिसे सत्य-धर्म की भक्ति भी कहते हैं। ऐसा करने से सब जप-तप-संयम समाप्त हो जाएंगे और हम एक परिपूर्ण इंसान बन जाएंगे।

अंततः सजनों यह सब जानने-समझने के पश्चात् हमारे लिए बनता है कि अविलम्ब समभाव-समदृष्टि के सबक़ अनुसार सजन भाव अपनाएँ और परस्पर सजनता का व्यवहार करते हुए उखड़े दिल मिला व इको दिल बना अफुरता से सत्य-धर्म की भक्ति करना आरम्भ कर दें और इस तरह प्रभु के सुपुत्र कहलाएं।

इंसान हो या शैतान - 1

साडा है सजन राम, राम है कुल जहान

अर्थात् ईश्वर हमारा मित्र/प्रियतम सर्वव्यापक है, उसी को जानो, मानो व वैसे ही गुण अपनाओ।

यह भाव हमें इन्सान बनाता है या शैतान?

इन्सान।

तो फिर अब समझदारी से इस भाव को अपना कर, समभाव समदृष्टि की युक्ति अनुसार, परस्पर सजन भाव का वर्त-वर्ताव करना आरम्भ कर देना और उखड़े दिल मिला इको दिल बना लेना।

शब्द है गुरु, शरीर नहीं है,

अर्थात् ज्ञानी को नहीं ज्ञान को अपनाओ और निमित्त में नहीं नित्य में श्रद्धा बढ़ाओ।

यह भाव हमें इन्सान बनाता है या शैतान?

इन्सान।

तो फिर शारीरिक गुरुओं के पीछे भागना छोड़ दो और अपने साथ-साथ सम्पर्क में आने वाले अन्य सजनों को भी नित्य ब्रह्म शब्द के प्रति श्रद्धा बढ़ाने का आवाहन दो। जानो यह निष्काम भाव से परोपकार प्रवृत्ति से ओत-प्रोत हो मानवता का विकास व प्रसार करने की बात है। अतः सशक्त होकर निर्भयता से

इस भाव पर सुदृढ़ बने रहो।

इस पर सुदृढ़ता से डटे रह, इस अटल सत्य पर स्थिर बने रहोः-

ओ३म् अमर है आत्मा, आत्मा में है परमात्मा

यह भाव हमें इन्सान बनाता है या शैतान?

इन्सान।

हाँ जी, क्योंकि इसी से सर्व एक आत्मा का बोध रहता है। अतः इस भाव को ग्रहण कर इसी पर स्थिर बने रहो और मौत के भय से भी आज़ाद हो जाओ। इस सन्दर्भ में हम सबसे पूछते हैं आप में से किसी को यदि कोई मारना चाहे तो कौन मर सकता है।

जी शरीर मर सकता है आत्मा नहीं।

हम तो शरीर की बात ही नहीं कर रहे। आप से हमारा तात्पर्य आपके यथार्थ से है। यही हम आपको बताना चाहते हैं कि जब यथार्थ की बात हो रही हो तो शरीर बीच में नहीं आना चाहिए। अपने आप को यथार्थ रूप में अजर अमर आत्मा समझो। इससे शरीर का तर्क नहीं उठेगा अपितु आत्मा में जो है परमात्मा हृदय में इस आद् सत्य के प्रकाशित रहने से आपका मन संकल्प रहित रहेगा और आप सब को समतुल्य समझते हुए स्वतः ही सजन भाव धारण कर सदा एकता व एक अवस्था में बने रहोगे। सजनों परिपूर्णता से इंसानियत में बने रहने की यह बात जितनी सीधी और स्पष्ट है उतनी ही गूढ़ भी है। अतः इस तथ्य की गूढ़ता को समझो और इस जगत में शारीरिक भाव के स्थान

पर आत्मीयता के भाव से विचरना सुनिश्चित करो। आओ अब आज का सबक पढ़ते हैं:-

आओ सीखें और सिखाएं, क्या होता है इंसान और वह सब बातें भूल जाएं, जो करता है शैतान

जैसा कि सजनों सर्वविदित ही है कि मनुष्य यानि इंसान वह द्विपद प्राणी है जो अपने मस्तिष्क या बुद्धिबल की अधिकता के कारण सब प्राणियों में श्रेष्ठ माना जाता है तथा जिसके अंतर्गत हम, आप सब लोग आते हैं।

सजनों बौद्धिक बल की अधिकता के कारण ही ईश्वर ने हमें विशेष विवेकशक्ति रूपा शक्ति से नवाज़ा है ताकि हम सत्य-असत्य की उचित ढंग से परख करते हुए, केवल सत्य के प्रकाशित मार्ग पर ही निष्काम भाव से बने रहें व अज्ञान तथा अंधकार के प्रतीक असत्य को अपनाने की भूल कर व भ्रमित बुद्धि हो जानवरों की तरह मूर्खता वाले, वैर-विरोध युक्त हिंसक भाव-स्वभाव कदापि न अपनाएँ। इस तरह हम अपनी श्रेष्ठता सिद्ध कर, यथार्थ में स्वतन्त्रता से यानि आत्मविश्वास व आत्मनिर्भरता के साथ, प्रसन्नतापूर्वक, धर्मसंगत अर्थपूर्ण जीवन जीने के योग्य बनें। फिर न तो अज्ञानियों की तरह किसी भी प्रलोभन में आ, अन्य सन्मार्ग से भटके हुए जीवों के बुरे चलन की नकल करें और न ही उनके अधिकार में रहें या उन पर अधिकार जमाने का प्रयत्न करें। सजनों अच्छा तो यही होगा कि हम सबको ईश्वरीय आज्ञाओं के विपरीत मनगढ़ंत, अधर्म के नकारात्मक अवलड़े यानि कठिन दुःखद रास्ते के बुरे परिणामों से परिचित करा, सत्य मार्ग पर लाने का निष्काम भाव से प्रयत्न करें। याद

रखो यह अपने आप में सम्पूर्ण मानव जाति को, समभाव-समदृष्टि के सबक़ अनुसार, सजन-भाव का व्यवहार करने के लिए प्रेरित करने का उत्तम परोपकार है। इसी प्रयोजन सिद्धि हेतु ही हमारा जन्म हुआ है।

इस संदर्भ में सजनों विडम्बना की बात यह है कि वर्तमान समय में, ईश्वर के इस महान प्रयोजन को समझ कोई विरला ही अपनी विशेष विवेकशक्ति रूपा अनमोल दिव्य गुण का विधिवत् प्रयोग कर, सत्य-धर्म पर स्थिरता से टिका रह पा रहा है व असत्य का रास्ता अपनाने से बचे रहने का पराक्रम दिखा पा रहा है तभी तो सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया है:-

इन्सान दुनियां विच आए के, इस जन्म दी कदर न जाती।
छल-कपट द्रोह करके अपने जन्म नाल कीती गुस्ताख़ी।।

अर्थात् इस जगत में आने के पश्चात् इन्सान ने, इस दुर्लभ, अनमोल मानव जीवन की कीमत नहीं पहचानी और इसी कारण बुद्धिजीवी होते हुए भी कुदरत के विधान के विरूद्ध मूर्खों जैसा आचरण करने की गुस्ताख़ी कर बैठा। कहने का आशय यह है कि जिस विवेकशील इंसान को ईश्वर की आज्ञाओं का पालन करते हुए सजन भाव अनुसार परोपकारी जीवन जीना था, वह स्वार्थी आज मनमत के बहकावे में आकर, इंसानियत के विपरीत, शैतानियत का चलन अपना बैठा है और इस प्रकार ईश्वरीय विधान के विपरीत चलते हुए, काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार जैसे दुर्भाव अपना बैठा है। इस तरह मनमत पर चलने वाला वह शैतान अब ईश्वर विद्रोही हो उसकी बनाई इस सुन्दर सृष्टि में उत्पात

मचाने लगा है। तभी तो सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया है:-

'मन शैतान शैतानी करे, रघुनाथ जी दा रस्ता भुलान।
अंजनी लाल सानुं मिल गए, मन नूं मन्दिर बनान।।
असली रूप असां भुल गए, वाशना झगड़े दिखान।
महाबीर पूरन मिल गए, चित्त पाया विश्राम'।।

इससे सजनों स्पष्ट होता है कि सत् और असत् इन दो नित्य शक्तियों की भावना के परिणामों को समझना आवश्यक है क्योंकि जहाँ सन्मार्ग पर चलना सत्य का रास्ता है और इस मार्ग पर अग्रसर होने वाले को आत्मतत्व का बोध बना रहता है वहीं सन्मार्ग का विरोध करने वाली शक्ति को असत् यानि शैतानी शक्ति माना जाता है। इसी सन्दर्भ में जहाँ सत् रूपी उत्तम सत्वगुणी प्रकृति से युक्त जीवधारी इन्सानियत में बने रह अपनी जीवनी शक्ति का स्वयंमेव धीरता व सत्यनिष्ठा से धर्म की रक्षा हेतु प्रयोग करने में सक्षम होता है वहीं असत् रूपी निकृष्ट तमोगुणी प्रकृति का प्रभाव, मनुष्य को बहका कर धर्म मार्ग से भ्रष्ट करने के प्रयत्न में रहता है।

इस प्रकार तमोगुणमय होना अंधकारमय असत्य का रास्ता होता है जिस पर चढ़ा हुआ अज्ञानी व मिथ्याचारी इंसान, अचेतन तथा अधम वृत्ति वाला होता है और बुरे से बुरा कार्य करने से भी नहीं सकुचाता। तभी तो कहते हैं कि जहाँ सत्य पर एकरस डटे रहने वाला इंसान सत्य के प्रकाश से अपने हृदय से अंधकार मिटा अपनी सुरत को असली घर में साधे रख पाता है व ब्रह्म भाव अपना मोह-माया से आज़ाद बना रहता है, वहीं मिथ्यता के भाव से जुड़े, असत्य पर चलने

वाले अशांत मन वाले इंसान को अपने खोटे कर्मों के कारण दुष्ट योनि प्राप्त होती है और उसका नर्कों में वास होता है। कहने का आशय यह है कि ऐसा निकृष्ट अशान्त जीव अपने किए हुए बुरे कर्मों के परिणामस्वरूप फिर उन्हीं माता-पिता के घर जन्म लेता है जिनका आचरण दुष्ट होता है और जिनके हृदय का वातावरण अंधकारमय होता है। यही कारण है कि ऐसा इन्सान फिर आजीवन रोता रहता है और उसके जीवन में हँसने का दिन कभी नहीं आता।

इस सन्दर्भ में सजनों जान लो कि जो भी मनुष्य दूसरे के कान में कुछ फूंक कर उसे बहकाता है व फिर धक्के मारकर दुर्वृत्ति में उलझाता है यानि बुरी प्रेरणा द्वारा उसकी विवेकशक्ति क्षीण कर, उसे दुष्ट बनाने का यत्न करता है, उस शैतान से अति सावधान रहने की आवश्यकता होती है। इस संदर्भ में सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ कह रहा हैः-

इक कन सुने दूजे कन निकले,
इन्सान होके हैवानी रहे ने दिखा।

जानो कि ऐसे बुरे व्यक्तियों के छलावे में आकर, अच्छे से अच्छा इंसान भी, राक्षस की आकृति का बन जाता है व शैतान का बच्चा कहलाता है। ऐसा पापी इंसान अपनी इच्छाओं की पूर्त्ति के लोभ-लालच के कारण शीघ्र ही मोहपाश में फँस जाता है। कहने का तात्पर्य यह है कि उसमें जोश तो होता है पर होश नहीं होता। इसीलिए वह कामनाओं का गुलाम अपनी यथार्थ पहचान भूल मनमानी अनुसार एक निशाचर की तरह अय्याशी भरा जीवन जीने के लिए, सत्य स्वरूप ईश्वर के मंगल विधान में विघ्न डालने में

सदा तत्पर रहता है। इसलिए हमारे लिए बनता है कि हम ऐसे बुरे इंसानों की संगति से बचे रहने में ही अपनी भलाई समझें।

याद रखो जहाँ इन्सान ईश्वर की आज्ञा में रहकर बड़े आनन्द का अनुभव करता है, वहाँ असत्य शक्ति का प्रतीक शैतान उसे बहकाकर निष्कामता के रास्ते से भटकाकर अपने अच्छे-बुरे कर्मों का फल खाने के लिए बाध्य करता है। जानो विधि के विधान अनुसार एक इंसान के लिए विवेकशक्ति के प्रयोग द्वारा, ऐसी स्वार्थपर प्रवृत्ति अपनाना निषेध है। यही कर्त्ता भाव से हर काम करने की भूल अपने आप में वह अपराध होता है जिसके परिणामस्वरूप जीव को अपने सच्चे घर में प्रवेश नहीं मिलता और उसे कर्मगति के अनुसार जन्म-जन्मांतर तक जन्म-मरण के चक्रव्यूह में भटकना पड़ता है और इस प्रकार सृष्टि-चक्र चलता रहता है। तभी तो यह ग्रन्थ सबको सचेत करते हुए कहता हैः-

हैवानी छड देवो तुसां इन्सानों,
हैवानी छड देवो तुसां इन्सानों।
मनुराज विच आके इन्सान होके न फिरो गँवार।
दोस्ती संकल्प-विकल्प नाल लाके हो गये तुसां खुवार।।

इसी परिप्रेक्ष्य में सजनों आजकल की बुरी पारिवारिक, सामाजिक परिस्थितियों को दृष्टिगत रखते हुए हम कह सकते हैं कि आज के इन्सान के सिर पर इस तरह यह शैतानी भाव सवार हो गया है कि वह स्वार्थसिद्धि हेतु, क्रोधावेश में आग बबूला हो यथार्थता शैतान से भी आगे बढ़ गया है और वह महादुष्ट उसी हठ पर बने रह, झूठ-चतुराई

का सहारा ले, अपमानजनक व्यवहार व तरह-तरह के उपद्रवों द्वारा घोर अत्याचार कर रहा है। तभी तो आज का समयकाल अधर्म व पापमय युग के नाम से जाना जाता है।

इस पापमय कलियुग में अधिकतर लोग ईश्वरीय आज्ञा का उल्लंघन कर, छल-कपट द्वारा अपनी मनमत यानि आज्ञा अनुसार अति चालाकी से मनुष्यों को मानव धर्म विमुख कर पाप की ओर प्रवृत्त करने वाले होते हैं। ऐसा करना अपना व दूसरों का अनिष्ट चाहने की बात होती है जो अपने आप में सजनता के चलन के विरूद्ध महादुष्टता का भाव अपनाने का अपराध कहलाता है।

इस अपराध से ग्रस्त हो, जगत में आज धिक्कार योग्य असंख्य मानव सिर से पाँव तक, पैशाचिक आचरण अपना चुके हैं व अनेक प्रकार के षडयंत्र रच, अपने संगी-साथियों को विषय विकारों में आसक्त करने में पागलों की तरह जुटे हुए हैं। सब मानेंगे कि यह तो सरासर मनुष्य स्वभाव के विरूद्ध अमानवीय यानि राक्षसी चलन अपनाने की बात है। बताओ ऐसी बुरी वृत्तियों वाले इंसान संतोष-धैर्य अपनाकर, कैसे निर्लिप्त, निष्कपट व निस्वार्थ, मोह-माया शून्य जीवन जी सकते हैं व सच्चाई-धर्म के निष्काम रास्ते पर बने रह सकते हैं? वे नीच वृत्ति असुर तो, तुच्छता को प्राप्त हो, मन-वचन द्वारा खोटे कर्म करते हुए, यानि मनुष्यता के विरुद्ध चलते हुए, सबका अशुभ करेंगे ही करेंगे। जानो ऐसे नीच प्रकृति व दुष्ट आचरण वाले कपटी व कुकर्मी ही अपने इसी बुरे स्वभाव के कारण, जगत से ठगे जाते हैं और औरों को ठगने की प्रवृत्ति में ढल अपने स्वार्थ सिद्धि हेतु अन्यों का

सुख चैन हरने के साथ-साथ किसी का संहार करने से भी नहीं सकुचाते। इन्हीं बुरे विचारों वाले निशाचर, दुष्ट प्राणियों के दुराचरण से आज मानवता काँप उठी है।

इसलिए तो सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में परमेश्वर कलुकाल की कहानी सुनाते हुए सच्चाई-धर्म के रास्ते से भूले-भटके शैतानों को, समझौता देते हुए, विवेकशक्ति के प्रयोग द्वारा, पुनः इंसानियत में आने का आवाहन दे रहे हैं ताकि दुराचार के परिणामों से त्रस्त, हर मानव मानवता धर्म अनुसार, सदाचार का रास्ता अपना कर अपनी खोई हुई श्रेष्ठता को प्राप्त कर लें। सजनों यह अपने आप में नश्वर शारीरिक भाव-स्वभाव छोड़, आत्मीयता के भाव-स्वभाव अपना यथार्थता से आनन्दमय जीवन जीते हुए एकता, एक अवस्था में बने रहने की बात है। अतः इस बात पर अमल फरमाते हुए आत्मसुधार करो। यही कर्त्तव्य परायणता है।

आओ हम भी निज उद्धार हेतु अपनी वर्तमान हालत को समझते हुए उससे उबरने हेतु कलुकाल की कहानी सुनते हैं:-

श्री रामचन्द्र जी सजन कलुकाल की कहानी सुना रहे हैं।

(श्री रघुनाथ जी के मुख के शब्द)

सुन लौ कलुकाल दी कहानी, सुतियां रैन विहाणी,
सुन लौ कलुकाल दी कहानी।
हनुमान जी वी सुणन, लक्ष्मन जी वी सुणन,
सुने शक्ति सीता महारानी
सुन लौ कलुकाल दी कहानी, सुतियां रैन विहाणी,

सुन लौ कलुकाल दी कहानी।
असली स्वरूप नू भुलिया, मन कई जूनां विच भटकावे
बुद्धि होई ए करूर तेरी कई वेरी जम्मे ते मरदा राहवे।
कर्मां दे अनुसार जीव, चौरासी भुगत भुगत के आवे।
भुलियां रैन विहाणी, भुलियां रैन विहाणी।।

द्वापर हटे कलुकाल आवे,
चुरासी भुगत मनुष्य देही पावे।
सम्भले नहीं ते भुलिया राहवे,
हीरे जैसा जन्म है बृथा न गंवावे।
ज़िन्दगी नहीं पहचानी, ज़िन्दगी नहीं पहचानी।
कई जूनां विच भटक भटक के, कई युग ऐवें गुज़ारी।।

द्वापर हटे कलुकाल आवे, आई तेरे जन्म दी वारी।
रस्ता छोड़ कुरस्ते पै गयों, मति गई तेरी मारी।
सुन लौ मेरी बाणी फेर जन्म न जानी,
सुन लौ कलुकाल दी कहानी।।

भेजया हाई तैनू सच वणजन नू,
झूठ दा कीता हेई व्यापार।
डरदा होया मेरे निकट न आवे, भुलिया फिरे गंवार।
ए ज़िन्दगी तेरी सदा नहीं रहनी, इस नूं लवीं संवार।
जन्म दी मौज न माणी, जन्म दी मौज न माणी।।

मैं भेजया मृत लोक विच तैनूं,
गर्भ विच तैं याद कीतोई बाहर याद न कीता तैं मैनूं।।
हौं मैं दा तैनूं रोग लगा हाई, मोह माया दी फांसी।
गूढ़ी निंद्रा विच तू सौं गयों,
पंज चोर खड़े नी सिरांधी।।

जन्म दी मर्म न जानी, जन्म दी मर्म न जानी।।

जेहड़े वेले जागियों होयों हैरान,
लुट गये चोर घर होया विरान।
राम नाम नू भुलिया होया, तृष्णा लगी ए सतान।
बुद्धि हीन हो गई है तेरी सर्पणी लगी है डंग चलान।
बाजी जित लवीं तां जानी, बाजी जित लवीं तां जानी।।

जन्म मरण दी पीड़ा नू भुलके,
कई तरह तरह दे कष्ट उठाये।
मैं प्रीतम दी प्रीति नूं छोड़ के,
कठिन रोग तेरे तन नूं सतावे।
बोलियां गोलियां तीर ते ताने होश तेरी भुलावे।
जन्म दी कदर न जानी, जन्म दी कदर न जानी।

दोहाः--- भक्ति शक्ति नूं भुलिया,
जन्म नाल जुल्म कमावे।
कई जन्मां दे चढ़ गये मोती बिन्द,
दर दर ठोकरां खावे।।

मिट गया चानणा होया अन्धेरा,
नज़र कुछ न आवे।
ज़िन्दगी नूं पहचाणी तां जाणी,
ज़िन्दगी नूं पहचाणी तां जाणी।।

मैं भेजया बिन दागों इस नूं, चोले नूं दाग़ लगावे।
कूड़ कपट छल ह्रदय भरया, ऐसा पाप कमावे।
कूड़ कपट छल ह्रदय भरया,
मैनुं लड़नदी जाच न आवे।।

ऐसा ठग ओ ठगियां करदा,
किवें न ओ नरकां नूं जावे।
जेहड़ा तेरा दाग लहावे, उसनूं पहचाणी तां जाणी।।
हीरे जैसा जन्म दित्ता, इसनूं जाके संवारे।
जन्म मरण दा अधिकारी होयों,
अनगिनत रोग दिखावे।।

निन्दया उस्तत कूड़ चतुराईयां, घर घर धुम मचावे।
जेहड़ी उस नाल विहाणी, जेहड़ी उस नाल विहाणी।।
परमार्थ नूं भुलया होया, कष्ट उठाये हज़ार।
ख़ाक जमयो ख़ाक कुटम्ब कबीला,
खाक है पख परिवार।।

ख़ाक नाल प्रीत करें तूं, सब जग चलनहार।
महाबीर जी नूं पहचाणी तां जाणी,
महाबीर जी नूं पहचाणी तां जाणी।

मन शैतान शैतानी करे, भोगे विषय विकार।
मौत आवाज़ा मारदी, लश्कर होया तैयार।।
महाबीर पूरन मिल पवन सिर तों उतरे भार।
हितकारी है जगत विच, उसनूं सुञाणी तां जाणी।।

सच्चे दरबार नूं भुलया, कठिन लगी है बिमारी।
दिने आराम राती निन्द्र न आवे, होश गई तेरी मारी।।
जा पुच्छे सजन प्यारिया, कोई बुझे मेरी नाड़ी।
ओ है जगत विच चानणा, उसनूं सुञाणी तां जाणी।।

उस दयालु दा तैं नाम न जपया, उमरा ईवें गुज़ारी।
चलो चलिये उन्हां संगतां नूं,

जित्थे मिलन हनुमान सुखकारी।।
ओही हटावन विसूचिका ओही विसूचिका दा लश्कर भारी।
महाबीर पूरन मिल पवन तां पहचानी,
बेड़ा होसिया पार ते मौजां माणी।।
राज अटल तूं जाणी, राज अटल तूं जाणी।।

ध्वनिः- महाराज तूं है महाराज मैं हूं,
महाराज है कुल जहान सारा।
महाराज, महाराज किस नू आखां,
महाराज है इक नाम तेरा।।

सजनों यह सब जानने-समझने के पश्चात् आत्मनिरीक्षण करो कि आप इन्सान हो या शैतान?

इन्सान।

यदि इन्सान हो तो शैतानियत वाला चलन अपनाना व दर्शाना अब बन्द कर देना। इस सन्दर्भ में सारतः याद रखो जो अच्छा सोचता है, अच्छा बोलता है व अच्छा करता है वह ही इन्सान कहलाने के काबिल होता है। इस बात को स्मृति में रखते हुए अब इन्सानियत के चलन में आ जाना और कदाचित् द्वि-भाव न अपनाना। कहने का आशय यह है कि यदि ईश्वर ने इन्सान बनाया है तो अपनी विवेकशक्ति का इस्तेमाल करना सीखो और उसी तरह सबसे बुद्धिमान बनो जिस तरह सजन श्री शहनशाह हनुमान जी बने।

इस संदर्भ में सजनों उपरोक्त वर्णित कलुकाल की कहानी से स्पष्ट भी हो जाता है कि सदाचार के विरूद्ध, बुरी परिस्थिति से उबरने के लिए, जब इंसान सन्मार्ग अपनाकर, अपने मन

का आवेश शांत करता है तो स्वतः ही उसे आत्मतुष्टि का अनुभव होता है और उसका मन काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार से मुक्त हो संकल्प रहित हो जाता है यानि वह परोपकारी शांत हो अपने सत् चित्त आनन्द स्वरूप में लीन हो जाता है। सजनों यही जीव की विश्राममय अवस्था है जिसमें आने के लिए हैवानियत छोड़ इंसानियत अपनानी है यानि कलुकाल के भाव-स्वभाव छोड़ कर सतवस्तु के भाव-स्वभाव अपनाने हैं और अपने कर्त्तव्य के प्रति पूरी तरह जाग्रत बने रहना है।

इसी कार्य को सिद्ध करने के लिए यानि मानवता में एकरसता से बने रहने का सामर्थ्य जुटाने की ख़ातिर आगामी कक्षा में हम इंसानियत में बने रहने की युक्ति को समझेंगे।

दिनाँक 04 दिसम्बर 2016 का सबक़

इंसान हो या शैतान - 2

साडा है सजन राम, राम है कुल जहान

अर्थात् ईश्वर हमारा मित्र/प्रियतम सर्वव्यापक है, उसी को जानो, मानो व वैसे ही गुण अपनाओ।

शब्द है गुरु, शरीर नहीं है,

अर्थात् ज्ञानी को नहीं ज्ञान को अपनाओ और निमित्त में नहीं नित्य में श्रद्धा बढ़ाओ

क्योंकि

यही मूलमंत्र ही हमारा ज्ञानस्वरूप है।

इस पर सुदृढ़ता से डटे रह, इस अटल सत्य पर स्थिर बने रहो:-

ओ३म् अमर है आत्मा, आत्मा में है परमात्मा

खुद ही खुद से पूछो
इन्सान हो या शैतान हो
खुद को खुद नहीं जानते
तो कैसे बुद्धिमान हो
बुद्धिमान तो वह होता है
जिस को खुद की पहचान हो
हैवानियत में ढलने से पहले
इस बुरी ख़बर को जान लो
फिर आत्मनिरीक्षण करके

अपनी यथार्थ अवस्था का सज्ञान लो
और एक जाग्रत इंसान की तरह
खुद को खुद पहचान लो
इस तरह बुद्धिभ्रंश से छुटकारा पा
अपनी अक्ल का समझदारी से इस्तेमाल करो
और जो बनाकर ईश्वर ने इस जगत में भेजा है
उसी बनत को सहर्ष स्वीकार करो
फिर चाहे ब्रह्म हो चाहे जीव व जगत हो
सब बुद्धिगम्य हो जाएगा
ऐसा होते ही सब बुद्धि भ्रम मिट जाएगा
और यह डाँवाडोल चित्त अपने आप स्थिर हो जाएगा
मानो यह बुद्धिशाली होने की बात है
और मूर्खता से बच बलशाली होने की सौगात है
अरे बलशाली होकर ही तो सजनता के भाव पर टिक पाओगे
और सदाचारिता द्वारा अपना मानव-धर्म निभा पाओगे
ए विध चाहे हैवानियत हो चाहे शैतानियत
इन दोनों के ही गुलाम बनने से बच जाओगे
बस फिर तो दुष्टता की जगह स्वत: ही
सजन भाव अपना यश कीर्ति ही पाओगे,
यश कीर्ति ही पाओगे।

सजनों जैसा कि गत कक्षा में भी आपको बताया गया था कि मनुष्य अपने मस्तिष्क या बुद्धिबल की अधिकता के कारण सब प्राणियों में श्रेष्ठ है, और अपने आप में मनुष्यत्व में बने रह, समभाव-समदृष्टि की युक्ति अनुसार, परस्पर सजनता का आचार-व्यवहार करने में परिपूर्ण है। इसलिए तो

सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ हम सबको कलुकाल के स्वभाव छोड़ कर, सजन-भाव अपनाने का आवाहन दे रहा है क्योंकि सजन पुरुष ही इन्सान कहलाने के काबिल होता है। इसलिए हमें अपने मूल गुण यानि मानव-धर्म पर बने रहने के महत्त्व को समझना है और इस प्रकार इस जगत के हर प्राणी को दुःखों से छुटकारा दिलवा जीवन के वास्तविक आनन्द का अनुभव कराना है। हमें मानना है कि हम इस संसार के राजा हैं और जो एक राजा का अपनी प्रजा के प्रति कर्त्तव्य होता है उसे सत्यनिष्ठा व धर्मपरायणता से हर जनचर, बनचर, जड़-चेतन के प्रति निष्काम भाव से प्रसन्नता पूर्वक परोपकारी प्रवृत्ति से निभाने का पराक्रम दिखाना होता है। इसीलिए तो सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया है:-

तूं आप है ओ सिंहासन दा राजा,
सिंहासन दा राजा सिंहासन दा राजा।
सिंहासन तेरा तूं सिंहासन दा हो गयों,
ओथे होंदी ए जय जयकार महाराजा।

मत भूलो कि संसारी झंझटों में उलझे हुए बन्धनमान व्यक्ति को अपने इस कर्त्तव्य का बोध नहीं होता। वह कमज़ोर इंसान तो फक़ीरों की तरह जगत में ठोकरें खाता रहता है और अंततः निराशा व हार को प्राप्त होता है। इसके विपरीत समस्त चराचर के प्रति अपने कर्त्तव्य का बोध रखने वाला ताकतवर इंसान परोपकार प्रवृत्ति से ओत-प्रोत हो अपने साथ-साथ सबको उनके मूल धर्म अर्थात् मानवता से परिचित कराने का अद्वितीय साहस दिखाता है और इस प्रकार अंततः जगत विजयी कहलाता है।

अतः सजनों इस उत्तम कार्य की सिद्धि हेतु हमें भी सम, संतोष, धैर्य व सच्चाई, धर्म पर अडिग बने रह अपने मन पर नियन्त्रण रखते हुए उसे संकल्प रहित अवस्था में साधे रखना है ताकि हम इस मिथ्या संसार की वस्तुओं व ज्ञान लिप्ती से प्रभावित हो अपनी बौद्धिक शक्ति क्षीण न कर बैठें। परिणामस्वरूप अविवेकी यानि भ्रमित बुद्धि बन ब्रह्म, जीव और जगत के सत्य से अपरिचित हो अपने मन का नाता असत्य से जोड़ भ्रष्ट आचरण न अपना बैठें। याद रखो ऐसा होना बहुत बुरी बात है क्योंकि ऐसा होने पर श्रेष्ठता का प्रतीक इंसान, शैतान बन जाता है। कहने का तात्पर्य यह है कि सत्य धर्म के निष्काम राह पर चलने वाला ही यथार्थतः इंसान कहलाने के योग्य होता है और झूठ, चतुराईयाँ, छल-कपट अपनाने वाला शैतान होता है। तभी तो सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया है जेहड़ाः-

अव विचार, अकलहीन,
कुपुत्र महाराज जी रस्ता छोड़ कुरस्ते पै गिया।
हां-हां-हां-हां जगह जगह ओ ठोकरां खांदा है।
निंदित हुआ कुल दुनियां अन्दर,
फिर ओ पछोतांदा है।।

विचारवान महाराज जी दा सुपुत्र हां-हां-हां-हां धर्म
सच्चाई दे रस्ते चलदा है।
दीपक हुआ कुल दुनियां अन्दर अकलमन्द सुपुत्र।
कुल दुनियां ते रौशन नाम ओ कहांवदा है।।

(सजन दयालु श्री रामचन्द्र जी कह रहे हैं)

सुनो मेरे साजना अकलमन्द हुआ तो
सब कुछ हुआ हां-हां-हां-हां।
हर जगह अकलमन्द दा निवास हुआ।
अकलवान इन्सानां नूं कुरस्ता छुड़वा रस्ते ते ला के
रौशन ओहदा नाम हुआ।
अकल आई टिकाणे तो हैवान दा इन्सान हुआ हां-हां
अकल नाल तो विद्वान हुआ।
अकल नाल सुपुत्र साडा दर्शन पाके,
ब्रह्म नाल ब्रह्म स्वरूप हुआ।।

अकलमन्द सुपुत्र मेरा कई कई खेडां खेडे हां-हां-हां-हां।
अकल वाला सुपुत्र खेल खिलाड़ी हुआ।
अकलमन्द जगजीत ओ नाम कहावे
अकल वाला तो ही लीलाधारी हुआ।।

जिसने मन्दे संग नाल संग किया हां-हां-हां-हां ओ
इन्सान दा वी हैवान हुआ।
फिर अकल डिग्गी मनुराज अन्दर,
ओ मौत दे मुंह बलिदान हुआ।।

जिस इन्सान ने अच्छे संग नाल संग किया
हां-हां-हां-हां ओ हैवान दा इन्सान हुआ।
अकल टिकाणे आ गई तो दुनियां ते
ओहदा नाम हुआ।।

अकल टिकाणे जैंदी आ गई
हां हां हां हां जैं ब्रह्म शब्द कीता विचार सजनों।
ओ चानणे नाल चानणा हुआ,
जेहड़ा आ रिहा अपर अपार सजनों।।

सूक्ष्मतः सजनों कहने का आशय यह है कि उपरोक्त उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए कर्मठ बनना अनिवार्य है यानि बुद्धिमत्ता से उचित दिशा में सही तरीके से यत्न करना आवश्यक है। निःसंदेह इस हेतु शब्द ब्रह्म विचारों को अपनाने के प्रति, रूचि विकसित करने की आवश्यकता है। शब्द ब्रह्म अर्थात जीव और ब्रह्म का ज्ञान। यद्यपि ब्रह्म रूप, रंग, रेखा से बाहर है तथापि वह प्रगट रूप में अपनी विद्यमानता का भान, 'शब्द ब्रह्म' यानि अपने ज्ञान स्वरूप द्वारा कराता है। इसी के द्वारा उस बिन सूरजों प्रकाशित परमेश्वर की उपस्थिति का आभास मन-मन्दिर में होता है और आत्मतत्त्व से परमतत्त्व का प्रकाश हृदय को प्राप्त होने लग जाता है। इस तरह हृदय प्रकाशित वेद-विदित प्रगट हो जाती है और इंसान उसे निष्काम भाव से अपना कर, अपना जीवन सफ़ल कर लेता है।

इस कथन के अनुसार सजनों अब हम सब को चाहिए कि अपनी परख कर अब तक मन में अपनाए बुरे भावों व विचारों से मुक्ति पाने हेतु शास्त्रविहित सद् विचार धारें और भविष्य में अपने मन को राग-द्वेष आदि से परे रख, मानसिक तौर पर पुण्य कर्म करने के लिए तत्पर हो जाएं। इसलिए हमें जानना होगा कि मन किस प्रकार कार्य करता है तथा उसमें अच्छी-बुरी वृत्तियाँ किस प्रकार उत्पन्न होती हैं जिसके प्रभाव से हमें मानसिक तौर पर आंतरिक दुःख-सुख का अनुभव होता है व उसी अनुसार ही हमारे मन-वचन-कर्म द्वारा अच्छी या बुरी क्रियाएँ होती हैं। हममें से किसी से ऐसी भूल न हो उसके लिए हमें आत्मिक ज्ञान में जिस मनुष्य संहिता का वर्णन है, उसको ध्यान से पढ़-समझ कर केवल धारण ही

नहीं करना होगा अपितु उसे विधि विधान अनुसार यानि समभाव-समदृष्टि की युक्ति अनुरूप अपने अंतःकरण को निरंतर विशुद्ध रखते हुए मनुष्यता पर भी बने रहना होगा यानि चित्त की कोमलता, दया भाव व शील आदि जैसे सद्भावों पर बने रह एक सभ्य इंसान की तरह सबसे शिष्टता पूर्ण व्यवहार करते हुए सर्व एकात्मा के भाव में सुदृढ़ रहना होगा। यह संकल्प स्वच्छ व दृष्टि कंचन रखते हुए एक निगाह एक दृष्टि द्वारा एक दर्शन में स्थित रहने की बात है। ऐसा करना जगत में सब कर्त्तव्य-कर्म धर्मसंगत निष्काम भाव से करते हुए जगत से आज़ाद रहने की बात है व अपनाने योग्य विचारयुक्त निष्कंटक, निष्पाप रास्ता है।

आओ अब जानते हैं कि सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ के अनुसार हमें शैतानियत छोड़, पुनः इन्सानियत में आने के लिए क्या करना होगाः-

अविचारी मिथ्या ज्ञान छोड़, शब्द ब्रह्म विचार यानि शास्त्रविहित् सद्-विचारों को अपनाकर विचारशील बनना होगा व इस जगत के प्रति अपने कर्त्तव्य धर्मसंगत निभाते हुए जगत से निर्लेप बने रहना होगा। तभी तो आत्मबोध होगा कि 'ईश्वर है अपना आप प्रकाश, ईश्वर है अजपा जाप'। इस प्रकार ईश्वर को अपने से अलग, साथ जानने व मानने के स्थान पर, आत्मा और परमात्मा के अभिन्न होने का यानि ब्रह्म भाव अपने हृदय में स्थिरता से धारण करना होगा। तभी मानव रूप में, इस जगत की सभी वस्तुओं से गुणवान व बलवान होने का एहसास कर, बुद्धिमत्ता से अपनी विवेकशक्ति रूपी विशेष गुण का उचित प्रयोग करते हुए,

सत्य-धर्म पर निष्कामता से स्थिर बने रह, इस भौतिक जगत का कल्याण करते हुए श्रेष्ठता को प्राप्त हो सकोगे।

जानो सतयुगी चलन अनुसार, एक सजन-पुरुष की तरह, निर्विघ्न, निष्कंटक व निषंग होकर सकारात्मक जीवन जीना सुनिश्चित करने के लिए हमें, त्रेता युग से, माता-पिता, कुल संसार व पख-परिवार को शारीरिक गुरु रूप में अपनाने के प्रचलन से उबरना होगा। उसके स्थान पर सजनों हमें शब्द को गुरु मान यानि शब्द ब्रह्म विचार अनुसार, ईश्वरीय आज्ञाओं का पालन करते हुए, समभाव-समदृष्टि के सबक़ अनुरूप, सभी कुदरत प्रदत्त सम्बन्धों के प्रति अपना कर्त्तव्य, धर्मसंगत व त्याग भावना से निभाते हुए, समस्त कष्ट-क्लेश सहकर भी, उनसे निर्लेप बने रह प्रसन्नतापूर्वक उन्हें उचित सम्मान प्रदान करना अपने स्वभाव के अंतर्गत करना होगा।

फिर गुरु आप चेला ही आप,
मिट गया फुरना हटे संताप।
मुक गई सकल सामग्री इन्सानों,
जगत तों हो गयों आज़ाद।

याद रखो इस सजनता से परिपूर्ण आत्मीयता के रास्ते पर चलने वाले के मन की शांति किसी भी अच्छी या बुरी परिस्थिति में भंग नहीं होती और इस हर्ष-शोक रहित अवस्था में इंसान के मन में सदा संतोष प्राप्त रहने से वह समभाव नज़रों में कर, सहज ही अफुरता व धीरता से सत्य-धर्म के निष्काम रास्ते पर बने रह परोपकार प्रवृत्ति कहलाता है। जानो यही एक आत्मज्ञानी के सजन पुरुष होने की निशानी होती है। याद रखो ऐसा श्रेष्ठ पुरुष बनने पर ही हम

कोने-कोने, डाली-डाली सर्वत्र अपनी ही ब्रह्म सत्ता के व्याप्त होने का बोध कर, 'खुद हूँ मैं आप भगवान' के यथार्थ अनुरूप सर्व एकात्मा के भाव से इस मायावी जगत में निर्लिप्तता से विचर सकते हैं। इसीलिए हमें परस्पर मेलजोल के समय सत-वस्तु की रामसत् व सजन-भाव को वर्त-वर्ताव में लाने की महत्ता को समझना होगा और जिह्वा से सबको सजन बुलाते हुए यानि जिह्वा स्वतन्त्र व संकल्प स्वच्छ रखते हुए, एक निगाह एक दृष्टि हो जाना होगा। इस तरह कदम-कदम पर विचार शब्द के अनुसार अपने आप को पकड़ते हुए, खालस सोना हो अपना हृदय सचखंड बनाना होगा। जानो कि ऐसा सुनिश्चित कर पाने के योग्य बनने के पश्चात् हमारे मन में उठने वाले हर संकल्प पर हमारी पकड़ रहेगी और हमारी सुरत यानि अन्दर का ख़्याल, यथार्थता अनुसार सदा निर्मल अवस्था को प्राप्त रहेगा। जानो ऐसे मनुष्य का बोलचाल सत्य होता है।

अपने जीवन काल में ईश्वरीय विचारों पर ख़रा उतरने वाला वह सत्य-धर्म का सच्चा उपासक ही ऐसा महान पराक्रम दिखा अपने विशुद्ध अंतःकरण पर प्रतिबिम्बित अपने मूल गुण की परख कर आजीवन जगत कल्याण हेतु उसका निःस्वार्थ भाव से सदुयोग कर पाने में सक्षम हो सकता है व अपने मानव होने की उत्कृष्टता सिद्ध कर यश-कीर्ति द्वारा देवलोक की सुगंधि को भी मात कर सकता है। इसलिए हमारे लिए बनता है कि सर्व एकात्मा के भाव पर स्थित रह, हम सत्य को धारण करते हुए धर्म के रास्ते पर निष्काम भाव से सीधे विचरते जाएं ताकि अपने पति परमेश्वर से बिछुड़ इस मायावी संसार में भटकती व दर दर ठोकरें खाती हुई

सुरत यानि ख़्याल इस मिथ्या संसार से विमुख हो पुनः परमेश्वर में सदा लीन रहे व उनकी चालें पकड़, विश्राम को पाए।

सजनों जानो कि यह अपने आप में सतवस्तु रूपी अनमोल हीरा प्राप्त करने की बात होती है। इसलिए हमारी सबसे प्रार्थना है कि ऐसा यत्न लड़ाओ व अपने आप की पहचान कर इस संसार में विचरते हुए इस संसार के साथ जुड़ो नहीं और इस प्रकार अपने हृदय वेद विदित समझ खालस सोना हो जाओ और अन्यों को भी सच्चाई-धर्म के प्रकाशमय रास्ते पर चढ़ाने का अनथक परिश्रम दिखाओ। उन्हें भी अपनी पहचान करने की युक्ति समझाओ व रूप-रंग-रेखा से रहित होकर ज्योति स्वरूप परब्रह्म परमेश्वर नाम कहाओ हाँ परब्रह्म परमेश्वर नाम कहाओ व अपना जीवन सफ़ल बनाओ। अंततः याद रखोः-

खरीद अच्छी करो इन्सानों,
रोवन दा दिन कदे वी न आवे।

इस हेतु

कर लौ राम भजन जीवन बना लौ सजन।

दिनाँक 11 दिसम्बर 2016 का सबक़

दर्पण

साडा है सजन राम, राम है कुल जहान
अर्थात् ईश्वर हमारा मित्र/प्रियतम सर्वव्यापक है, उसी को जानो, मानो व वैसे ही गुण अपनाओ।

शब्द है गुरु, शरीर नहीं है,
अर्थात् ज्ञानी को नहीं ज्ञान को अपनाओ और निमित्त में नहीं नित्य में श्रद्धा बढ़ाओ।

इस पर सुदृढ़ता से डटे रह, इस अटल सत्य पर स्थिर बने रहोः-

ओ३म् अमर है आत्मा, आत्मा में है परमात्मा

सजनों सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ कह रहा हैः-

कैसी बनाई दुनियां तुमने,
विच जीव होया मस्ताना।
तुम्हारे प्रतिबिम्ब दी ख़ातिर,
ज्यों दीपक पर जले परवाना।।

दुनियां बनाने वाले ओ दुनियां दे वाली,
कैसा तुम्हारा खज़ाना।
अटल पटल जीवां विच रहके,
किस तरह अपना आप पहचाणां।।

आओ सजनों आज इन्हीं उद्धृत पंक्तियों के अनुसार अपनी पहचान करने का तरीका समझते हैं। इस हेतु सजनों मुँह

देखने का शीशा हाथ में लो और उसे सामने रखकर उसमें नज़र आने वाले अपने प्रतिबिंब द्वारा अपने मुख यानि शारीरिक नश्वर रूप को देखो। इस सन्दर्भ में यह भी जानो कि शीशे में प्रतिबिंबित यह आपका अनित्य रूप हकीकत में जीव रूप में जो आपकी यथार्थता है उसे नहीं दर्शाता अर्थात् जिस सूरजों के सूरज के ओज व तेज से आप जगमगा रहे हो व चल-फिर रहे हो यानि चेतन हो, उसका दर्शन आपको नहीं कराता। इस तरह यह बुद्धि को भ्रमित कर आत्मविस्मृति का हेतु बनता है।

इसी सन्दर्भ में सजनों आमतौर पर दर्पण के प्रयोग द्वारा अपने मुख की स्वच्छता, स्वस्थता व सुन्दरता को ठीक से समझने व उसी अनुसार अपनी योग्यताओं को नित्य जाँचने की क्रिया आप प्रतिदिन ही करते हो व अकर्मण्यता के कारण उस पर किसी भी प्रकार की गंदगी व अस्वस्थता के प्रभाव से अपनी सुन्दरता पर दाग़ लगने का भान होते ही उचित उपचार करने के लिए अविलम्ब तत्पर भी हो जाते हो। यहाँ तक कि इस हेतु आपका जितना भी समय व धन का व्यय हो या फिर और ज़रूरतों का त्याग कर क्रियाशील बनना पड़े, वह सब करने से भी आप नहीं घबराते और इस प्रकार सदा सुन्दर दिखने में ही अपना गर्व समझते हो ताकि जिस घर में भी रहकर जीवनयापन करना है, वह सुरक्षित व उपयोगी रहे। इस संदर्भ में सजनों इस क्रिया के प्रति तनिक भी लापरवाही वर्तने के कारण, यदि आपके मुख के रख-रखाव की कमज़ोरी का भान अगर किसी और को होता है और वह उस कमी का बोध, शब्द रूप में करा, आपको आपकी वास्तविकता जनाने हेतु दर्पण दिखाता है तो

आपको उसकी अपने प्रति सज्जनता की समझ नहीं आती वरन् उसकी बात को मोह-माया के अहंकार पर, आघात समझते हुए, क्रोधित हो उसी से ही जूझ पड़ते हो। इस प्रकार अपना उपकार न करने पर, धीरे-धीरे कुरूपता व अकर्मण्यता अपना रंग दिखाती है। याद रखो जो भी समझदार सजन उनकी बात से आहत न होते हुए, उनकी कही हुई बात के सत्य की परख करने के उपरांत पाई हुई कमियों का, किसी विद्वान से समय पर उपचार करा लेता है तो वह जीवन लक्ष्य प्राप्ति हेतु लम्बे समय तक अपनी इस शरीर रूपी मशीनरी का ठीक तरीके से इस्तेमाल कर सकता है।

इस विषय में सजनों जान लो कि जिस प्रकार यह नश्वर शीशे का दर्पण इस भौतिक शरीर की समय-समय पर परख करते हुए उसकी निरन्तर स्वस्थता व सुन्दरता यथा एक अवस्था में सुनिश्चित रूप से बनाए रखने हेतु बुद्धि की देन है, वैसे ही मन-चित्त की शुद्धि व एकाग्रता को एकरस बनाए रखने हेतु सर्वव्यापक भगवान ने हर मानव के हृदय में एक अंतःकरण रूपी दर्पण की स्थाई व्यवस्था की है। इसीलिए तो कहा गया हैः-

सारी विश्व दा आधार, ओहदा कैसा है विस्तार।
हर अन्दर ओहदा प्रतिबिम्ब दिसदा।।

सजनों जिस तरह से एक साफ़ बैहरूनी दर्पण उचित रीति से व बगैर किसी विकृति के, न्यायसंगत वस्तु विशेष का यथार्थ, पूर्ण निष्पक्षता, स्पष्टता व सत्यता से दर्शाता है उसी प्रकार सर्वव्यापक भगवान हमारे अंतर्भावों को इस

अंतःकरण रूपी दर्पण पर दर्शाता है। दोनों ही पहलुओं में यह क्रिया निर्भयता के भाव से न्यायसंगत चलती है। कहने का आशय यह है कि, दोनों ही व्यवस्थाओं के अंतर्गत प्रतिबिंबित अन्तः व बाह्य रूप, इन्सान को पसन्द आए या न आए परन्तु दर्पण जो देखता है, वही सत्य उसे दर्शाता है व समय पर उचित सुधार करने का संदेश देता है। इसके विपरीत वह इंसान को कुछ गलत दर्शा कर प्रसन्न नहीं करता यानि कभी भी धोखे में नहीं रखता।

इससे सजनों स्पष्ट होता है कि स्वच्छ काँच यानि शीशा व स्वच्छ अंतःकरण रूपी दर्पण दोनों ही पारदर्शी व बहुत ही नाज़ुक होते हैं और निज दर्शन द्वारा एक अवस्था में बने रहने का हेतु होते हैं। तभी तो अंतःकरण के विषय में सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया है:-

ए चरण निवे एक शीशा है, ए चरण निवे इक शीशा है।
प्यारे चरणां दी ऐनक रघुवर जी दी अपना दर्शन कीता है।।

अर्थात् स्वच्छ व निर्मल अंतःकरण में न केवल चेतन-तत्व का सूक्ष्म अक्स प्रतिबिम्बित हो स्पष्ट नज़र आता है अपितु इसके द्वारा हम अन्दरूनी व बैहरूनी ब्रह्माण्डों के दर्शन भी स्पष्टता से कर सकते हैं। दर्शन की स्पष्टता अंतःकरण की शुद्धता पर निर्भर करती है। अंतःकरण की शुद्धता का सजनों सत्य-धर्म के निष्काम रास्ते पर चलते हुए जीवन लक्ष्य प्राप्ति में सर्वाधिक महत्व है क्योंकि जिसका अंतःकरण शुद्ध होता है वह शुद्ध बुद्धि व शुद्धमति होता है तथा उसका आत्मबल व आत्मविश्वास मज़बूत होता है। इसी कारण वह परिपूर्ण कहलाता है और उसका हर कर्म, आचार-विचार व व्यवहार,

शुद्ध व उत्तमता का प्रतीक होता है। इससे सजनों स्पष्ट होता है कि अन्दरूनी व बैहरूनी दोनों वृत्तियों में एक अवस्था में बने रहने से ही हम दोनों वृत्तियों में अन्तः व बाह्य जगत के सार को पाने में सामर्थ्यवान हो सकते हैं और अपने पुरुषार्थ द्वारा अपना व जगत का कल्याण कर सकते हैं।

इस संदर्भ में सजनों जिस प्रकार काँच के शीशे के उचित रख-रखाव व प्रयोग की युक्ति जानने वाला इंसान अपने बाह्य नेत्रों के द्वारा अपनी शारीरिक अवस्था का हर प्रकार से बोध करते हुए समय रहते ही पाई गई अस्वच्छता व अस्वस्थता का उचित उपचार कर, एक हृष्ट-पुष्ट व शक्तिशाली इंसान की तरह सब कुछ सचेतनता से करने के योग्य बना रहता है, उसी तरह अंतर्दृष्टि द्वारा, अंतःकरण की विशुद्धता के प्रति सजग रहने वाला इंसान, आत्मसाक्षात्कार द्वारा अपने आत्मज्ञान स्वरूप का दर्शन कर, उस विद्या को प्राप्त करने के योग्य बन सकता है जिसमें प्रकृति, आत्मा, परमात्मा, जगत के नियामक धर्म और जीवन के अंतिम लक्ष्य आदि का निरूपण होता है। तभी तो सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में यह भी कहा गया है:-

हकूमत ही ब्रह्मज्ञानी जाने,
हकूमत ही कोई विरला पहचाने।
हकूमत ही प्रतिबिम्ब ओ पावे,
रूप रंग न रेखा राहवे।
हाँ हाँ रूप रंग न रेखा राहवे,
वाह वाह रूप रंग न रेखा राहवे।।

इस तरह सजनों यह अंतःकरण रूपी दर्पण हमारे जीवन का

सबसे उत्तम व उपयोगी अभिन्न अंग है व एक ऐसा साधन है जिसके द्वारा हम न केवल अपने असलियत स्वरूप को देख, जान व पहचान सकते हैं अपितु मन पर अंकुश रख, आत्मिक बल द्वारा इसका विधिवत् प्रयोग करते हुए इंसानियत में बने रह, उत्तम व परम पवित्र जीवन चरित्र का निर्माण कर यश-कीर्ति को भी प्राप्त कर सकते हैं। इस हेतु सजनों नाम-अक्षर, ध्यान की स्थिरता व आत्मिक प्रकाश का अत्याधिक महत्त्व होता है।

अतः अक्षर के निरन्तर अजपा जाप द्वारा हृदय को प्रकाशित रखो यानि अपने ख़्याल को ध्यान वल व ध्यान को उस प्रकाश वल जोड़े रखो। इस तरह उस बिन सूरजों प्रकाश को ग्रहण करने पर, आपका अंतःकरण विशुद्ध हो जाएगा और आप एक सामर्थ्यवान इंसान की तरह अंतः व बाह्य जगत की रमज़ जान, **साडा है सजन राम, राम है कुल जहान**, के अर्थ को आत्मसात् कर सकोगे। निश्चित ही सजनों ऐसा करने पर आप एक ओजस्वी व तेजस्वी इंसान की तरह परमात्म स्वरूप में स्थित रह पवित्र जीवन जीना सीख सकोगे। इस विषय में सजनों अमरता के भाव से जीवन जीने योग्य बनाने हेतु सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया हैः-

युग युग जैं कीते शीशे तैयार,
ओन्हां दे इन्सानों हो जावो यार।
उस शीशे विच अपना प्रतिबिम्ब दिस्से,
जन्म दे रोंदियां नूं हँसाना पड़ेगा।।
ओ इन्सान जगत वालियो होश विच आना पड़ेगा।।

यह सब जानने के पश्चात् सजनों झूठे अहंकार व नश्वर मोह-माया में मदहोश मत रहो अपितु होश में आ जाओ और अपना जीवन बनाने हेतु यत्नशील हो जाओ।

इस संदर्भ में सजनों जानो कि यह अंतःकरण रूपी शीशा जो भी दर्शाता है, अंतर्दृष्टि द्वारा उसे खुद समझने से सब भ्रम दूर हो जाते हैं और इंसान को खुद से अटूट विशुद्ध प्यार हो जाता है। सजनों यह अति उत्तम अवस्था होती है जिसके अंतर्गत इंसान पूर्णतया निष्काम हो जाता है और अपने चरित्र पर लेशमात्र भी दाग़ नहीं लगने देता।

फलस्वरूप सत्य धारणा द्वारा सब कुछ धर्मसंगत करना सहज हो जाता है। इस प्रकार उस इंसान के जीवन में झुखने-रोने का दिन कभी नहीं आता। यही नहीं इसके अतिरिक्त यह अंतःकरण रूपी दर्पण चारों दिशाओं यथा पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण में जो घट रहा है उसका यथार्थ दर्शाने की क्षमता भी रखता है।

इसलिए तो सब मानते हैं कि जैसे परमात्मा हर वस्तु को देख सकता है वैसे ही इंसान भी अंतर्दृष्टि द्वारा अपने इस अंतःकरण रूपी दर्पण में, अपने ख़्याल की हर क्रियाविधि को, अपने विचार की सकारात्मकता व नकारात्मकता को, हर कोण से देख सकता है। इस तरह वह जान सकता है कि मेरा ख़्याल किस दिशा में है और अच्छे-बुरे किन भाव-स्वभावों में विचर रहा है। इस संदर्भ में सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया है:-

दक्षिण तो लाहवे सुरत उत्तर विच जावे ओय,
मनुराज क्लेश ऊपर ख़ुशियाँ मनावे ओय।
जेहड़े वेले सुरत पश्चिम विच जावे ओय,
नचे टपे भगवान दे दर्शन पावे ओय।
सुरत पूर्व विच पांदी ए विश्राम,
सुरत पूर्व विच पांदी ए विश्राम।।

अर्थात् पूर्व दिशा ही सर्वोत्तम दिशा है। इसी में अपने ख़्याल को साधना होता है।

इसी गुण के कारण ही सजनों आत्मनिरीक्षण क्रिया द्वारा इस ईश्वर प्रदत्त दात को विशुद्ध रखने के लिए कहा जाता है ताकि हम अपने भावों की सत्यता जान सकें और पाई गई कमियों को साथ-साथ दूर कर, अपने असलियत ब्रह्म स्वरूप की पहचान द्वारा, सदा चेतन अवस्था में एकरस बने रहें।

सजनों जिस प्रकार भूतकाल की स्मृतियाँ हमारे ख़्याल में रह-रह कर उभरती हैं और हमें परेशान करती हैं वैसे ही आत्मनिरीक्षण द्वारा अपने संकल्प को स्वच्छ करने की क्रिया न करने से मन अशांत हो उठता है। यही अशांति फिर इंसान के परमार्थ के रास्ते से भटक स्वार्थ का रास्ता अपनाने का कारण होती है। इसलिए तो कहते हैं कि तीनों तापों का टेम्प्रैचर समाप्त कर, इस अंतःकरण पर प्रतिबिंबित अपने मनोभावों को, एक निगाह एक दृष्टि द्वारा गहराई से खुद जानने में सक्षम बनो ताकि कहीं अज्ञानता के कारण अनजाने में सत्य से अनभिज्ञ हो, अपनी वृत्ति, स्मृति और

बुद्धि को बुराईयों के जाल में फँसा कलुकाल के भाव-भावना व स्वभाव न अपना बैठो। याद रखो किसी भी इंसान के साथ ऐसा बुरा होना इंसानियत के स्थान पर शैतानियत का चलन अपनाने की बात होती है। ऐसे सजनों के लिए सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया है:-

भजन बन्दगी इन्सान भुल के ते,
भुल गए स्वरूप हमारा।
सच्चाई धर्म दे दो मन्त्र भुल गए,
न डिट्ठा प्रतिबिम्ब दा नज़ारा।।

किसी के साथ भी ऐसा न हो इस हेतु जान लो कि इन दोनों प्रकार के दर्पणों के उचित रख-रखाव व सही ढंग से प्रयोग द्वारा, निजी शारीरिक व मानसिक सुन्दरता को एकरस साधे रखने हेतु, कुछ कुदरती नियम यानि विधि-विधान हैं जिसकी जानकारी प्रत्येक प्रयोगकर्त्ता को होनी आवश्यक है ताकि वह इन नीति-नियमों की पालना द्वारा हकीकत में सही ढंग से आत्मनिरीक्षण व आत्मदर्शन की क्रिया करते हुए, वांछित लाभ प्राप्त कर सके। उदाहरणस्वरूप इन दोनों प्रकार के दर्पणों में अपना मुख व प्रतिबिंब स्पष्टता से तभी दिखता है अगर यह क्रिया प्रकाशमय वातावरण में चलती रहे और दर्पण स्वच्छ रहे। अतः प्रयोगकर्त्ता के लिए उन पर प्रतिबिम्बित सत्य से यथार्थता परिचित होने के लिए अपने अंतः व बाह्य दर्पण को निर्मल व स्वच्छ रखना व उन्हें समुचित प्रकाश व्यवस्था में बनाए रखना आवश्यक है। तभी तो सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में इस दिव्य दर्पण की संभाल रखने हेतु यह कहा गया है:-

हुन शीशे दी कर लौ सफ़ाई ओय,
अन्दर सिंहासन ते देखो रघुराई ओय।

सजनों जान लो कि अंतःकरण की स्वच्छता मनुष्य की श्रेष्ठता का प्रतीक है। इसकी पवित्रता हमारे ख़्याल, वृत्ति-स्मृति, बुद्धि और भावों-स्वभावों के ताने-बाने की निर्मलता का हेतु है अर्थात् यदि यह विशुद्ध है तो हम ख़ालस सोना हैं। अतः अन्दरूनी व बैहरूनी दोनों दर्पणों की स्वच्छताओं के प्रति जागरूक रह सदा आत्मस्वरूप में स्थित रहने वाले समझदार इंसान बनो। तभी अपनी अंतर व बाह्य सुन्दर छवि बना, उसे अंतरपट पर देख-देख कर, प्रसन्नचित्तता से जगत कल्याण हेतु, अर्थपूर्ण जीवन जीने में कामयाब हो सकोगे। इस संदर्भ में महाबीर जी के मुख के इन शब्दों को सदा याद रखो :-

'सजन जी, दिल को सदा ईर्ष्या द्वेष और आपस की फूट से पृथक् रखना चाहिए क्योंकि आध्यात्मिक और व्यावहारिक शिक्षा प्राप्त करने के लिए हृदय की शुद्धता अति उत्तम साधन है। हृदय को दर्पण की तुलना देते हैं यदि दर्पण निर्मल हो तो उसमें जो देखें वही नज़र आता है। यदि इस पर थोड़ा सा ही दाग़ हो तो साफ़ किये बिना नज़र नहीं आता, ऐसा हाल दिल का भी है। यह दिल ही भले बुरे की पहचान करता है। इस में जो विचार या इच्छा निश्चित की जाए सो ही पक्की हो जाती हैं। चाहे वह अच्छा हो चाहे बुरा, इसे जिधर लगाओ लग जाता है। इसलिए सजनों आयु की घड़ियों को मुश्किल जान इसे शुभ कर्मों में लगावें और बुरी बातों से बचें, तथा ऐसे सजनों के मेल मिलाप से

सदा बचना चाहिये जिन के अन्दर कुछ और बाहर कुछ और हो। ऐसे सजनों की संगत नहीं करनी चाहिये, ऐसे सजनों की संगत का फल बुरा निकलेगा।

शब्दः- वाद-विवाद किसे नाल न कीजे।
जिह्वा राम नाम रस पीजे।।

जान लो सजनों जो भी सजन महाबीर जी के वचनों के विपरीत किसी भी कारण ऐसा पराक्रम दिखाने में असक्षम हो जाता है उसके हृदय में अमावस्या की काली रात छा जाती है यानि अंतःकरण अज्ञानांधकार से आच्छादित हो जाता है और उसे पर्याप्त आत्मप्रकाश प्राप्त नहीं हो पाता। फलतः इंसान एक तो अंतःकरण रूपी दर्पण में अपने यथार्थ स्वरूप का दर्शन करने में असक्षम हो जाता है और दूसरा आत्मिक ज्ञान प्राप्त करने में असमर्थ हो जाता है। इस तरह शनैः-शनैः उसे आत्मविस्मृति हो जाती है और वह पराश्रित हो, ज्ञान के बाह्य स्त्रोतों जैसे सांसारिक कामनायुक्त पदार्थों से जा जुड़ता है। अतः सजनों हमारे लिए बनता है कि हम अपने अंतःकरण का पूरा लाभ उठाने हेतु उसे किसी कारण भी सांसारिक प्रभावों से आच्छादित न होने दें क्योंकि ऐसा होने पर हम सत्य ज्ञान की प्राप्ति के अभाव के कारण अज्ञान अपनाकर परमार्थ की जगह स्वार्थ का रास्ता अपना कर, अपना जीवन बरबाद कर बैठेंगे।

ऐसे सजनों को जाग्रति में लाने के लिए ही सजनों उस ईश्वर ने इस अंतःकरण के सम्बन्ध में ऐसी व्यवस्था भी कायम की है जिसके अंतर्गत इसे खुद के अतिरिक्त, ईश्वरीय गुणों से

सम्पन्न कुछ ऐसे विशिष्ट निष्कामी व ब्रह्मज्ञानी परोपकारी इंसान भी पढ़ सकते हैं, जिनके पास दिव्य दृष्टि होती है। ऐसे समभाव-समदृष्टि के सबक पर परिपक्व व परिपूर्ण सजन अधिकतर दूसरों की मुख-मुद्रा भांप कर अथवा उनके मन के भाव पढ़ कर या फिर उनकी करनी को देख कर जान जाते हैं कि अमुक व्यक्ति का अंतःकरण स्वच्छ है या मलीन। मलिनता की स्थिति में उसकी दुर्बलता को दूर करने के लिए जब वे उसे शास्त्रविहित विचार देकर उठाने की चेष्टा करते हैं तो कई तो उसके प्रयत्न द्वारा आत्मोत्थान करने में सफ़ल हो जाते हैं परन्तु अधिकतर जो जीवन के प्रति लापरवाह होते हैं वे उसकी निःस्वार्थ भाव से की गई क्रिया की महत्ता को नकारते हुए, क्रोध में आकर, रोष सहित असामान्य प्रतिक्रिया व्यक्त करते हैं और इसी कारण जीवन हार बैठते हैं। ऐसे सजनों को सही रास्ते पर लाने के लिए सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ कह रहा हैः-

क्रोध नाल न खेड, खेड तूं चरणां दे नाल,
जन्म न बिगाड़, खेड तूं चरणां दे नाल।।
जन्म अपना संवार, खेड तूं चरणां दे नाल,
चरणां दे नाल, खेड चरणां दे नाल।।

जेहड़े वेले भैड़ा क्रोध जो आवे,
अंधेरा देख हृदय घुस जावे।
डिंगा चिब्बा मुंह बनावे, शीशे विच मुख वेख,
खेड तूं चरणां दे नाल।।

क्रोध हाई ए बड़ा अनोखा,
जिस ने दित्ता ए सब नूं धोखा।
अन्दर वड़े ते करे ए औखा, शोले उठन अनेक,
खेड तूं चरणां दे नाल।।

सूक्ष्म रूप धर अन्दर क्रोध जो आवे,
सट्टे चिनगारी ते अग भड़कावे।
नाले पिट्टे ते नाले शोर मचावे,
चिनगारे उठन अनेक, खेड तूं चरणां दे नाल।।

यत्न कर कर क्रोध हटावे, भुलेखे विच क्रोध जलावे।
खून पीवे नाले रोग बढ़ावे, भांभड़ मचन अनेक,
खेड तूं चरणां दे नाल।।

शान्ति दा मुंह वेख, खेड तूं चरणां दे नाल।
भुलेखे विच न उमर गंवावो,
महाबीर जी दी शरणी आवो।।
बल बुद्धि विद्या नूं पावो, लीला दिखावन अनेक,
खेड तूं चरणां दे नाल।

अतः सजनों इस बात को गहराई से समझो और जब भी कोई ऐसा समर्थ व्यक्ति आपको आपकी कमज़ोरियों से परिचित कराने का यत्न करे तो बुद्धिमत्ता से काम लो और उसकी बात को महत्ता दे, उसी समय आत्मनिरीक्षण कर आत्मसुधार करो।

सारतः सजनों फिर कह रहे हैं कि इन दोनों ही दर्पणों को सत्य बोध का हेतु मानते हुए, सही ढंग से आत्मनिरीक्षण करने की विधि समझो ताकि जो भी शारीरिक व मानसिक

अवस्था के अच्छे-बुरे होने का सत्य इन दर्पणों पर प्रतिबिंबित हो उसको बहादुर इंसान की तरह निःसंकोच बिना किसी वाद-विवाद के तुरन्त स्वीकार सको और आत्मनियन्त्रण द्वारा वांछित सुधार कर सको। कहने का तात्पर्य है कि जो भी इन दर्पणों में दिखे, उसके दिल से दर्शी बनो और एक विचारशील इंसान की तरह, निरन्तर अपने शाश्वत मानवीय धर्म पर बने रह, खूब सुख व आनन्द मानो व बाँटो। इस प्रकार परमात्व स्वरूप सुन्दर व श्रेष्ठ मानव कहलाओ। इस संदर्भ में सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ के इन शब्दों को सदा याद रखनाः-

महाबली युक्ति बताने वाले, सियाराम मिलाने वाले।
जीवन बना के ओन्हीं दा प्रतिबिम्ब दिखाने वाले।।
परमपिता ओ दाता, परमपिता ओ दाता।
हिन हनुमान जी, परमपिता ओ दाता।।

अर्थात् सजन श्री शहनशाह हनुमान जी की चरण-शरण में रहकर व उनका संग प्राप्त करके ही अपना यथार्थ रूप देख सकते हो व सब कुछ प्राप्त करते हुए संतोष में बने रह सकते हो।

अंततः सजनों अब जब निष्कलंक जीवन जीने व परमपद प्राप्ति हेतु दर्पण की महत्ता समझ आ गई है तो अब अंतर्मुखी हो इस अंतःकरण रूपी दर्पण पर दाग़ मत लगने देना। इस संदर्भ में सजनों जिस प्रकार घर से बाहर निकलने से पहले बैहरूनी दर्पण में देखकर आत्मनिरीक्षण करने का एक स्वभाव बना हुआ है उसी तरह कुछ भी सोचने, बोलने व करने से पहले इस अन्दरूनी दर्पण में झांकने का स्वभाव

बना लो ताकि न तो कोई अनुचित सोच मन में हो जो मस्तिष्क को परेशान करे, न ही कोई बुरा वचन मुख से निकले जो खुद के साथ-साथ औरों को भी खले और न ही कोई ऐसा बाह्य कर्म हो जो त्रुटिपूर्ण व नुकसानदायक हो। इस तरह कदम-कदम पर अपनी विचार से जाँचना करते हुए अपने चारित्रिक स्वरूप को श्रेष्ठता का प्रतीक बनाना और निर्विकारी हो, निष्कलंक आत्मस्वरूप के दर्शन पा प्रसन्नचित्त बने रहना। इस प्रयोजन में शत् प्रतिशत् सफ़लता प्राप्त करने हेतु सजनों सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ के रूप में अपने ही घर में पड़े कुदरती सौन्दर्य प्रसाधन का भरपूर उपयोग करना यानि उसमें विदित शब्द ब्रह्म विचारों को आत्मसात् कर नौजवान युवावस्था को प्राप्त कर लेना। इस प्रकार सजनों समभाव-समदृष्टि की युक्ति अनुसार सजन-भाव का वर्त-वर्ताव करते हुए एकता व शांति से जीवन जीना आरम्भ कर देना व औरों को भी सद्मार्ग दिखा परोपकार कमाना।

दिनाँक 18 दिसम्बर 2016 का सबक़

आत्मनिरीक्षण

साडा है सजन राम, राम है कुल जहान

अर्थात् ईश्वर हमारा मित्र/प्रियतम सर्वव्यापक है, उसी को जानो, मानो व वैसे ही गुण अपनाओ।

शब्द है गुरु, शरीर नहीं है,

अर्थात् ज्ञानी को नहीं ज्ञान को अपनाओ और निमित्त में नहीं नित्य में श्रद्धा बढ़ाओ।

इस पर सुदृढ़ता से डटे रह, इस अटल सत्य पर स्थिर बने रहोः-

ओ३म् अमर है आत्मा, आत्मा में है परमात्मा

सजनों हम सबके लिए यह अत्यन्त हर्ष की बात है कि गदे के यज्ञ के रूप में चालीस दिन सत्य-धर्म की निष्काम भाव से साधना करने का शुभ अवसर हमारे जीवन में पुनः आ गया है। सजनों सबको विदित ही है कि इस यज्ञ के दौरान हमें अपने आप, अपनी स्वाभाविक सफ़ाई कर अर्थात् आज तक धारण किए हुए कलुकाल के भाव-स्वभाव छोड़, समभाव-समदृष्टि के सबक़ अनुसार, सजनता अपनाकर श्रेष्ठ मानव बनना होता है। इस तरह हमें कामनायुक्त रहने के स्थान पर, एक संतोषी इंसान की तरह, धीरता से सत्य-धर्म के निष्काम रास्ते पर बने रहना होता है व परोपकार प्रवृत्ति द्वारा अपना फ़र्ज़ अदा हँस कर निभाने की आदत अपनानी होती है।

कहने का तात्पर्य यह है कि इस दौरान हमें आत्मनिरीक्षण

कर कलुकाल के उन भाव-स्वभावों को जो हमारी वृत्ति-स्मृति व बुद्धि को भ्रमित कर, विकृत करते हैं और परिणामतः हम भ्रष्टाचार करने लग जाते हैं, ऐसे धारण किए हुए बुरे मनोभावों को खोज निकालना होता है।

तदनुरूप आत्मनियन्त्रण रखते हुए, शब्द ब्रह्म विचारों को ग्रहण कर, सत्य युक्त भाव-स्वभाव अपनाने होते हैं व अपने यथार्थ धर्म को पहचान, परस्पर सत्य का वर्त-वर्ताव करते हुए, आजीवन उस पर तन-मन-धन वारते हुए, उस पर डटे रहने का पराक्रम दिखाना होता है। सजनों स्पष्ट है कि यह अपने व अपने परिवारजनों के जीवन उद्धार के प्रति कल्याणकारी यत्न होता है। इसे दिलचस्पी व नेक नीयती से करने पर ही उचित परिणाम प्राप्त होते हैं। इसी के द्वारा हम प्रसन्नचित्तता से, कुदरत प्रदत्त विशेष गुणों यथा सम, संतोष, धैर्य, सच्चाई, धर्म, निष्कामता व परोपकारता का उचित ढंग से प्रयोग करते हुए, एक स्थिर बुद्धि इंसान की तरह सबको सुख-आनन्द प्रदान कर, सबके प्रिय बन सकते हैं।

यह द्वि-द्वेष छोड़ सर्व एकात्मा के भाव में ढलने की बात होती है यानि अविचार युक्त अवलड़ा रास्ता छोड़, विचारयुक्त सवलड़ा रास्ता अपना 'विचार ईश्वर है अपना आप' के भाव से शक्तिशाली होकर इस जगत पर विजय प्राप्त करने की बात होती है। इसीलिए सजनों भूलकर भी:

'समभाव-समदृष्टि दे प्रतिकूल न चलियो,
समभाव नज़रों में कर सजन वृत्ति फड़ियो,
सजन भाव नज़रों में करके सजनों,
सजन भाव प्रकृति में लियाईयो'।

इस प्रकार यह नवीन पोशाक पहन खुद चमको व इसके प्रति अन्य सजनों को भी प्रेरित करो।

सजनों इस यज्ञ के दौरान आत्मनिरीक्षण की विशेष महत्ता को समझते हुए, आओ सर्वप्रथम गत सप्ताहों में पढ़ाए गए सबकों के प्रति आत्मनिरीक्षण करते हैं और जानते हैं कि हम किस स्तर तक इन पाठों के दौरान बताई गई युक्तियों को अमली जामा पहना अपना जीवन उद्धार करने में सफ़ल हुए हैं:-

1. क्या आप ऐक्य भाव के अनुरूप आत्मा की समरूपता को स्वीकारते हुए, आत्मीयता की भावना से युक्त होकर परस्पर अभिन्नता का आचरण व व्यवहार करने के प्रयास में सफ़लता प्राप्त कर पा रहे हो या अभी भी पूर्वाग्रह, पारस्परिक भेदभाव व वैर-विरोध से युक्त होकर भिन्नता का व्यवहार दर्शा रहे हो?

2. क्या आप हर तरह के अंतर्द्वन्द्व से रहित हो, परमेश्वर में अपने मन-चित्त को लीन कर, निर्विकारता से उसके आदेशों का पालन करने के प्रति जागरूक हो पा रहे हो या अभी भी आपका निजी अहंकार आपको ऐसा करने से रोकता है?

3. द्वि-भाव की हानियों को जानने के पश्चात् भी कहीं आप द्वि-द्वेष वश, दूसरों से आगे निकलने की होड़ में स्वार्थपर रास्ता अपना, दो तरह की बातें तो नहीं करते यानि सत्य बात कहने के स्थान पर छल-कपट युक्त असत्य का व्यवहार तो नहीं करते?

4. कहीं स्वार्थसिद्धि यानि व्यक्तिगत इच्छाओं की पूर्ति की

लगन में, तरह-तरह के मनसूबे बाँधने में व्यर्थ समय गँवाना व काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार जैसी विकृत वृत्तियाँ अपना, निर्बल इंसान की तरह खोटी बातें करना व सुनना आपके स्वभाव के अंतर्गत तो नहीं हो गया?

5. क्या आप कोई भी कार्य या बात करने से पहले, ईश्वर प्रदत्त विशेष विवेकशक्ति का प्रयोग करते हुए उसके सत्य-असत्य, भले-बुरे की उचित ढंग से परख करते हो या फिर दूसरों की देखा-देखी या किसी के तुच्छ प्रलोभन में आ, अज्ञानियों की भांति अंधकार के प्रतीक असत्य को अपनाने की भूल करते जा रहे हो ?

6. क्या आप अपने मन पर नियन्त्रण रखते हुए उसे संकल्प रहित अवस्था में साधे रखने में सफ़ल हो पा रहे हो या अभी भी इस मिथ्या संसार की वस्तुओं व ज्ञान प्राप्ति की तृष्णा आपको अपनी ओर आकर्षित कर, दिन रात अपने पीछे भगाती रहती है?

7. क्या आप मूलमंत्र आद् 'अक्षर' में निहित सर्वोत्तम व शब्द ब्रह्म विचारों के रूप में अपनाने योग्य भावों को अपने जीवन में उतारने हेतु नियम से इस कुदरत प्रदत्त औषधि का प्रतिदिन सेवन करते हुए शारीरिक, मानसिक व आत्मिक स्वस्थता प्राप्त करने के यत्न में सफ़ल हो पा रहे हो या अभी भी संसारी बातों के कनरस में फँसे होने के कारण आपका ध्यान व फुरनों में जकड़ा हुआ ख़्याल इस ओर आकृष्ट ही नहीं होता?

8. क्या आप अपने अंत:करण की स्वच्छता सुनिश्चित करने

हेतु उस पर प्रतिबिंबित अपने मनोभावों को, एक निगाह एक दृष्टि द्वारा गहराई से खुद जानने में सक्षम हो पा रहे हो या नहीं?

9. क्या आप एक बहादुर इंसान की तरह अपनी कमियों को निःसंकोच बिना किसी वाद-विवाद के स्वीकार कर आत्मनियन्त्रण द्वारा उनका वांछित सुधार कर पाने में सक्षम हो पा रहे हो या नहीं?

10. क्या अब आप नश्वर शारीरिक भाव-स्वभाव छोड़, आत्मीयता के भाव-स्वभाव अपनाकर, यथार्थता से जीवन जीते हुए व परस्पर सत्यता का धर्मसंगत वर्त-वर्ताव करते हुए, एकता, एक अवस्था में बने रहने का प्रयत्न कर रहे हो या नहीं?

11. क्या आप शास्त्रविहित शब्द ब्रह्म विचारों को धार समभाव-समदृष्टि की युक्ति अनुरूप अपने हृदय को निरंतर विशुद्ध रखते हुए मनुष्यता यानि निज मानव धर्म पर स्थिर बने रह सजन भाव अनुरूप चलन अपना पा रहे हो या नहीं?

सजनों उपरोक्त के सम्बन्ध में निश्चित ही आपने अपना नतीजा ले, स्वयं में पाई गई कमियों को दूर करने का दृढ़ निश्चय ले लिया होगा। अपनी कमियों को समूलतः इस यज्ञ के दौरान समाप्त करने हेतु सजनों सूक्ष्मतः जानो कि मन पर पड़ी हुई यानि जमी हुई विकारों/दोषों की गर्द यानि धूल को मैल कहते हैं। मानो कि जो भी मन में मैल रखता है उस मलिन मन वाले के मन में खोटापन, नीचता आदि जैसे अवगुण पैदा हो जाते हैं और ऐसा इंसान अच्छाई का रास्ता

छोड़, बुराई यानि परस्पर निंदा, गाली-गलौच, शिकायत आदि का द्वेषपूर्ण, वैर-विरोध युक्त स्वार्थपर रास्ता अपना बैठता है। इस प्रकार अशुद्ध मन में पनपे इस नकारात्मक वातावरण के प्रभावस्वरूप उसमें नाना प्रकार की संकल्प-विकल्प रूपी तरंगें उठनी आरम्भ हो जाती हैं और जब वह इंसान इस भ्रमित अवस्था में सत्य-असत्य की पहचान करने में असमर्थ हो जाता है तो उस विवेकहीन की वृत्ति, स्मृति व बुद्धि की निर्मलता समूलतः भंग हो जाती है। ऐसे में फिर उस मनमत पर चलने वाले स्वार्थी इंसान को अन्यों द्वारा कही हुई विचारयुक्त बातें भी बुरी लगने लगती हैं और जीवन में प्राप्त होने वाले दुःख-सुख, हानि-लाभ, मान-अपमान आदि खलने लगते हैं जो उसकी निराशा व तनाव का कारण बनते हैं। अन्य शब्दों में यह अवस्था अंतःकरण की स्वच्छता भंग होने के कारण हृदय से यथार्थ सत्य के लोप होने का सूचक होती है जिसके परिणामस्वरूप एक अच्छा भला मानव भी मिथ्याचार यानि परस्पर झूठ का व्यापार करने के कारण इंसान से शैतान बन जाता है यानि उत्तमता के विपरीत निकृष्ट अवस्था को प्राप्त होता है।

इस संदर्भ में सजनों हममें से किसी के साथ ऐसा न हो इस हेतु नित्य प्रति हृदय की सफ़ाई की क्रिया करना आवश्यक मानो। याद रखो जो इंसान आत्मनिरीक्षण द्वारा मन में जमी हुई मैल की नित्य सफ़ाई करने की क्रिया नहीं करता, उसे वहाँ पर जमी हुई मैल से उपजे दुर्भाव जल्दी से दिखाई नहीं देते। वह तो फिर रगड़ कर, यानि कष्ट-क्लेश सहकर उसे साफ़ करने पर ही, अपने मनोभावों की हकीकत जान सकता है। इस कठिनाई से बचने हेतु सजनों निंदा-उस्तत के रूप

में, मन में कूड़ा-करकट भर, उसे विकारयुक्त या अस्वच्छ करने का चलन छोड़ दो ताकि सर्वत्र यश रूप में आपके स्वभावों की सुगंधि ही फैले। इसे अपने प्रकाशित मन-मन्दिर को मैला होने से बचाने के लिए आवश्यक उपचार मानो व सदा अपने यथार्थ स्वरूप में बने रहो।

सरल शब्दों में सजनों अपने भावों को निर्मल बनाओ ताकि लेश मात्र भी दुर्भाव अंदर न पनपे और सर्वत्र सदा सजनता विद्यमान रहे। कहने का आशय यह है कि सजन भाव अपनाओ और अपने श्रेष्ठ मानव होने का सत्य निर्दोषता से प्रमाणित करो। याद रखो यह समय व्यर्थ गँवाने का नहीं अपितु अपने मन से सम्पूर्ण विकारों का उन्मूलन कर सतवस्तु धारण करने का है। अतः पूर्णतः स्वच्छ होने का पुरुषार्थ दिखाओ ताकि सूक्ष्म से सूक्ष्म विकार भी दृष्टि से ओझल न हो पाए व जीवन हारने का कारण न बने।

इस उद्देश्य की सिद्धि हेतु सजनों सबने ताकतवर होकर सार्थक परिणाम प्राप्त करने के लिए आज से ही तत्पर होना है और एक दूसरे को आपेक्षित सहयोग प्रदान करने से नहीं सकुचाना। तात्पर्य यह है कि इसके लिए किसी को क्षमा भी करना पड़े या अन्य किसी प्रकार का कोई त्याग दिखाना भी पड़े तो ऐसा करने से नहीं घबराना। इसी प्रकार सर्वदा अफुर रहने के लिए न तो किसी की बात को दिल में रखना और न ही अपना स्वार्थ सिद्ध करने व किसी पर प्रभुत्व जमाए रखने के लिए किसी को मानसिक तनाव देना। आशय यह है कि सदा दिलों में अलगाववाद पैदा करने वाले द्वि-द्वेष युक्त चलन से बचे रह, परस्पर अखंड एकता में बने

रहना। जानो कि इस कार्य को एक कर्मठ इंसान की तरह अति संतोष व धैर्य से सम्पन्न कर, तदुपरांत परस्पर सत्य-धर्म का वर्त-वर्ताव करने पर ही, हमें एक चरित्रवान इंसान बनने का सौभाग्य प्राप्त हो सकता है।

इस परिप्रेक्ष्य में सजनों यह भी जान लो कि जिस प्रकार इस तन को स्वच्छ अथवा शीतल करने के लिए जल से धोना पड़ता है या फिर जल राशि में प्रवेश कर स्नान करना पड़ता है या फिर धूप, वायु आदि के सामने इस प्रकार बैठना व लेटना होता है कि सारे शरीर पर उसका पूरा प्रभाव पड़े, ठीक उसी प्रकार इस मन को निर्मल रखने के लिए, नीति अनुसार सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ को नियमानुसार पढ़ते हुए उसमें वर्णित शब्द ब्रह्म विचारों अर्थात् आध्यात्मिक विद्या जिसमें ब्रह्म और जीव का ज्ञान विदित है, को इस चालीस दिनों के ब्रह्मचर्य व्रत के समय काल के दौरान ग्रहण कर व उन शब्द ब्रह्म विचारों का अर्थ सहित अपने हृदय/मन में प्रसार कर, इस कठिन परीक्षा में उत्तीर्ण होने का पराक्रम दिखाना होता है।

ऐसा करने पर ही आपका अंतःकरण परिपूर्णता विशुद्ध होगा व आपको आपकी यथार्थता का सत्य बोध स्वयंमेव हो जाएगा। याद रखो यह आत्मज्ञान रूपी विशुद्ध ज्ञान धारा से अपने मन को धो व उन शब्द ब्रह्म विचारों को ग्रहण कर आत्मतुष्टि प्राप्त करने की बात है। जान लो केवल आत्मतुष्ट इंसान ही इस जगत में अकर्त्ता भाव से सब कुछ सक्षमता से करते हुए पावन व सुन्दर चरित्र का निर्माण कर सकता है। अतः सजनों इस क्रिया को विधि के विधान

अनुसार सम्पन्न करने के लिए संतोष, धैर्य की पोशाक पहनना आवश्यक मानो और इस चालीसे के दौरान, शरीर व इन्द्रियों के स्थान पर, आत्मस्वरूप से स्नेह स्थापित कर परमेश्वर से ही सब कुछ प्राप्त करने के सुपात्र बनो और इस मिथ्या शरीर द्वारा निष्कामता से परोपकार कमाते हुए ब्रह्मपद पाओ।

इस कार्य में शत् प्रतिशत् सफ़लता प्राप्त करने हेतु सजनों अब इस महायज्ञ के दौरान अपने मन को वश में रखते हुए अपने धर्म की रक्षा करने व उसका जनहित के निमित्त सदुपयोग करने का सत्यनिष्ठा से अभ्यास करना ताकि आपकी नासमझी के कारण किसी प्रभाववश कोई सोच, बात या कर्म धर्म विरूद्ध न हो जाए और परिणाम रूप में आपको उसका दंड आवागमन के चक्र के रूप में भुगतना पड़े। इसे ब्रह्मचर्य व्रत की ठीक से पालना करने हेतु आवश्यक मानना ताकि आपका मन कामनायुक्त होने के स्थान पर मानवता युक्त रहे। याद रखो यदि आत्मनियन्त्रण रखते हुए इस यत्न में सफ़ल हुए तो यह चलन आपके स्वभाव के अंतर्गत हो पक्का हो जाएगा और आत्मसुधार का सूचक होगा।

तभी परस्पर वर्त-वर्ताव के दौरान आप का संकल्प स्वच्छ, दृष्टि कंचन व जिह्वा स्वतन्त्र रह पाएगी और इस प्रकार आप एक निगाह एक दृष्टि हो, दिव्य दृष्टि का सबक़ ले, एक दर्शन में स्थित हो जाओगे। याद रखो तब ही समभाव-समदृष्टि के सबक़ का, सजन भाव अनुरूप व्यावहारिक रूप समझ, उसे ठीक प्रकार से अपना पाओगे और इस प्रकार घर सतयुग बना एकता व एक अवस्था में रहते हुए परमपद

प्राप्त कर अखंड शांति को पा लोगे। अतः सबसे प्रार्थना है कि इस शुभ कार्य को समयबद्ध सम्पन्न करना सुनिश्चित करना ताकि आपके हृदय में धर्म का झंडा सदा इस प्रकार बुलंद रहे कि दुनियां देखे और हर मानव आपके इस महान तप से इंसानियत में ढलने की प्रेरणा प्राप्त करे।

सजनों यह सबसे उत्तम परोपकार है जिसे निर्भयता व त्याग भावना से सम्पन्न कर अपना नाम इस जगत में रोशन करना होगा। इसी सन्दर्भ में सजनों यदि आप इस जगत में निज धर्म का झंडा बुलंद करने के प्रति दृढ़ संकल्प हो तो फिर आओ मिलकर सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ से उद्धृत इस कीर्तन को बोलें, समझें व इसका मनन करते हुए इसमें वर्णित परिणामों को प्राप्त कर, अपने जीवन का सही अर्थों में उद्धार करें :-

श्री हनुमान जी महाराज, धर्म दा झण्डा झूले
सुकर्मा दा होवे राज, धर्म दा झण्डा झूले
हुण ठण्डी आवे हवा, धर्म दा झण्डा झूले
धर्म दा झण्डा झूले, धर्म दा झण्डा झूले।
श्री हनुमान जी महाराज....................

कर्म जावन घर आपने, अधर्म जावन घर आपने
हुण शास्त्र लिया विचार, हुण रस्ता लिया है संवार
सुखकारी लिया है संवार, हुण सच्चे शौह नाल प्यार,
धर्म दा झण्डा झूले
धर्म दा झण्डा झूले, धर्म दा झण्डा झूले।
श्री हनुमान जी महाराज....................

नाम दियां बूंदा बरसन, किणमिण-किणमिण बरसन
हुण खाक होवे साडी साफ़, हुण बीज बोवो दिन रात
सुखकारी लिया है संवार, हुण सच्चे शौह नाल प्यार,
धर्म दा झण्डा झूले
धर्म दा झण्डा झूले, धर्म दा झण्डा झूले।
श्री हनुमान जी महाराज....................

फुव्वारे रिमझिम लावन, अपनी शोभा दिखावन
सुक्का हरया होवे बाग, ए उसे दा प्रताप
सुखकारी लिया है संवार, हुण सच्चे शौह नाल प्यार,
धर्म दा झण्डा झूले
हुण सच्चे शौह नाल प्यार, धर्म दा झण्डा झूले
धर्म दा झण्डा झूले, धर्म दा झण्डा झूले।
श्री हनुमान जी महाराज....................

दरखतां दे हुन भाग जागे, सच्चाई दे फल फुल लागे।
लिश्कारे मारे बाग, त्रिलोकी दा चिराग।
सुखकारी लिया है संवार, हुण सच्चे शौह नाल प्यार,
धर्म दा झण्डा झूले
धर्म दा झण्डा झूले, धर्म दा झण्डा झूले।
श्री हनुमान जी महाराज....................

मालियां दे माली बाग लाया,
बाग दा मालिक देखन आया।
मालियां दे माली दित्ता ए संवार,
मालिक देख के होआ ए निहाल।
सुखकारी लिया है संवार,
हुण सच्चे शौह नाल प्यार, धर्म दा झण्डा झूले
हुण सच्चे शौह नाल प्यार, धर्म दा झण्डा झूले
धर्म दा झण्डा झूले, धर्म दा झण्डा झूले।

अंत में सजनों, आओ इस वर्ष अपने जन्म की बाज़ी जीतने हेतु इस चालीसे के यज्ञ की अवश्य पालनीय निर्धारित नीतियों की यथा पालना करते हुए, सदा रोने-झुखने, निन्दया, शोक, क्रोध, झूठ, चोरी से बचने का संकल्प लें और पतिव्रत-पत्नीव्रत धर्म पर मज़बूत बने रह सात्विक आहार, आचार-विचार व व्यवहार अपनाना सुनिश्चित करें यानि सत्यवादी व धर्मनिष्ठ बनें। कहने का आशय यह है कि मन-वचन-कर्म द्वारा कुछ भी ऐसा पापपूर्ण आचरण न करें जिससे द्वि-भाव व नैतिक पतनता का प्रदर्शन हो। इस तरह सब ऐक्य भाव से समरसतापूर्ण जीवन जीना सीखें व सदा एकता और एक अवस्था में बने रहें।

सारतः सजनों इस निर्धारित उद्देश्य में सहजता से सफलता प्राप्त करने हेतु इन चालीस दिनों में एक श्रेष्ठ मानव बनने के प्रति दृढ़ संकल्प रहना व दिल से दिल मिला कर एकमत रहते हुए एक ही स्वर से समभाव-समदृष्टि के सबक़ अनुसार, सजन-भाव का वर्त-वर्ताव सहृदयता से करना। इस तरह परस्पर संगठित रहते हुए एक दूसरे को सहयोग प्रदान करना। जानो ऐसा सुनिश्चित करने पर ही आप एक तो अपने गृहस्थाश्रम के समस्त कर्त्तव्य निष्कामता से, प्रसन्नतापूर्वक करने में सक्षम बन सकोगे दूसरा कदाचित् अपने यथार्थ रूप से भ्रमित हो, जगत में उलझने की गलती नहीं करोगे।

इस संदर्भ में आरम्भ में यदि ऐसा करते समय आप को किसी समय कोई कामना सताए भी तो परमेश्वर से परमार्थी-धन के साथ नेक कमाई करने की ही याचना करना और एक अच्छे

स्वभाव वाले इंसान की तरह, अपने धर्म की मर्यादाओं में बने रहने हेतु उसका उदारता से सर्वहित के लिए निःसंकोच प्रयोग करना। जानो यह सब प्राप्त होने पर आपको कुछ और माँगने की आवश्यकता ही नहीं रहेगी यानि आप संकल्प रहित हो सदा अफुरता से अपने मन को परमेश्वर में लीन रख उस दिव्य स्रोत से ही सब कुछ प्राप्त करने में सक्षम हो जाओगे। सजनों यही खुशहाली का रास्ता है और इस सत्य-धर्म के निष्काम रास्ते पर बढ़ने वाला व्यक्ति ही अपना जीवन, आनन्दपूर्वक व्यतीत करने के साथ-साथ अपने मुख्य लक्ष्य मोक्ष को स्वतः ही सरलता से प्राप्त कर सकता है।

इस यत्न में सभी सफ़लीभूत हों,
इन्हीं शुभकामनाओं के साथ।

दिनाँक 25 दिसम्बर 2016 का सबक़

पंचभूत अर्थात् पंचतत्व - 1
आकाश

साडा है सजन राम, राम है कुल जहान
अर्थात् ईश्वर हमारा मित्र/प्रियतम सर्वव्यापक है, उसी को जानो, मानो व वैसे ही गुण अपनाओ।

शब्द है गुरु, शरीर नहीं है,
अर्थात् ज्ञानी को नहीं ज्ञान को अपनाओ और निमित्त में नहीं नित्य में श्रद्धा बढ़ाओ।

इस पर सुदृढ़ता से डटे रह, इस अटल सत्य पर स्थिर बने रहोः-

ओ३म् अमर है आत्मा, आत्मा में है परमात्मा

सजनों सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ कह रहा हैः-

पंजां तत्तां दा चमड़ा देखो चमड़ा अजब सजाया है।
चमड़े में प्रकाश ओ प्रकाश उसने पाया है।।

इसी कीर्तन में आगे इन पाँच तत्त्वों का स्पष्टीकरण देते हुए कहा गया हैः-

जल वायु अग्नि पृथ्वी और आकाश।
पंजां तत्तां दा चमड़ा, इसी चमड़े में पाया प्रकाश।
इसी चमड़े में पाया दीदार,
इसी चमड़े में रैहंदे ने परवरदिगार।।

इसी चमड़े में प्रकाश सुहाया।
आहा इसी चमड़े में प्रकाश,
ओ प्रकाश उसने है पाया।।
इस चमड़े में प्रकाश है, इसी में निवास है,
इसी चमड़े में विशेष है, इसी में प्रवेश है।
इस चमड़े तों विशेष है, एह चमड़े में हर्षाया।
आहा चमड़े में प्रकाश, ओ प्रकाश उसने है पाया।।

उपरोक्त पंक्तियों द्वारा सजनों पाँच तत्वों से बने इस भौतिक शरीर की महत्ता स्पष्ट होती है। इन्ही तत्वों से निर्मित शरीर को ही जीवात्मा ने धारण किया हुआ है यानि यह ही जीवात्मा का सर्वोत्तम आश्रय स्थल है। अन्य शब्दों में यह ही, उस प्रच्छन्न (छिपी हुई) चेतना का, एक आभास, एक निवास स्थान, एक यंत्र है जिसने इस विश्व रूपी चमत्कार की रचना की है और जो इस जड़ जगत के हर भाग में, उसकी हर गति में उपस्थित होने का प्रमाण देती है। अतः इस पाँच तत्त्व के पुतले के माध्यम से, इस सत्य को मन-वचन-कर्म द्वारा स्वीकारना कि वह चेतना, इस शरीर में व अखिल ब्रह्मांड के ज़र्रे-ज़र्रे में उपस्थित है तथा हमारे सर्वांगीण विकास व जीवन के रहस्य की चाबी है।

निःसंदेह सजनों इस चाबी द्वारा हम अपने जीवन के रहस्य का उद्‌भेदन तभी कर सकते हैं जब हम इस महत्त्वपूर्ण जड़ उपकरण के माध्यम से अपनी चेतना का उपभोग कर, अपने व्यक्तित्व का सम्पूर्ण विकास कर उसे पूर्ण बना सकें। इस हेतु सजनों आवश्यक है कि हमें इसके संयोजक तत्वों यथा पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु व आकाश, की विभिन्न विशेषताओं,

गुणों-अवगुणों, क्रियाओं तथा तात्विक दृष्टि से आजीवन स्वस्थता बनाए रखने हेतु उसकी महत्ता से सम्बन्धित पूर्ण जानकारी हो और इस जानकारी द्वारा हम अपने अवयवों के क्रिया-कलापों का निरीक्षण कर अपने शरीर का अन्दरूनी और बैहरूनी दोनों रूपों से अवलोकन कर यह पता लगा सके कि कौन सी चीज़ अव्यवस्थित और विशुद्ध है तथा क्यों? तत्पश्चात् उसे ठीक व्यवस्था में लाने के लिए क्या यत्न करना अनिवार्य है, उसकी सूझ बूझ प्राप्त कर, हम स्वयं पर अधिकाधिक नियंत्रण रखते हुए, सामान्य व सामंजस्यपूर्ण जीवन जी सके।

इस संदर्भ में सजनों यह भी जानना आवश्यक है कि जब तक हम अपने इन शारीरिक घटकों के प्रति अबोध रहते हैं तब तक हम इस शरीर का समुचित ढंग से उपयोग नहीं कर सकते। ऐसी स्थिति में ही इनका ह्रास होता है अर्थात् जिस शरीर के रहने का कोई प्रयोजन नहीं होता, वह नष्ट हो जाता है और यह पाँचों तत्व अपनी मूल प्रकृति में लय हो जाते हैं। अतः हमें पूर्णता की ओर यानि पूर्ण सामंजस्य/एकरसता की ओर बढ़ना होगा। इस हेतु इस भौतिक शरीर के घटकों के मध्य असामंजस्य/प्रतिकूलता के कारण को ढूँढ निकालना होगा और यह स्वीकारना होगा कि निश्चित ही यह हमारे चरित्र के किसी दोष की अभिव्यक्ति है जिस तक पहुँचने के लिए हमें अपनी आंतरिक सत्ता के अंदर के दोष तक पहुँचना होगा और उस पर काम करना शुरू करना होगा। हमें सदैव यह याद रखना होगा कि निजी सामंजस्य/एकरसता स्थापित करके ही हम निश्चित परिणाम यानि शरीर के विभिन्न तत्वों, भागों और

गतिशील शरीर के विभिन्न गतिविधियों में सामंजस्य/एकरसता स्थापित कर सकेंगे और प्राकृतिक सौंदर्य को प्रकट करने के योग्य बन सकेंगे।

इसी सन्दर्भ में सजनों विषय की महत्ता को समझते हुए आज से हम इन पाँच तत्वों का क्रमबद्ध अध्ययन प्रारम्भ करते हैं। आज सर्वप्रथम हम यह जानेंगे कि यह पाँच तत्व क्या हैं व तत्पश्चात् इन पंच महाभूतों में क्रमशः पहले तत्व आकाश को समझेंगे।

पंचभूत

वे पाँच प्रधान तत्व या मूलद्रव्य जिनसे संसार की सृष्टि हुई है, पंचभूत अर्थात् पंचतत्व कहलाते हैं। ये इस प्रकार हैं यथा आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी। इन मूल तत्वों के योग से ही जगत के समस्त पदार्थों की उत्पत्ति हुई है। प्रत्येक जीवित प्राणी में इन पंच तत्वों की स्थिति परम आवश्यक है। पशु, पक्षी, कीड़े-मकोड़ों, पेड़-पौधों एवं मनुष्यों में जीवन होता है। स्थूल रूप से इन पंच तत्वों का विशिष्ट संयोजन इन्हें एक विशेष प्रकार की जाति एवं प्रजाति का स्वरूप प्रदान करता है जैसे स्तनपाई जीव, जलीय जीव, आकाशचर इत्यादि। सूक्ष्मतम स्तर पर इन पंच तत्वों की संयोजन भिन्नता से एक विशिष्ट प्रजाति के प्राणी आपस में भी एक दूसरे से अलग-अलग होते हैं तथा यही भिन्नता मनुष्य को मनुष्य से भिन्न बना देती है। मनुष्य की यह विशेषता ही उसकी प्रकृति कहलाती है। इस प्रकार प्रत्येक व्यक्ति की प्रकृति दूसरे व्यक्ति से भिन्न होती है।

ध्यान दो पंच तत्व शरीर के कारण तो हैं परन्तु इन में ज्ञान नहीं होता। ज्ञान के अभाव में ये विकार ग्रस्त रहते हैं। अपने आप में जड़ होते हुए भी ये तत्व आत्मा के प्रकाश से सक्रिय हो जाते हैं तथा ज्ञान, नियम और व्यवस्थापूर्वक क्रिया करते हुए परिणाम को प्राप्त होते हैं। याद रहे ये पाँचों तत्व जीवात्मा का सर्वोत्तम आश्रय हैं तथा इनसे निर्मित देह में स्थित जीव अपने परम प्रयोजन को सिद्ध करता है। प्रयोजन सिद्धि के लिए ही इन पाँचों तत्वों का संयोजन व विलय होता रहता है परन्तु इन का नाश कभी नहीं होता। तभी तो सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया है:-

पंज तत् जल वायु, अग्नि पृथ्वी आकाश नहीं मरना।
जेहड़ा पृथ्वी ते कल्लर है उगया, उसनूं साफ है करना।।

इस प्रकार उपजना व प्रकृति में लीन होना इनका धर्म है और उस धर्मानुसार ये नाना प्रकार के रूपों में परिवर्तित होते रहते हैं।

आओ अब आकाश तत्व के विषय में जानते हैं:-

सामान्यतः- आकाश ऊँचाई पर का वह चारों ओर फैला हुआ अपार स्थान है जहाँ वायु के अतिरिक्त और कुछ नहीं होता। यह अनंत है तथा समस्त विश्व में व्याप्त है। इस अनंत विस्तृत अवकाश अर्थात् शून्य स्थान में विश्व के छोटे बड़े सब पदार्थ जैसे चंद्र, सूर्य, ग्रह, उपग्रह आदि स्थित हैं। आकाश की पहचान शब्द है। जहाँ शब्द है वहाँ आकाश है। शब्द सर्वत्र है अतएव आकाश विभु व्यापक है, नित्य है तथा एक है। आकाश निराकार है अर्थात् इस का कोई शरीर नहीं पर उसकी इन्द्रिय श्रोत्र (कान) है।

तात्विक दृष्टि से आकाश पंच महाभूतों में क्रमशः पहला माना गया है। शब्द तन्मात्र (पंचभूत अर्थात् शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध का सूक्ष्म अमिश्र रूप) से उत्पन्न होने के कारण शब्द इसका प्रधान गुण है। परमाणु रूप में आकाश तत्व को नित्य व स्थूल रूप में अनित्य कहा गया है।

चेतन तत्व (प्रकाश) के संयोजन से आकाश तत्व ने निम्नलिखित गुणों की प्रधानता का स्वामित्व ग्रहण किया है:-

अतिसूक्ष्मः- छिद्र से भी सूक्ष्म होने के कारण आकाश अति सूक्ष्म है इसीलिए यह अदृश्य है, अव्यक्त है, अगोचर है अर्थात दिखाई नहीं देता और इसका ज्ञान पाँच इन्द्रियों को नहीं हो पाता। परोक्ष रूप से यह लुप्त है, अनुभूत है तथा अज्ञात है। अन्तर्धान होकर ही आकाश के इस गुण को जाना जा सकता है।

तात्विक दृष्टि से आकाश के इस गुण के व्याप्त होने के कारण मनुष्य उत्तमता को प्राप्त होता है। उसमें प्रत्येक पदार्थ को सूक्ष्मतापूर्वक यथातथ्य जानने व समझने की प्रवीणता एवं मानसिक प्रगल्भता आ जाती है यानि वह बुद्धिमान अपनी तीक्ष्ण व प्रखर बुद्धि द्वारा हर तत्व का बारीकी से विवेचन कर परब्रह्म ईश्वर की सर्वव्यापक कला के मर्म को समझ जाता है।

व्यापकत्वः- अतिसूक्ष्म होते हुए भी आकाश सर्वव्यापक है अर्थात् चारों ओर फैला हुआ है। सम्पूर्ण ब्रह्मांड में व्याप्त होकर इस आकाश ने ही चारों ओर से सर्वत्र आच्छादित कर रखा है। व्यापकत्व के दृष्टिकोण से अन्य चारों तत्व भी आकाश में ही रहते हैं तथा उसी में अपने रूप, धर्म व कार्य को प्रकट करते हुए परिणाम को प्राप्त होते हैं परन्तु उन तत्वों के

अतिरिक्त जो भी मुक्त व रिक्त स्थान होता है वह ही आकाश कहलाता है। इस प्रकार आकाश के इस व्यापकत्व के गुण से ही सब पदार्थ आकाश में और आकाश सब पदार्थों में सर्वदा एकरस एकभाव से विद्यमान रहता है। स्पष्ट है कि यह सब तत्वों में रमते हुए, सबका आश्रय होते हुए तथा उनमें ओतप्रोत होते हुए भी उनसे भिन्न है।

तात्विक दृष्टि से इस अंतर्निहित गुण के कारण मनुष्य में ईश्वर के नितान्त सहवर्त्ती यानि हाज़रा हज़ूर होने का भाव जाग्रत हो जाता है अर्थात भिन्न शरीर होते हुए भी शनैः शनैः वह एक भाव से सब में प्रवेश करता हुआ अभेद यानि एक प्राण हो जाता है।

अवकाशः- जहाँ आकाश है वहाँ अवकाश है अर्थात शून्यता व अंतर है। इस प्रकार अवकाश बीच का शून्य स्थान है। शून्य अर्थात अविद्यमान, सूना, एकांत, वीरान एवं शान्त स्थान। यह शून्य स्थान अभाव युक्त व नितान्त रहित है। शून्य होने के कारण ही आकाश तटस्थ व अस्तित्वहीन है यानि रूप, रंग व रेखा से बाहर है। यदि ध्यान से देखा जाए तो अवकाश रूपी इसी विलक्षण गुण ने ही सब पदार्थों को परस्पर एक दूसरे से विभेदित किया हुआ है जिसके परिणामस्वरूप सब वस्तुएँ हमें एक दूसरे से भिन्न पृथक नज़र आती हैं और प्रत्येक तत्व का अपना अस्तित्व कायम रहता है। कहने का तात्पर्य यह है कि इसी गुण के कारण ही चारों तत्व एक ही आकाश में क्रीड़ा करते हुए भी एक दूसरे से अलग भासित होते हैं और इनका व्यूह एकत्र नहीं हो पाता।

तात्विक दृष्टि से जहाँ अवकाश होता है वहाँ किसी भी पदार्थ को कार्य के लिए क्षेत्र या अवसर प्राप्त हो जाता है अर्थात्

ठहरने के लिए स्थान प्राप्त हो जाता है। इस प्रकार यह अवकाश मनुष्य की अचेतन अवस्था में जहाँ सूक्ष्म विकारों को हृदय आकाश में व्याप्त शून्यता में ठहरने का स्थान प्रदान करता है वहीं चेतन अवस्था में संदेह रहित हो हृदय आकाश में व्याप्त शब्द की सर्वव्यापकता का प्रत्यक्षीकरण कर उसे अपने उचित स्थान यानि परमधाम तक पहुँचा देता है।

असीमः-- आकाश असीम है। इसकी कोई हद, छोर, सरहद या सीमा रेखा नहीं है। यह अनन्त, अपार है, अगाध है, अपरिमित है यानि इसका कोई परिमाण, परिधि व कोई गणना नहीं है। सीमित दृष्टि वश सामान्य जन क्षितिज पर्यन्त आकाश की सीमा का अनुमान लगाता है परन्तु वास्तव में यह भ्रम के सिवा और कुछ नहीं।

तात्विक दृष्टि से आकाश की असीमता के इस गुण को धारण करने वाला व्यक्ति सब प्रकार के छल, माया, दिशा व काल से रहित होकर सम्यक् दर्शी हो जाता है और अजर-अमर पद प्राप्त कर अनन्तर निकटस्थ अखण्डित परब्रह्म के मर्म को जान जाता है।

विशुद्धः- आकाश विशुद्ध यानि मिलावट रहित है अर्थात पृथ्वी में जल, वायु, अग्नि, आकाश चारों तत्व मिले हुए हैं। जल में अग्नि, वायु, आकाश मिले हुए हैं। अग्नि में वायु व आकाश मिले हुए हैं। वायु में आकाश मिला है किन्तु आकाश अपनी विशुद्ध अवस्था में मिलावट रहित है। विशुद्धता इसका सर्वमहान गुण है। इसी महानतम गुण के कारण अन्य चार तत्वों के स्वयं में विद्यमान होने के बावजूद

भी आकाश इन सब से निर्लिप्त है। यहाँ यह स्पष्ट करना अनिवार्य है कि चारों तत्वों के कारण उत्पन्न अशुद्धि व कल्मषता इत्यादि वायवीय बादलों का रूप ले वायुमंडल में छा जाती है जिसके कारण भ्रमवश आकाश अशुद्ध या मटमैला प्रतीत होता है परन्तु वस्तुतः सत्य यही है कि अन्य तत्वों में व्याप्त दूषणा से अप्रभावित आकाश सदैव अपरिवर्तनशील, उज्ज्वल व सम अवस्था में बना रहता है।

तात्विक दृष्टि से आकाश के इस गुण को धारण करने वाला यथार्थवादी सद्‌गुणी व्यक्ति सबके साथ परिष्कृत समान आचरण करते हुए निष्पाप और निर्विकार अवस्था को प्राप्त करता है। इस प्रकार वह पुण्यात्मा आकाश के समान ही निर्मलता व विशुद्धता को धार निष्कलंक हो जाता है।

सजनों आध्यात्मिक दृष्टिकोण से आकाश तत्व का सर्वाधिक महत्त्व है क्योंकि इसमें वह तेजोवह अर्थात् तेज को वहन करने वाला ज्योतिर्मय तत्व यानि शब्द ब्रह्म व्याप्त रहता है जो प्राणियों के हृदयों को समान रूप से स्पन्दित कर एकरस प्रकाशित रखता है। इसी महत्त्व से हृदय को अंतर आकाश की संज्ञा भी दी गई है और समस्त ग्रन्थों व विज्ञान का मूल माना है। इस शब्द ब्रह्म के नित्य, गुप्त, अविनाशी, अटल होने से आकाश को विभु अर्थात् सर्वोपरि, सर्वव्यापक, सर्वगत व शक्तिशाली कहा जाता है और हृदय आकाश को दिव्य व विशुद्ध कहा जाता है।

अंततः- हम कह सकते हैं कि इन पंच तत्वों से निर्मित शरीर की सम्पूर्ण शक्ति का उद्‌गम स्थल हृदय आकाश ही है क्योंकि जिस प्रकार सूर्य से असंख्य तेजोमय किरणें निकल

कर सारे ब्रह्मांड का पोषण करती हैं उसी प्रकार मनुष्य के हृदय आकाश में निहित आत्मतत्व के प्रकाश, प्रभा व शक्ति से पंच तत्वों से निर्मित इस भौतिक देह का पोषण होता है। इस आत्मतत्व की विद्युतधारा ही प्राणों के माध्यम से चेतना के रूप में शरीर में प्रवाहित होती है और इसकी स्थिति, वृद्धि और विकास का आधार बनती है। इस आत्मतत्व के विलीन होते ही देह का अस्तित्व भी समाप्त हो जाता है। इसी सन्दर्भ में अब ध्यान से सुनोः-

आकाश चाहे शून्य स्थान है।
पर यह सृष्टि उसी से उपजती है।
संतान के रूप में लड़का हो या लड़की।
दोनों आकाश फल ही कहलाते हैं।।

गर ये मानव रूप में अपने।
आकाश का होकर रहते हैं।
तो हृदय भासित सत्यज्ञान।
स्वतः समझ बुद्धिमान बन जाते हैं।।

ए विध् आकाश वृत्ति का सहारा पा।
प्राणवायु में गूँजत ब्रह्म शब्द।
हृदय प्रकाशित होने से।
उनका अपना हो जाता है।।

हृदय आकाश के खुलते ही।
सब संशय भ्रम मिट जाते हैं।
जानो ऐसे आत्मबोधी मानव ही।
निज दर्शन में स्थित हो पाते हैं।।

सजनों हम भी एक निगाह एक दृष्टि हो, एक दर्शन में स्थित हो पाएँ उसके लिए हमें इन्द्रियनिग्रह कर, ओ३म् आद् अक्षर के अजपा जाप द्वारा अपने हृदय आकाश अर्थात् अंतःकरण को एकरस विशुद्ध रखना होगा ताकि हम भी एकाग्रचित्तता द्वारा शब्द ब्रह्म विचारों को प्राप्त करने के योग्य बनने के लिए कठिन परिश्रम दिखा पाएं व जो अपने जीवन उद्धार हेतु आज करना असंभव लगता है वह कर पाना हमारे लिए संभव हो जाए। इस तरह उच्च बुद्धि, उच्च ख़्याल हो, हम अक्लमंद नाम कहाएँ व अपने जीवन की बाज़ी जीत जाएं।

इस संदर्भ में सजनों हम भी अपने जन्म की बाज़ी जीत जाएं इस हेतु हमें यह कदाचित् नहीं भूलना कि यह नश्वर भूमंडल हमारा असली स्थान नहीं अपितु गगनमंडल ही हमारा वास्तविक शाश्वत स्थान है। अतः हमें यह सुनिश्चित करना है कि हमारी सुरत अर्थात् ख़्याल सदा अपने यथार्थ घर में स्थिर बना रहे। इस तरह संतोष व धैर्यपूर्वक, इस मृतलोक में गमन करते समय, वह जगत के कल्याण के निमित्त, निज धर्म को सत्यनिष्ठा से ए विध प्रकाशित करे कि उसकी विशेषता सबको समझ में आए व इस क्रिया के दौरान जीव व जगत द्वारा, कभी भी, किसी कारण के प्रभाववश, अपनी-अपनी मर्यादा का उल्लंघन न हो। सजनों जान लो कि ऐसा करने पर परस्पर आचार-व्यवहार के दौरान सजनता का प्रवाह चल सकेगा और हम चिर आनन्द का अनुभव कर, एकता व एक अवस्था में बने रह, परमात्म स्वरूप होकर, निर्लिप्तता से जगत का उद्धार करने में सफल हो सकेंगे।

सजनों आकाश के विषय में जानने के पश्चात् अगले सप्ताह हम वायु तत्त्व के विषय में बातचीत करेंगे।

दिनाँक 01 जनवरी 2017 का सबक़

पंचभूत अर्थात् पंचतत्व - 2
वायु

साडा है सजन राम, राम है कुल जहान
अर्थात् ईश्वर हमारा मित्र/प्रियतम सर्वव्यापक है, उसी को जानो, मानो व वैसे ही गुण अपनाओ।

शब्द है गुरु, शरीर नहीं है,
अर्थात् ज्ञानी को नहीं ज्ञान को अपनाओ और निमित्त में नहीं नित्य में श्रद्धा बढ़ाओ।

इस पर सुदृढ़ता से डटे रह, इस अटल सत्य पर स्थिर बने रहोः-

ओ३म् अमर है आत्मा, आत्मा में है परमात्मा

सजनों सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ कह रहा हैः-

महाबीर जी नूं भुल गई हम,
जग विच रुल गई हम।
मैं तां जग विच रुल गई हम,
मैं तां जग विच रुल गई हम।।

सोहणे चरणां नूं भुल गई हम,
जग विच रुल गई हम।
पंजा तत्तां घबराया,
जीव होया कमजोर।
असली धन डाकू लुट चले, साडे पकड़ो महाबीर चोर,
साडे पकड़ो महाबीर चोर।।

अर्थात् अपने मूल चैतन्य स्वरूप एवं आधारभूत संयोजक तत्वों के बल एवं महत्त्व के प्रति अज्ञानता के कारण, संसार में विशिष्ट प्रयोजन सिद्धि हेतु उपजा जीव, विषय-विकारों का शिकार हो, निर्बलों की तरह, इन्हीं पंज तत्वों के पिंजरे में कैद होकर रह जाता है और फिर उस ईश्वर के आगे इस कैद से मुक्ति पाने की याचना करता है। परमेश्वर उसकी प्रार्थना स्वीकार कर उसे शब्द ब्रह्म विचार ग्रहण करने व उन्हीं अनुकूल विशुद्ध जीवन जीने हेतु सत्य-धर्म का निष्काम रास्ता भी बताते हैं परन्तु मन से हारा हुआ जीव, उस कल्याणकारी रास्ते पर अग्रसर होने में, अपने आप को कमजोर पाता है और इस प्रकार मनमत अनुरूप चलन अपना, झुखते-रोते हुए, जन्म-मरण के चक्रव्यूह में उलझा रहता है।

सजनों किसी के साथ ऐसा न हो इसलिए इन पाँच तत्वों के विषय में क्रमबद्ध जानकारी प्रदान कर आपको आपकी यथार्थ क्षमता से परिचित कराने का प्रयत्न किया जा रहा है। इस प्रयत्न से लाभ उठा सजनों अपने भीतर की विभिन्न गतिविधियों के बारे में सचेतन होने का यत्न करो। आशय यह है कि हम क्या करते हैं और क्यों करते हैं, इससे अनिवार्य रूप से परिचित होना आवश्यक समझो। इस हेतु स्वयं का अवलोकन कर, अपनी प्रतिक्रियाओं, आवेशों (जोश, मन की प्रेरणा) और उनके कारणों को देखना सीखो। अपनी कामनाओं, अपनी उग्रता, आवेगों (चित्त की प्रबल वृत्तियों) की गतिविधियों, अपनी अधिकार करने, हड़पने और शासन करने की वृत्ति का, और पीछे से उन्हें सहारा देने वाली अहंता, साथ-साथ उनकी दुर्बलता,

हतोत्साह, अवसाद और निराशा का विवेकशील साक्षी बनना सीखो। इस प्रकार अपने चरित्र का विस्तृत और विवेकपूर्ण अवलोकन कर आत्मसुधार द्वारा उसे रूपांतरित करो और अपने आप को खुद जानने के साथ-साथ, अपने ऊपर अधिकार करने की कला में भी पारंगत बनो। निश्चित ही सजनों यह हर जीवित प्राणी के लिए अमूल्य आधिपत्य (स्वामित्व) है। अतः इस हेतु मार्ग में बाधा उत्पन्न करने वाले आवेशों, कामनाओं आदि पर ध्यान न दो यानि उनका अनुसरण न करो।

यहाँ स्पष्ट कर दें कि अपने आप को जानने और अधिकार करने से तात्पर्य यह है कि अपने आंतरिक सत्य के साथ-साथ अपनी सत्ता के अलग-अलग भागों और उनकी अपनी-अपनी क्रियाओं के बारे मे सचेतन होवो। यह मालूम करो कि हम यह क्यों करते हैं-वह क्यों करते हैं? इस प्रकार अपने विचारों, अपने भावों, अपनी क्रियाओं, अपनी सारी गतिविधियों व अपनी क्षमताओं के बारे में जानने के साथ-साथ आत्मिक ज्ञान के प्रयोग द्वारा स्वयं पर सचेतन नियंत्रण की कला भी सीखो। इसके लिए हर क्षण अपने अन्दर अभीप्सा (चाहना, इच्छा) जगाओ। तभी न केवल अपनी प्रकृति के विषय में अपितु अपने जीवन के प्रयोजन के विषय में भी पूर्णतः जानकारी प्राप्त कर, अपने ऊपर पूरी तरह नियन्त्रण करने की कला में दक्ष बन सकोगे। सजनों यही जीवन विज्ञान है जिसे पूर्णतः जानने के लिए अपने बारे में सचेतन होना आवश्यक है। निश्चित रूप से ऐसा होने पर ही अपने भीतर की सचेतन सत्ता को मूर्त्त रूप दे सकोगे और प्रगति पथ पर अग्रसर होते हुए, भीतर विद्यमान सत्य को

बाहर प्रगट करने में सफल होवोगे। इस तरह शनैः-शनैः अपनी स्वाधीनता को अपने आप व्यवस्थित कर स्वयं अनुशासित हो सकोगे और अपनी नियति के सर्वशक्तिमान स्वामी बनने में कामयाब हो जाओगे।

इसी सन्दर्भ में सजनों यह कार्य कैसे सिद्ध करना है इस हेतु आज अपनी शारीरिक संरचना के दूसरे महत्त्वपूर्ण घटक वायु के विषय में जानते हैंः-

सामान्यतः वायु वह सूक्ष्म प्रवाह रूप पदार्थ है जो भूमण्डल को चारों ओर से घेरे हुए है अर्थात् सर्वत्र व्याप्त है। प्राणियों के जीवन के लिए यह सर्वाधिक आवश्यक है अर्थात् इसके बिना जीवन की कल्पना भी नहीं की जा सकती। वायु-अग्नि, जल व पृथ्वी से भी सूक्ष्म है। ये सब दृश्यमान होने से दृष्टिगोचर होते हैं परन्तु अति सूक्ष्म होने के कारण वायु न देखी जा सकती है, न सूँघी जा सकती है और न ही चखी जा सकती है अपितु यह निराकार, अदृश्य वायु मात्र स्पर्श का विषय है। इस प्रकार स्पर्श वायु का विलक्षण गुण है। इसका अनुभव केवल त्वचा द्वारा किया जा सकता है। त्वक् इन्द्रिय के इसी स्पर्श गुण के कारण ही सम्बन्धों के आधार पर विभिन्न मनुष्यों में भिन्न-भिन्न भाव, भावना, संवेदना व ज्ञान उत्पन्न होता है। यही नहीं वायु के प्रवाह के कारण शरीर के भिन्न-भिन्न अंगों में इस की अनुभूति भी भिन्न-भिन्न स्तर पर होती है। स्पष्ट है कि स्पर्श के भिन्न-भिन्न स्तर पर अनुभव किए जाने के कारण ही कहीं सुख या आनंदानुभूति होती है तो कहीं दुःख व पीड़ा। शारीरिक व मानसिक विकृतियाँ व व्याधियाँ इसी सुख-दुःख का ही परिणाम हैं।

इसके अतिरिक्त शब्द का वहन करने में वायु की भूमिका अद्वितीय है। इसकी अनुपस्थिति में भाषा सम्प्रेषण (आदान-प्रदान) असंभव है।

वैद्यक के अनुसार शुद्ध वायु हृदय, इन्द्रिय और चित्त को धारण करती हुई उत्साह, श्वास-प्रश्वास, चेष्टा, मलमूत्रादि के त्याग, धातुओं की सुदृढ़ता तथा इन्द्रियों को अपने विषयों के ग्रहण में समर्थ बनाने आदि कार्यों से देह की रक्षा करती है। यही नहीं रजोगुण से युक्त वायु योगवाही (योग का माध्यम) होने के कारण जहाँ तेज सम्बन्धी पदार्थों से युक्त होकर दाहक हो जाती है वहीं जल सम्बन्धी पदार्थों से युक्त होकर शीतकारी हो जाती है अर्थात् यह सूक्ष्मातिसूक्ष्म पदार्थों में प्रवेश कर संयोग विशेष होने से शीतल व रुक्ष, लघु व चलनशील, कठोर व मृदु यानि दोनों अर्थों को करने वाली हो जाती है। उनके अनुसार पक्वाशय, कमर, कान, हड्डी और स्पर्शेन्द्रिय ये सब वायु के स्थान हैं। इनमें विशेषतः पक्वाशय ही वायु का स्थान माना गया है। इसकी अपेक्षा अन्य सब स्थान गौण हैं। इस प्रकार शरीर के सभी पदार्थों के परस्पर विभाग करने से दोष जहाँ संग्रहीत होते हैं वहाँ वायु की ही प्रधानता मानी गई है।

स्थान भेद से वायु पाँच प्रकार की है यथा प्राण, अपान, समान, उदान और व्यान। प्राण वायु हृदय में, अपान वायु मलाशय में, समान वायु नाभिप्रदेश में, व्यान वायु सम्पूर्ण शरीर में तथा उदान वायु कंठ में व्याप्त रहती है।

प्राण वायु मुख और नासिका द्वारा गति करने वाली है। नासिका के अग्रभाग से हृदय पर्यन्त इसका स्थान है। प्राणों

को अवलम्बन प्रदान करने के कारण प्राण वायु सबसे प्रधान व महत्त्वपूर्ण है। इसी वायु द्वारा श्वास-प्रश्वास क्रिया सम्पन्न होती है व चर-अचर जीव जीवन धारण करते हैं। प्राण धारण करने के कारण ही जीव-जन्तुओं को प्राणी कहा जाता है। प्राण वायु का गमनागमन बन्द होने पर जीवनलीला समाप्त हो जाती है। हम कह सकते हैं कि प्राण वायु से ही जीवन का प्रादुर्भाव होता है व इसके अभाव में जीवन का अवसान यानि अन्त। यही नहीं वह शक्ति जिससे सारे ब्रह्माण्ड में प्रकम्पन हो रहा है व समस्त जीव स्थिर रह कर अपना कार्य कर रहे हैं वह भी प्राण ही है। इस प्रकार यह वायु शरीर के ऊपरी भाग में रहती हुई ऊपर की इन्द्रियों का कार्य संचालन करती है तथा इसी की सहायता से भोजन मुख से पेट में प्रवेश करता है। इसके कुपित होने से हिचकी, दमा आदि रोग उत्पन्न होते हैं। यहाँ यह भी स्पष्ट कर दें कि प्राणों को अधिकार में करने का नाम ही प्राणायाम है और जो मनुष्य प्राण पर अधिकार प्राप्त कर लेता है उसका अपने शरीर, मन व इन्द्रियों पर अधिकार हो जाता है। शास्त्रानुसार आँख, कान, नाक, मुँह, गुदा, मूत्रेन्द्रिय और ब्रह्मरंध्र प्राणों के निकलने के मार्ग माने गए हैं।

अपान नामक वायु नीचे की ओर गति करने वाली है। नीचे की ओर गति करते हुए नाभि से पादतल पर्यन्त यह अवस्थित है। गुदा से मल, उपस्थ से मूत्र, अंडकोश से वीर्य, गर्भाशय से गर्भ और रज इन सब को नीचे की ओर धकेलना अर्थात् बाहर निकालना इसी वायु का कार्य है। यह वायु जब कुपित हो जाती है तब वस्ति तथा गुदा में होने वाले भयंकर रोगों को उत्पन्न करती है। व्यान और अपान वायु के प्रकोप से

उत्पन्न हुए शुक्र दोष और प्रमेह को भी यही उत्पन्न करती है।

समान नामक वायु यह देह के मध्यभाग में नाभि से हृदय तक उपस्थित रहती है। जठराग्नि से युक्त होकर यह अन्न को पचाती है तथा खाए-पिए अन्न, जल आदि के रस को सब अंगों में बराबर बाँटती है। यही नहीं अन्न से उत्पन्न हुए विशेष पदार्थों यथा रस, मल, मूत्र आदि को अलग करना इसका प्रमुख कार्य है। यही समान वायु जब कुपित होती है तब मंदाग्नि अतिसार और गुल्मरोग (पेट का एक रोग जिसमें उसके भीतर एक गोला सा बन जाता है) को पैदा करती है।

व्यान नामक वायु स्थूल और सूक्ष्म सारी नाड़ियों में रुधिर का संचार करती है तथा रस को वहन करने में सदा उद्यत रहती है अर्थात् उसी की प्रेरणा से रस नाड़ियों में बहता है। यह ही स्वेद (पसीने) तथा रक्त को बहाती है और प्रस्पन्दन (धीरे-धीरे हिलने), उद्वहन (रस आदि बहाने), पूरण (पूर्ण करने), विरेचन (निकालने) तथा धारण पाँच प्रकार की चेष्टाएं भी करती है। यही नहीं प्राणी जो गति (गमन करना), अपक्षेपण (नीचे को फेंकना), उत्क्षेप (ऊपर को फेंकना), निमेष (नेत्र बन्द करना) और उन्मेष (नेत्र खोलना) आदि सम्पूर्ण क्रियाएं करते हैं, वे सब इसी व्यान वायु के आश्रय से होती हैं। व्यान वायु जब कुपित होती है तब सम्पूर्ण शरीर के रोगों को प्रायः उत्पन्न करती है और जो अन्य प्रकार की वायु हैं वे सब भी यदि साथ ही साथ कुपित हो जाएँ तो निस्संदेह देह को भिन्न कर डालती हैं अर्थात् प्राणघातक सिद्ध होती हैं।

उदान वायु हृदय से कंठ और तालु तक तथा शिर से भ्रूमध्य

तक गति करती है। इसके द्वारा प्राणी बोलने और गाने में प्रवृत्त होते हैं और इसके कुपित होने से स्कंध और कक्षा की सन्धि में होने वाले रोग उत्पन्न होते हैं। शास्त्र अनुसार यही वायु सूक्ष्म शरीर को शरीरान्तर वा लोकान्तर में ले जाती है तथा इसी द्वारा सूक्ष्म शरीर स्थूल शरीर से बाहर निकलकर कर्मानुसार गर्भ में प्रवेश करता है।

तात्विक दृष्टि से वायु पंच महाभूतों में क्रमशः दूसरी मानी गई है। स्पर्श तन्मात्र (पंचभूत अर्थात् शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध का सूक्ष्म अमिश्र रूप) से उत्पन्न होने के कारण स्पर्श इसका प्रधान गुण है और पूर्ववर्ती आकाश तत्व का गुण यथा शब्द इसमें गौण रूप से विद्यमान रहता है। तीसरे, चौथे तथा पाँचवें मूलतत्व यथा रूप, रस व गंध का इसमें अभाव रहता है।

वायुमण्डलस्थ जीवों का शरीर वायवीय है। स्पर्श अनुभव करने वाली त्वचा इन्द्रिय वायवीय है और जो बाहर गतिशील वायु है तथा अंदर जो प्राणरूप वायु है, वह वायवीय विषय है। परमाणु रूप में वायु तत्व को नित्य व स्थूल रूप में अनित्य कहा गया है।

अभी तक सजनों आपने जाना कि वायु तत्व क्या है? आओ अब वायु तत्व के गुणों के विषय में जानते हैं:-

सजनों चेतन तत्व (प्रकाश) के संयोजन से वायु तत्व ने निम्नलिखित गुणों की प्रधानता का स्वामित्व ग्रहण किया है:-

प्रकम्पन:-- प्रकम्पन यानि स्पन्दन वायु का अद्वितीय गुण है।

वायु के इसी प्रकम्पन से सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड सम रूप से स्पन्दित हो रहा है। यह स्पन्दन वास्तव में वायु में होने वाला वह कंप है जो किसी वस्तु पर आघात पड़ने के कारण अथवा स्वयं वायु पर आघात पड़ने के कारण उत्पन्न होकर कर्णेन्द्रिय तक पहुँचता है और उसमें एक विशेष प्रकार का क्षोभ उत्पन्न करता है। अपने इसी गुण के कारण वायु शब्द का वहन करता है। यहाँ यह स्पष्ट कर दें कि वायु का यह स्पन्दन ही जीवन के मूल तत्व यानि प्राण के रूप में शरीर को स्पन्दित कर रहा है। इसी स्पन्दन के कारण हृदय व फेफड़ों में निरन्तर संकुचन व प्रसारण होता है। इसी के सम्पर्क से नाड़ी भी सदा स्पन्दित रहती है। भय या आशंका की स्थिति में यह स्पन्दन तीव्र हो जाता है, थकान व रोग की स्थिति में यह मन्द हो जाता है तथा योगियों में सम रहता है। यही मनुष्य के मनोबल, वाक्-बल व , काय्-बल का हेतु है और इसी से स्वरित स्वर का रूपान्तरण होता है। इस प्रकार सम्पूर्ण जनचर-बनचर, जड़-चेतन के क्रियावन्त होने का कारण यह स्पन्दन ही है। यही नहीं अग्नि, जल और पृथ्वी तत्व भी वायु के इसी कम्प से युक्त होकर गतिमान हो जाते हैं।

तात्विक दृष्टि से यह स्पन्दन ही ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति का हेतु है और ज़र्रे-ज़र्रे में समरूप से आकाश तत्व के सहयोग से गुंजायमान है। इसी सम ध्वनि के साथ जुड़ने से मनुष्य में ज्ञानोदय होता है। परिणामस्वरूप उसमें समता का प्रवाह आरंभ हो जाता है और वह परमार्थिक सत्ता से जुड़ कर मानवीय गुणों से ओतप्रोत हो जाता है। ऐसा आत्मस्थ मनुष्य सदैव सचेती व जागृति में रहता है जबकि इससे अपरिचित

रहने पर मनुष्य को अपने अस्तित्व का ज्ञान नहीं हो पाता परिणामस्वरूप ऐसा मनुष्य संसार सागर में क्षुब्ध और भयभीत हो सदा दुविधा में फँसा गोते खाता रहता है। फुरनों के कारण उसका चित्त सदा अस्थिर और व्याकुल रहता है और मन संघर्षरत व आन्दोलित रहता है।

गति:-- स्पन्दन के कारण वायु में गति यानि सर्वदा हरकत में रहने व सम्पर्क में आने वाले पदार्थों को हिलाने-डुलाने का गुण विद्यमान रहता है। चलायमान होने के कारण वायु यत्र-तत्र निरंतर गमन करती रहती है और सदागति नाम से जानी जाती है। अधिकांशतः वायु तियर्क गमन करती है। वायु की यह गति ही उसके बल को बढ़ाती है व उसे चंचल बनाती है। यही नहीं वायु के सम्पर्क में आने वाली प्रत्येक वस्तु भी वायु की उस गति के अनुरूप ही गतिशील और चंचल हो जाती है। यही कारण है कि तूफ़ान आने पर समुद्र का जल वायु के बल के कारण मीलों मील दूर उछलकर जाता है। इसी प्रकार भयंकर आँधी में विशालकाय वृक्ष और भवन आदि भी सब उसकी तिरछी गति का शिकार हो जाते हैं। यही वायु जब शरीर में कुपित होकर वातचक्र के रूप में सर्पाकार गति से चलती है तो नाना प्रकार की विकृतियाँ व असाध्य पीड़ा उत्पन्न कर देती है। याद रहे आकाश में मेघ भी वायु की इसी गति के कारण इधर से उधर गमन करते हुए टकराकर विद्युत उत्पन्न करते हैं। देखा जाए तो तरह-तरह के भावों का परस्पर गमनागमन वायु की गति का ही कमाल है। यही नहीं जीवन की गति अर्थात श्वास का लेना और छोड़ना व अन्य समस्त क्रियाकलापों को करने की क्षमता आना भी इस गति का ही परिणाम है जिसमें सम का होना परम आवश्यक है।

ध्यान की प्रगाढ़ स्थिति में प्राणों की गति पर अधिकार हो जाता है और मनुष्य कालातीत हो सम अवस्था में स्थित हो जाता है। अन्य शब्दों में वायु की इस चंचल गति में स्थिरता, ठहराव या समता आते ही जीव स्थिरमति हो जाता है तथा महान योगी प्राणायाम द्वारा असाध्य सिद्धियाँ प्राप्त कर लेता है। यही नहीं ग्रहों का परिक्रमण भी इसी गति का परिणाम है तथा जीवात्मा का एक शरीर से दूसरे शरीर में गमन भी वायु की इसी गति द्वारा संभव होता है। जीवन की विभिन्न अवस्थाएं यथा शैशव, यौवन, प्रौढ़ व वृद्धावस्था भी इसी गति को दर्शाती हैं। हम कह सकते हैं कि गति से ही विकास एवं वृद्धि होती है और गति ही हमारी स्थिति, अवस्था, क्रियाशीलता व भाग्यनिर्धारण का आधार होती है। इसी आधार पर हमारा पुनर्जन्म निर्भर करता है।

तात्विक दृष्टि से जो गतिशील है वह उन्नतिशील है। इस प्रकार यह गति ही व्यक्ति विशेष के प्रयत्न की सीमा का निर्धारण करती है और इसी के साथ-साथ उसमें वैराग्य के अभूतपूर्व बल पर मार्ग में उत्पन्न गति के अवरोध को हटाने की युक्तिसंगत चेष्टा व साहस भी उत्पन्न करती है। इसी के आश्रय से मनुष्य प्रारब्ध के दुष्चक्र को लाँघ कर पार उतर सकता है। यहाँ ध्यान देने की बात है कि इस गति में पूर्वतः विचारपूर्वक दिशा निर्धारण करना अत्यन्त महत्त्वपूर्ण होता है क्योंकि समुचित रूप से गतिमान होने पर भी यदि दिशा निर्धारण विपरीत हो जाए तो मनुष्य का सारा उद्यम विफल हो जाता है जबकि यही क्रिया यदि भली-भाँति सम्पादित हो तो मनुष्य का प्रयत्न इस गति का सहारा ले मुक्ति को प्राप्त कर लेता है यानि परमार्थ की ओर अग्रसर हो अपने

उद्गमस्थल तक पहुँच जाता है। यही उसके ज्ञानवान व बुद्धिमान होने का परिचायक होता है और ऐसा नरश्रेष्ठ आवागमन के चक्र से सदा के लिए आज़ाद हो जाता है।

नकारात्मक रूप में वायु की गति के निरन्तर सम प्रवाह के अभाव में मनुष्य सांसारिक बाधाओं से विचलित हो भटक जाता है। उसका चित्त संसार के चलायमान दृश्यों से क्षुब्ध हो अस्थिर हो जाता है। परिणामस्वरूप मन की चंचलता बुद्धि को विचारशून्य व अविवेकी बना देती है और उसका मिथ्या अहंकार व अभिमान उसे दग्ध-भस्म के अंधकूप में ले डूबता है। इस प्रकार संसारी बाधाओं से ग्रस्त हुआ मनुष्य स्वेच्छाचारिता के कारण संसार सागर में भटक जाता है।

बलः- वायु महाबली है यानि गति के कारण इसमें शक्ति, सामर्थ्य व पराक्रम आ जाता है तथा यह और पुष्ट हो जाती है। यह बल जितना सुदृढ़ होता है शरीर उतना ही वीर्य व पौरुष सम्पन्न रहता है व मनुष्य का शारीरिक गठन हृष्ट-पुष्ट एवं सुदृढ़ होता है। कहते हैं मनुष्य में जितना वायुबल होता है उतना ही वह शक्तिशाली होता है यानि उसके अंगों का कुशलतापूर्वक संचालन तथा अन्य महत्त्वपूर्ण सूक्ष्मातिसूक्ष्म कार्य इस बल पर निर्भर करते हैं। यही नहीं स्थूलदृष्टि से भूमिगत पदार्थों के क्रियाशील होने का कारण भी यही वायु बल ही है।

तात्विक दृष्टि से मनुष्य जितना बलयुक्त होता है उतना ही प्रभावशाली, गंभीर और सुदृढ़ भी होता है। उसकी रचना शक्ति, कार्यशक्ति, उत्साह व प्रेरणा शक्ति, स्मरण शक्ति, मानसिक व आत्मिक शक्ति की सक्रियता व निष्क्रियता इसी

आनुपातिक बल पर ही निर्भर करती है जबकि इस बल के अभाव में मनुष्य कमज़ोर, असमर्थ व नपुंसक यानि पुरुषार्थ हीन हो निष्क्रिय हो जाता है।

वेग:--- वायु शीघ्रगामी है और बल से संयुक्त होने के कारण इस में वेग स्वतः ही उत्पन्न हो जाता है। इसी वेग के कारण इसकी गति में शीघ्रता व प्रचंडता आ जाती है। पृथ्वी में भूकम्प, जल में विवर्त, अग्नि में उर्ध्वगमन एवं वायु में चक्रवात इसी वायु वेग का सापेक्ष उदाहरण है जिसमें बर्बादी की हद तक सब कुछ तहस-नहस करने की क्षमता होती है। ऐसी बलशाली व वेगयुक्त वायु अपने आप में प्रचंडता लिए हुए घूमती हुई ऊपर की ओर उठती हुई दिखाई पड़ती है। शरीर में त्वरित गति से रक्त संचार होने का कारण भी यही वेग है जिसके फलस्वरूप शरीर में स्फूर्ति और तेज आता है। इसी वेग से शरीर से मल-मूत्र का निष्कासन होता है और प्रेम व प्रणयोन्माद जैसे भावों को तीव्रता मिलती है। इस प्रकार कामोन्माद व क्रोधावेश आंतरिक अग्नि को मिले वायु के इसी वेग का परिणाम है। इस वेग में वीर्य के स्खलन, रज व गर्भस्थ शिशु को गर्भ से बाहर निकालने की क्षमता है।

वेग के ही कारण वायु संचार को भी सशक्त माध्यम माना जाता है। इसके इसी गुण का लाभ आधुनिक तकनीक में न केवल यातायात के विभिन्न साधनों यथा वायुयान आदि में लिया जाता है अपितु ध्वनि तरंगों व दूरगामी तरंगों के संप्रेषण में भी इसका प्रयोग किया जाता है।

तात्विक दृष्टि से यह वेग ही आन्तरिक भावों के बाह्य प्रकटीकरण का हेतु है और इस प्रकार प्रसन्नता व

आनन्दप्रदायक है। नकारात्मक रूप से यही वेग मन को तरंगित कर त्वरित गति से संकल्प-विकल्प उपजाने का हेतु है यानि पदार्थ के सन्निकर्ष से वायवीय स्पंदन के कारण मन में निरंतर संवेगात्मक तरंगें उठती रहती हैं और शनैः शनैः महत्त्व दिए जाने पर रूप, रंग व रेखा लेती हैं। इस विक्षोभ से मनुष्य में जल्दबाज़ी व भावातिरेक उत्पन्न हो जाता है। यही नहीं वेग के असंतुलित होने से शरीर को स्वस्थ रखने वाली वात में व्यवधान उत्पन्न हो जाता है और मलावरोध, कोष्ठबद्धता, कब्ज, वातगुल्म, गठिया, मिरगी, स्वर-भेद, सूखी खाँसी, मूत्ररोग इत्यादि भयंकर रोग उत्पन्न हो जाते हैं।

उड़ाना:- उड़ने वाली वस्तु को उड़ाने में प्रवृत्त करना हवा का विशेष गुण है। इस के सहारे पक्षी व वायुयान आकाश में उड़ते हैं और आकाश मार्ग में एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाते हैं।

बादल, धूलकण, अग्नि, पत्तियां, सुगंध, परागकण, पतंग, जल-छींटे इत्यादि जैसी हल्की चीज़ें हवा के इसी गुण के कारण उड़कर तितर-बितर हो जाते हैं यानि फैल जाते हैं। कई बार ताप की अनुपस्थिति में तेज़ हवा में कपड़ों के सूखने का कारण भी वायु द्वारा वस्त्रों के जल कणों को उड़ाना ही है।

तात्विक दृष्टि से वायु के इसी गुण के कारण शरीर में उपस्थित होते हुए भी ख्याल अतीत की स्मृतियों, भविष्य की कल्पनाओं व विचारों में दूर-दूर तक चला जाता है। यही नहीं इसी गुण के आधार पर सुरत कंचन होकर हृदय

आकाश में विचरण करती है यानि आकाशों-आकाश, पातालों-पाताल, सप्तद्वीप, भूमण्डल की सैर करती है और उसकी यश-कीर्ति की सुगंधि चहुँ ओर फैलती है। नकारात्मक रूप से इसी के वशीभूत हो इंसान अहंकार व अभिमान में आकर उड़ता है और इतराता है। इस प्रकार उन्माद वश मर्यादाओं का उल्लंघन कर वह व्यक्ति कुमार्ग पर चलना भी स्वीकार लेता है और सर्वत्र सर्वदा अपयश का भागी बनता है।

आक्षेपण (फेंकना) वायु के वेग के कारण वायु में फेंकने या धक्का देने का गुण आ जाता है। इसी गुण के कारण इंजन दस बारह बोगियों के भार को खींच कर आगे की ओर ले जाता है और बॉल ज़मीन पर टप्पा खाकर ऊपर की ओर जाती है। यही नहीं इसी गुण के प्रभाव से अन्दर का ख़्याल यानि सुरत ज्ञानेन्द्रियों का टप्पा मारकर अन्तरिक्ष की गुफ़ा को पारकर अपने घर में प्रवेश कर जाती है यानि आकाशों-आकाश, पातालों-पाताल, सप्तद्वीप, भूमंडल को पार कर गगनमंडल में स्थिर हो रूप, रंग, रेखा से बाहर हो जाती है।

शुद्धता:- वायु में शरीर व वातावरण को स्वच्छ व निरोगी रखने की निरतिशय क्षमता है। इस रूप में वायु ऑक्सीजन के नाम से जानी जाती है तथा फेफड़ों में रहती है व सम्पूर्ण शरीर में विचरण करती है। यह शरीरस्थ प्राण का आधारभूत घटक है। इसकी अनुपस्थिति में प्राण-पखेरू उड़ जाते हैं। शुद्ध वायु की उत्पत्ति का एक मात्र स्रोत पेड़-पौधे हैं। पेड़-पौधे ही वातावरण में व्याप्त विषैली वायु को शोषित करके स्वच्छ दोषरहित वायु वातावरण में छोड़ते हैं।

वातावरण की हवा उस जीवनदायिनी ऑक्सीजन को सम्पूर्ण पर्यावरण में प्रसारित कर समस्त प्राणियों के सेवन का हेतु बनाती है। इस विशुद्ध वायु के पर्याप्त सेवन से ही जहाँ मनुष्य में निरोगी व स्वस्थ बने रहने की क्षमता आती है, वहीं पर्यावरण में संतुलन व सामंजस्य बना रहता है जबकि इसके अभाव में पर्यावरण की अशुद्धता ऋतु-चक्र के पूर्ण असंतुलन का कारण बन जाती है और परोक्ष रूप से समस्त प्राणियों को प्रभावित करते हुए विनाश को निमन्त्रण देती है। इसी लिए मनुष्य को हर संभव यत्न द्वारा इस शुद्ध वायु की उत्पत्ति व सेवन का प्रयत्न करना चाहिए ताकि वह निर्मल जीवन जी सके। जो व्यक्ति ऐसा कर पाता है वही व्यक्ति शुद्ध बुद्धि, शुद्धमति व सरल हृदय बन जाता है।

आध्यात्मिक दृष्टिकोण अनुरूप सजनों सारतः जान लो कि वायु अपने आप में वह तत्व है जो प्रायः सर्वत्र चलता रहता है और जिसमें प्राणी साँस लेते हैं, इसीलिए वायु का हर प्राणी के जीवन में विशेष महत्त्व है। चूंकि वायु की विशुद्धता ही इंसान के उत्तम व्यवहार के प्रति विश्वास की हेतु होती है इसीलिए शुद्ध वायु का सेवन स्वास्थ्यवर्धक माना जाता है। याद रखो वायु का बिगड़ना इंसान का बिगड़ना सुनिश्चित करता है। तभी तो ऐसा इंसान जगत की संगत के प्रभाव से, मानवता की मर्यादा में नहीं बना रह पाता और नैतिक तौर पर पतन अवस्था को प्राप्त करता है।

इस संदर्भ में जान लो कि आकाश ही वायुलोक है। जिस प्रकार वायुमंडल की निर्मलता के स्तर के आधार पर हर प्राणी की प्राणशुद्धि निर्भर करती है, ठीक उसी तरह हृदय

आकाश अर्थातः अंतःकरण की निर्मलता पर इंसान की वृत्ति, स्मृति व बुद्धि की शुद्धि निर्भर करती है। इसलिए इंसान को इंसानियत की मर्यादा में बने रहने के लिए सुनिश्चित करना होता है कि किसी प्रकार से भी जगत की हवा उसके ख़्याल में प्रवेश न करे। याद रखो इसके प्रति किंचित् मात्र भी लापरवाही बरतना, बाह्य जगत से विकारों को ग्रहण कर, इंसान के विकृत होने का हेतु बनती है और हमारा ख़्याल अपने घर के रास्ते से भटक जाता है। इसीलिए इन्द्रिय निग्रह द्वारा मन पर काबू रखने का विधान है ताकि विषय वासनाओं की आसक्ति मन में कोई ऐसा बवंडर न उठा दे और मन की शांति का भंग होना व मानव का अनिष्ट को प्राप्त होना पक्का हो जाए। इसलिए हर मानव को अपने हृदय रूपी वायुमंडल को शुद्ध रखने की तरकीब आवश्यक रूप से पता होनी चाहिए ताकि वह शक्तिशाली होकर जो भी करना चाहे कर सके। सजनों जगतीय चलन रूपी हवा से बचने हेतु ही शब्द ब्रह्म विचारों को ग्रहण करने का नियम है ताकि अन्दर अज्ञान घर न कर सके।

अंततः सजनों याद रखो कि जीवात्मा हृदय के भीतर स्थित प्राण वायु के माध्यम से पाँच प्रकार की वायु के मध्य तैर रहा है। ये पांच प्रकार के वायु जीवात्मा को घेरे हुए हैं। देहधारी जीव के पूरे शरीर में इसी के माध्यम से ही चेतना का प्रसार व प्रभाव का विस्तार हो रहा है। जब जीवात्मा इन पाँच प्रकार की वायु की कल्मषता से रहित हो विशुद्ध हो जाता है तभी वह अपने भीतर व्याप्त अंतर आकाश में गुंजायमान शब्द को स्पष्टता से सुनने में सक्षम हो निज अस्तित्व के रहस्य को जान पाता है। अतः यह प्रयत्न जीव के लिए पंच

तत्वों के बन्धन से जीवात्मा की मुक्ति हेतु अति अनिवार्य है। इस अनिवार्य प्रयत्न को सिद्ध करो और जिस प्रकार पवन पुत्र बजरंगबली यानि सजन श्री शहनशाह महाबीर जी ने पंचभूतों पर विजय प्राप्त कर अपने शरीर को वज्र के समान कठोर बना अमर पद प्राप्त किया उसी प्रकार आप भी उनके द्वारे पर होने के नाते, उनकी बताई युक्ति प्रवान कर जगत में अपना नाम रोशन करो।

दिनाँक 08 जनवरी 2017 का सबक़

पंचभूत अर्थात् पंचतत्व - 3
अग्नि

साडा है सजन राम, राम है कुल जहान
अर्थात् ईश्वर हमारा मित्र/प्रियतम सर्वव्यापक है, उसी को जानो, मानो व वैसे ही गुण अपनाओ।

शब्द है गुरु, शरीर नहीं है,
अर्थात् ज्ञानी को नहीं ज्ञान को अपनाओ और निमित्त में नहीं नित्य में श्रद्धा बढ़ाओ।

इस पर सुदृढ़ता से डटे रह, इस अटल सत्य पर स्थिर बने रहोः-

ओ३म् अमर है आत्मा, आत्मा में है परमात्मा

सजनों सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ कह रहा हैः-

जिस चमड़े में प्रकाश न राहवे,
ओ चमड़ा भिट्टा भिट्टा कहावे।
उस सजन नूं जलाया जावे,
राख ओहदी नदियों में बहाई जावे।।
ओ पानी फिर खेतियों में जावे,
फल पत्र पुष्प ओ अन्न उपजावे।
अन्न फल पत्र पुष्प इन्सानां ने खाया,
स्त्री दी खाद पति दा बीज बोया।।
फुरने दे अनुसार जनचर बनचर जड़ चेतन।

कीड़ी कोलूं हाथी अन्दर ब्रह्मा कोलूं तृण अन्दर।
चमड़े में प्रकाश उसने ओ पाया।।
चमड़े दी बनावट देखो चमड़े दी सजावट देखो,
चमड़ा प्रकाश नाल सजया सजाया,
चमड़ा पंजां तत्तां दा अजब बनाया।
त्रेता, द्वापर, कलुकाल और चुरासी के अन्त में
सतवस्तु आ जाती है।
चुरासी के अन्त में इन्सान का नतीजा निकलता है।

इन्सानी जून मुश्किल मिलती है।
ओ इन्सान सब कुछ पा सकता है,
जो पा लवे आत्मिक ज्ञान।
आवागमन उस सजन दा मिट गया
मेल उसने खा लिया ओ पहुँच गया परमधाम।

सम्भलो सजनों सम्भलो हुन सम्भलो तो सही।
वक्त है जे हुन सम्भलो हुन सम्भलो तो सही।

गत दो सप्ताह सजनों हमने अपनी संरचना के आधारभूत तत्वों के संदर्भ में क्रमशः आकाश व वायु के विषय में जाना। आओ आज अग्नि के विषय में जानते हैं:-

साधारणतः- अग्नि तेज और प्रकाश का वह पुंज है जो उष्णता की पराकाष्ठा पर पहुँची हुई वस्तुओं में देखा जाता है। अन्य शब्दों में अग्नि तेज का गोचर रूप है जिसकी प्रतीति उष्णता के रूप में होती है। तेज यानि दीप्ति, कांति, चमक, दमक, आभा, पराक्रम, बल, वीर्य, ताप, तेजी, प्रचंडता, प्रताप, रोबदाब तथा सत्वगुण से उत्पन्न लिंग

शरीर। इस प्रकार शरीर में जो उष्णता है वह अग्नि के ही कारण है। इस उष्णता के अभाव में प्राण शरीर को त्याग देते हैं। आओ अब विस्तार से अग्नि के प्रकार समझते हैंः-

शरीर, इन्द्रिय व विषय के भेद से अग्नि तीन प्रकार की होती है। शरीरस्थ अग्नि तेज के रूप में सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त है। इन्द्रियज अग्नि वह तेज है जिसके प्रभाव से नेत्र रूप को ग्रहण करते हैं। विषयक अग्नि चार प्रकार की होती है यथा भौम, जो तृण, काष्ठ आदि के जलाने से उत्पन्न होती है, दिव्य जो आकाश में बिजली से उत्पन्न होती है, औदर्य/जठराग्नि जो उदर में रहकर भोजन पचाती है तथा आकरज जो खनिज पदार्थों जैसे सोने आदि में रहती है।

वैद्यक के अनुसार शरीरस्थ पित्त ही वस्तुतः कार्य अग्नि है क्योंकि पित्त के ही उष्ण आदि गुणों द्वारा आहार का पाचन, खून बनने के लिए अन्नरस का लाल होना और आँख से दिखाई पड़ना इत्यादि कार्य सम्पन्न होते हैं। इस अग्नि रूपी पित्त के स्थानभेद होने से पाचक, रंजक, साधक, आलोचक और भ्राजक ये पाँच भेद होते हैं। ये पाँचों क्रमशः आमाशय, यकृत, प्लीहा, हृदय, दोनों नेत्रों तथा सम्पूर्ण त्वचा में रहते हैं। पाचक पित्त खाए हुए अन्न को पचाता है तथा रस, मूत्र, तथा मल को पृथक करता है और शेष अग्नियों के बल को बढ़ाता है। इस प्रकार इन सब प्रकार की अग्नियों का मूल, पाचक अग्नि ही है जिसे अन्य शब्दों में जठराग्नि भी कहते हैं। रंजक पित्त रस को रक्त के रूप में परिणित करता है। साधक पित्त बुद्धि, धृति व स्मृति को उत्पन्न करता है। आलोचक नामक पित्त पुतली के बीच रहते हुए प्रतिबिंब

यानि रूप ग्रहण का कारण है और भ्राजक नामक पित्त शरीर में कांति उत्पन्न करता है।

तात्विक दृष्टि से अग्नि पंच महाभूतों में क्रमशः तीसरी मानी गई है जिसमें प्रकाश और ताप होता है। प्रकाश यानि वह शक्ति अथवा तत्व जिसके योग से वस्तुओं का रूप आँखों को स्पष्ट दिखाई देता है तथा ताप वह प्राकृतिक शक्ति जिसका प्रभाव पदार्थों के पिघलने, भाप बनने आदि व्यापारों में देखा जाता है। इस ताप का अनुभव अग्नि, सूर्य की किरण, गर्मी, जलन आदि के रूप में इन्द्रियों को होता है। यह अग्नि का सामान्य गुण है जिसकी अधिकता से पदार्थ जलते या पिघलते हैं। इसे उष्णता यानि तेज, गर्मी, आँच, लपट, मानसिक कष्ट, हृदय का दुःख, ज्वर, बुखार व पीड़ा भी कहते हैं।

ताप सब पदार्थों में थोड़ा-बहुत निहित रहता है। विज्ञानानुसार ताप गति की शक्ति का एक भेद है। उदाहरणस्वरूप दो वस्तुएँ जब एक दूसरे से रगड़ खाती हैं तब रगड़ में जिस शक्ति का व्यय होता है, वह ही उष्णता के रूप में प्रकट होती है। इस शक्ति के संचार में जब रुकावट आती है तब वह ताप का रूप धारण करती है। स्पष्टतः अणुओं में जो एक प्रकार की हलचल या क्षोभ उत्पन्न होता है, उसी का अनुभव ताप के रूप में होता है। इस प्रकार ताप जब विशेष अवस्था में व्यक्त होता है तब ही उसका प्रत्यक्ष ज्ञान होता है। बाह्य स्रोत के रूप में ताप का सबसे बड़ा भंडार सूर्य है जिससे पृथ्वी पर धूप की गरमी फैलती है। सूर्य के अतिरिक्त ताप संघर्षण (रगड़), ताड़न तथा रासायनिक

योग से भी उत्पन्न होता है। इस प्रकार प्रकाश और ताप ये दोनों उष्मा के ही रूप हैं।

रूप तन्मात्र (पंचभूत अर्थात् शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध का सूक्ष्म अमिश्र रूप) से उत्पन्न होने के कारण रूप अग्नि का प्रधान गुण है और दो पूर्ववर्ती तत्वों के गुण यथा शब्द और स्पर्श इसमें गौण रूप से विद्यमान रहते हैं। चौथे तथा पाँचवें मूलतत्व यथा रस व गंध का इसमें अभाव रहता है। यहाँ यह भी स्पष्ट कर दें कि अग्नि, जल और पृथ्वी की भाँति प्रत्यक्ष होने वाला तत्व नहीं क्योंकि यह उनसे सूक्ष्म है। इसे प्रत्यक्ष करने के लिये ईंधन के अवलम्बन की आवश्यकता होती है। उसी के सहारे यह अभिव्यक्त होती है।

तेजोमण्डलस्थ (सूर्य, चंद्रमा आदि आकाश में स्थित पिंडों के चारों ओर का मंडल) जीवों के शरीर तैजस हैं। नेत्रेन्द्रिय (रूप अनुभव करने वाली इन्द्रिय दृष्टि) भी तैजस है। अग्नि, सूर्य और जठराग्नि आदि तैजस विषय हैं। अपने इस स्थूल रूप में अग्नि तत्व को अनित्य व परमाणु रूप में नित्य कहा गया है।

आओ अब समझें कि चेतन तत्व (प्रकाश) के संयोजन से अग्नि तत्व ने किन-किन गुणों की प्रधानता का स्वामित्व ग्रहण किया हैः-

लघुः- हल्की यानि भारहीन होने के नाते अग्नि, पृथ्वी और जल तत्व की अपेक्षा लघु है। इसे नापा या तोला नहीं जा सकता है। यहाँ यह स्वीकार्य है कि अग्नि पदार्थों को फैलाती अवश्य है किन्तु उनके वज़न को नहीं बढ़ाती। फैले हुए पदार्थों का नाप ही बढ़ता है, तोल नहीं। इसी सूक्ष्मता के कारण ही

अग्नि, पृथ्वी व जल में प्रवेश कर उन्हें उष्ण कर देती है परन्तु प्रकट रूप में दृष्टिगोचर नहीं होती। अग्नि वायु को भी गर्म कर देती है परन्तु उसमें प्रवेश नहीं कर पाती क्योंकि वायु अग्नि से भी सूक्ष्म है। इसलिये वायु अग्नि के कणों को केवल इधर-उधर ही ले जा सकता है।

तात्विक दृष्टि से अग्नि के इस गुण के प्रभाव से मनुष्य में सरलता, त्वरित निर्णायक क्षमता, सक्रियता, मृदुता, कोमलता, प्रियता, सुन्दरता, विशुद्धता, स्वच्छता, मित आहारिता, दक्षता, संक्षिप्तता, सुगमता, फुर्तीलापन व पूर्णता के गुण आ जाते हैं जबकि इस के अभाव में मनुष्य में तुच्छता, नीचता, अधमता, मंदबुद्धि, चंचलता, अस्थिरता, दुर्वृत्ति, चतुरता, मर्यादाहीनता, निस्सारता व दुर्बलता आ जाती है।

ऊर्ध्वगमन- अग्नि की गति स्वभावतः ऊपर की ओर ही होती है। यज्ञ की अग्नि, दूध का ऊपर की ओर उफान, ज्वर की उपस्थिति में थर्मामीटर के पारे का ऊपर की ओर चढ़ना, तपे हुए जल की भाप का ऊपर उठना, राकेट को प्रक्षेपित करना सब अग्नि के इसी स्वभाव के ही प्रतीक हैं। अपवाद स्वरूप मेघस्थ विद्युत जो अग्नि का ही रूप है उसका धरती में प्रवेश लोहे आदि के आकर्षणवश है। इसी प्रकार बिजली के तार आदि के सहारे विचरण करने वाली विद्युत अपने आश्रय के आकार पर निर्भर करती है और उसी आकार में फैल जाती है।

तात्विक दृष्टि से इस गुण के रहने से व्यक्ति ऊँचा व महान पद प्राप्त करने की चेष्टा करता है। उसका ख़्याल चढ़ती

कला में रहता है अर्थात वह प्रगतिशील विचारों वाला होता है। उसकी दृष्टि सकेन्द्रित होती है। उसका आचरण परिष्कृत होता है। ऐसा पौरुष सम्पन्न, उच्चाकांक्षी पुरुष अपनी अनुसन्धानात्मक वृत्ति द्वारा मानव जीवन की श्रेष्ठता यानि उच्च मुक्त पद को धारने के लिये उन्नतशील रहता है। इस गुण के अभाव में जीवन के परम अर्थ की पूर्ति का सदा अभाव रहता है। जिस प्रकार समुचित उष्णता के अभाव में प्राण शरीर को शनैःशनैः छोड़ जाते हैं उसी प्रकार जीवन लक्ष्य की ओर इंगित करने वाली ऊर्ध्वमुखी अग्नि की निरन्तरता व तत्परता के अभाव में मनुष्य के समस्त क्रिया कलाप उद्देश्य हीन होने के कारण व्यर्थ व निष्फल हो जाते हैं।

भास्वरः- अग्नि भास्वर यानि विलक्षण चमकदार है। यह अपनी चमक से सम्पर्क में आने वाली वस्तुओं को भी प्रकाशित कर देती है। इसका सर्वश्रेष्ठ उदाहरण अग्नि का गोला सूर्य है जो अन्धकार का नाश कर अपने प्रकाश से न केवल इस भूमण्डल को प्रकाशित कर सभी वस्तुओं की प्रतीति करा रहा है अपितु चन्द्र आदि ग्रहों को प्रकाशित कर रात्रि में भी उनके माध्यम से प्रकाश फैला रहा है। यही नहीं विद्युत के रूप में भास्वर बन यही अग्नि घर-घर को प्रकाशित कर रही है।

तात्विक दृष्टि से अग्नि की भास्वरता समस्त प्राणियों की पथप्रदर्शिका है अर्थात् मनुष्य के दीप्तियुक्त हो शूरवीर, प्रकाशवान व देदीप्यमान होने का प्रतीक है। इससे विशेष प्रसन्नता व आनन्द का अनुभव होता है और विवेक जाग्रत होने से अज्ञान अन्धकार दूर होता है तथा जीवन-पथ स्पष्ट और विशद यानि स्वच्छ और अनुकूल प्रतीत होने लगता है।

परिणामस्वरूप वह परोपकारी दूसरों के लिये आदर्श पथ-प्रदर्शक बन जीवन की कठिन राह को भी बोधगम्य बना देता है और उसकी यश-कीर्ति और महिमा सर्वत्र फैलती है, इसके अभाव में मनुष्य लोभ-लालच की चमकदार मृग-मरीचिका में फँस मृत्यु या काल का ग्रास बन जाता है।

पाचकः- पाचन में भी अग्नि का गुण है। जहाँ अग्नि है वहाँ पाक स्वतः आरम्भ हो जाता है। जिस प्रकार सूर्य की अग्नि में समस्त वनस्पतियाँ, औषधियाँ, अन्न-फल-शाक व फसलें आदि पकती हैं उसी प्रकार प्राणियों के जठर में स्थित जठराग्नि से ही भोजन पचता है और मनुष्य के जीवन को चलायमान रखने वाली ऊर्जा प्राप्त होती है। इस अग्नि के अभाव में मनुष्य के शरीर में नाना प्रकार के रोग उत्पन्न हो जाते हैं और उसकी स्थिति मरणासन्न हो जाती है। इसके विपरीत इस अग्नि के सम रहने पर ही मनुष्य आरोग्य और आयु लाभ प्राप्त करता है और उसके शरीर में दमक और कान्ति बनी रहती है। ऐसा कहने का अभिप्राय यह है कि अग्नि की सहायता से ही भोजन से रस, रस से रक्त, रक्त से माँस, माँस से मज्जा, मज्जा से हड्डी, हड्डी से वीर्य और रज, वीर्य व रज से ओज, ओज से तेज और तेज से बल बनता है तथा शरीर का पोषण और वृद्धि होती है। अग्नि का पाक धर्म ही पृथ्वी के गर्भ में स्थित नाना प्रकार की धातुओं की रचना करता है। यही पाक तीव्रतम होकर कोयले को हीरा व लोहे को स्टील में परिवर्तित कर देता है। मात्र अग्नि के सम्पर्क काल के भेद से ही हीरा, पन्ना, लाल, नीलम, पुखराज आदि निर्मित होते हैं।

तात्विक दृष्टि से अग्नि का यह गुण मनुष्य की बुद्धि को परिपक्वता प्रदान कर विकासोन्मुख बनाता है। ऐसा बुद्धिमान व्यक्ति निष्कपट हो शुद्धात्मा हो जाता है यानि स्वयं को परिष्कृत कर खालस सोना कर लेता है फिर उसमें प्रत्येक कार्य को सूक्ष्मता से करने की कुशलता यानि प्रवीणता आ जाती है जबकि इसके अभाव में मनुष्य अपरिपक्वता के कारण दोषग्रस्त हो अधकचरे ज्ञान, जो कि वास्तव में अज्ञान ही होता है, का वर्त-वर्ताव करता है। यह न्यूनता उसे असफलता यानि गिरावट की ओर ले जाती है जिसका अन्तिम परिणाम मृत्यु उन्मुखता यानि नाश ही होता है।

पावकता:- जल की भाँति अग्नि भी स्वभाव से पवित्र है। इसका पावकता धर्म धातुओं एवं वातावरण को पवित्रतम करने के सन्दर्भ में है। अग्निहोत्र द्वारा न केवल घर एवं वातावरण की शुद्धि होती है अपितु वायुमण्डल में स्थित अनेक विषैले जीवाणु भी नष्ट हो जाते हैं। यही नहीं अग्नि सदैव अपने विशुद्धतम रूप में रहती है उसमें लेश मात्र भी मिलावट नहीं होती। यह तो मिलावटी पदार्थों को भी अपने ताप से अलग कर शुद्ध कर देती है। उबले हुए जल में से विजातीय पार्थिव अंशों का अलग हो जाना, सोने को तपा कर उसकी खोट समाप्त कर उसे विशुद्ध बना देना इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है।

तात्विक दृष्टि से अग्नि का यह गुण मनुष्य में तेज यानि दिव्य ज्योति प्रकट करता है और उसे पराक्रम यानि अपार बल, शक्ति, साहस, शौर्य प्रदान करता है यानि उसमें ऊर्जा, उत्कंठा और उत्साह का संचार करता है। ऐसा शक्तिशाली,

शौर्य सम्पन्न, बलवान पुरुष अपने आत्मबल को सुदृढ़ कर अपनी मूल प्रकृति में स्थित हो शनैः-शनै ओजस्विता की ओर पदार्पण करता है। यही सामर्थ्य फिर उसका नैतिक बल बन चारित्रिक रूप से उसे सदाचारी व नीतिपरायण बनने की मज़बूती प्रदान करता है। ऐसे व्यक्ति की देखने की शक्ति यानि दृष्टि कंचन होती है व बुद्धि तीक्ष्ण होती है तथा उसकी समस्त पाप कल्मषता ध्वस्त हो जाती है। जबकि इसके अभाव में मनुष्य हतोत्साहित तथा अवसादग्रस्त हो उग्रता, प्रचंडता, अधीरता व तेज मिजाज को धारण करता है। उसका सर्वथा अपमान होता है और उसकी प्रतिष्ठा का नाश हो जाता है।

ओजस्:- ओजस् अर्थात् शक्ति, सामर्थ्य और बल। अग्नि ओजस् है अर्थात् बहुत बलशाली है। इसके सूक्ष्म कण आपसी संयोजन से अभूतपूर्व बल को प्रकट करते हैं। भूमि में भूकम्पों का आना, पर्वत्तों का विदीर्ण होना, भू-स्खलन, जल स्रोतों का बाहर आना इसके प्रत्यक्ष उदाहरण हैं। यही नहीं विद्युत रूप में वायुयानों, जलयानों, मोटर इत्यादि यन्त्रों में बल पैदा कर उन्हें तीव्र गति प्रदान करना और अपनी शक्ति और बल से गमनागमन सम्भव कराना सब इसी का ही प्रताप है। यहाँ याद रहे विद्युत के रूप में इसका बल, आकर्षण और प्रक्षेपण है।

इसी बल के कारण इसकी गति में वेग उत्पन्न हो जाता है। सूर्य में भी इसी अग्नि का ही तेज और बल है। शरीर में भी तेज और ओज का बल इसी से है। इसी के कारण शरीर शीत सहन करता है और अंग-प्रत्यंग में ऊर्जा उत्पन्न करता

है। यही नहीं करोड़ों टन जल का आकर्षण कर उसमें असीम विद्युत-बल उत्पन्न करना अग्नि के इसी गुण का परिणाम है। याद रहे अग्नि महान शक्ति का भण्डार है जिसके बल पर जड़-चेतन सब अद्‌भुत कार्य कर रहे हैं।

इसी प्रकार तात्विक दृष्टि से अग्नि की ओजस्विता अतुलित बलशालिनी है। अग्नि का यह गुण मनुष्य को वह पौरुष प्रदान करता है जिसके कारण उसके समस्त उपद्रवी या विरोधी भाव शांत हो जाते हैं और उसमें जीवनशक्ति का आविर्भाव होता है। परिणामस्वरूप मनुष्य प्रभावशाली बनता है यानि वह जो चाहे कर या करा सकता है। यही नहीं उसमें अपने अन्तःकरण को भी जिस ओर वह चाहे प्रवृत्त करने का अलौकिक गुण आ जाता है और इसके न रहने से मनुष्य अत्यधिक उत्तेजित रहता है। उसके मनोवेगों में बार-बार आवेश के उफ़ान आते हैं।

दाहकता :- अग्नि में जलाने व भस्म करने का गुण विद्यमान है। अपने इस रूप में कुपित अग्नि शरीर के अंग-प्रत्यंग के साथ-साथ ग्रामों और नगरों को भी भस्मसात् कर डालती है यानि जंगलों, बनचर, प्राणियों और समस्त शरीरों को नष्ट करने की क्षमता इसकी दाहकता में है। यहाँ तक कि पार्थिव और जलीय सब प्रकार के पदार्थों को जलाकर दग्ध करने की क्षमता भी इसमें है। अग्नि के इसी गुण का दुरुपयोग कर बनाए गए आग्नेय अस्त्रों से मानव अपने ही स्वरूप (मानव जाति) का विनाश कर रहा है। अग्नि की दाहकता जहाँ इस प्रकार अभिशाप है वहाँ अनुपयोगी पदार्थों को उपयोगी बनाने व खाद बनाने इत्यादि के रूप में मानव जाति के लिये

वरदान है। कठोर से कठोर धातु को अग्नि अपने इसी गुण के कारण पिघला देती है। इसी कारण अनेकानेक धातुएं पृथ्वी के गर्भ में तरल पदार्थों के रूप में प्रवाहित हो रही हैं।

तात्विक दृष्टि से यह मनुष्य को चमकती हुई लालिमा प्रदान करती है जबकि इसके अभाव में मनुष्य में ताप, कष्ट, जलन यानि अत्यंत दुःख और संताप उत्पन्न होता है। इसकी भीषण गर्मी से पीड़ित हो मनुष्य जहाँ एक ओर काम, क्रोध और तृष्णा जैसे महाविकारों की अग्नि में निरन्तर आप जलता है और दूसरों को जलाता रहता है वहीं दूसरी ओर ईर्ष्या और शोक आदि के रूप मे यह अग्नि निरन्तर मनुष्य के अन्तर को सुलगाती रहती है। परिणामस्वरूप मनुष्य कठोर यातना भुगतता है जिसका प्रभाव शरीर पर भी बुरी तरह से पड़ता है। मनुष्य रक्तज दाह (रक्त के कुपित होने से सारे शरीर में उत्पन्न असीम दाह। इस दाह के कारण मनुष्य को ऐसा जान पड़ता है कि मानो सारा संसार व उसका शरीर आग से तप रहा हो और क्षण-क्षण पर प्यास लगती है), रक्तपूर्ण कोष्ठज दाह (वह दाह जो किसी शस्त्र इत्यादि की चोट से निकले हुए रक्त से मनुष्य का कोष्ठ भर जाने के कारण उत्पन्न होता है), मद्यज दाह (वह दाह जो मद्यपान से उत्पन्न हुई उष्मा के पित्त तथा रुधिर में मिल कर बढ़ जाने के कारण त्वचा में उत्पन्न होता है), तृष्णा निरोधज दाह (जो दाह प्यास को रोकने के कारण शरीर की जलमय धातुओं के क्षीण हो जाने पर शरीर के भीतर व बाहर उत्पन्न होता है), धातुक्षयजन्य दाह (वह दाह जो शरीरस्थ मूल धातुओं के क्षय होने के कारण मूर्च्छा तथा पिपासायुक्त होता है। इस में व्यक्ति

क्रियाहीन हो जाने से मर जाता है), मर्माभिघातज दाह (शिर, हृदय तथा वस्ति इत्यादि मर्मस्थानों में चोट लगने से उत्पन्न दाह) और असाध्य दाह (जिसमें रोगी का शरीर ऊपर से तो ठंडा रहता है, पर भीतर-भीतर जला करता है) से रोग ग्रसित हो जाता है अर्थात् उसका रक्त कुपित होकर सारे शरीर में असीम दाह व बैचेनी उत्पन्न करता है।

प्रध्वंस अग्नि का नाशक गुण है। प्रध्वंस का अर्थ है सर्वथा नाश कर लोप कर देना। अग्नि के इस प्रध्वंस रूप का दर्शन प्रलयकाल में दृष्टिगोचर होता है जब सब पदार्थ कार्य रूप से कारण रूप में चले जाते हैं। उस समय अग्नि, पृथ्वी और जल के कार्यों का विनाश कर डालती है। तात्विक दृष्टि से यह नाश यानि सर्वथा विनाश, क्षय और पतन को प्राप्त होने का भाव है। इस अवस्था में प्रकृति स्वरूपावस्था में स्थित हो जाती है।

संक्षेपतः- सजनों जानों कि अग्नि दृश्यमान जगत की रचना में सहकारी कारण के रूप में प्रयुक्त हुई है। इसलिए सब कुछ दिखाई देता है। अग्नि में सत्त्वगुण अधिक मात्रा में है। इसलिए अग्नि प्रकाशमान भी है और अन्यों को भी प्रकाशित करती है यानि प्रकाश स्वरूपा है और अंधकार का नाश करती है। गतिमान है और अन्यों को भी गति प्रदान करती है। इसकी गति बहुत तीव्र है। पृथ्वी और जल में घुस जाती है। यह सर्व भोग्या है। इसके अभाव में तो जड़ और चेतन सब ही अंधकार में प्रवेश कर जाएंगे। इसके बिना कोई भी भोग उपलब्ध नहीं हो सकता। यहाँ तक कि इसके बिना जीवन ही समाप्त हो जाएगा। अतः इसके आलोक में अज्ञान

का नाश कर उस ईश्वर के आलोक का आभास करो और उस तेजोमय प्रकाश स्वरूप परमेश्वर के ही प्रकाश से सम्पूर्ण विश्व के पदार्थों और इन तत्वों को प्रकाशयुक्त मानो। उस परमेश्वर को ही इन तत्वों का निमित्त कारण मानो और इन तत्वों के समस्त कार्यों में चेतन निमित्त कारण की ही अनुभूति करो।

सजनों अग्नि तत्त्व को जानने के पश्चात् आगामी सप्ताह हम जल के विषय में बातचीत करेंगे।

दिनाँक 15 जनवरी 2017 का सबक़

पंचभूत अर्थात् पंचतत्व - 4
जल

साडा है सजन राम, राम है कुल जहान
अर्थात् ईश्वर हमारा मित्र/प्रियतम सर्वव्यापक है, उसी को जानो, मानो व वैसे ही गुण अपनाओ।

शब्द है गुरु, शरीर नहीं है,
अर्थात् ज्ञानी को नहीं ज्ञान को अपनाओ और निमित्त में नहीं नित्य में श्रद्धा बढ़ाओ।

इस पर सुदृढ़ता से डटे रह, इस अटल सत्य पर स्थिर बने रहोः-

ओ३म् अमर है आत्मा, आत्मा में है परमात्मा

सजनों सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में श्री साजन जी कह रहे हैंः-

रचना खेल हिन बहुतेरे, रचाये हिन ये जेहड़े।
हर जगह ये है जलवा, मैं ही दिखा रहा हूँ।।

मैं ही दिखा रहा हूँ, मैं ही दिखा रहा हूँ।
हर जगह ये है जलवा, मैं ही दिखा रहा हूँ।।

पवन पानी हिन बहुतेरे, बहाये हिन यह जेहड़े।
हर जगह यह है वायु, मैं ही चला रहा हूँ।।

मैं ही चला रहा हूँ, मैं ही चला रहा हूँ।
हर जगह यह है वायु, मैं ही चला रहा हूँ।।

आकाश पाताल हिन जेहड़े, ओ बनाये हिन ये मेरे।
हर जगह यह है पृथ्वी, मैं ही फैला रहा हूँ।।

मैं ही फैला रहा हूँ, मैं ही फैला रहा हूँ।
हर जगह यह है पृथ्वी, मैं ही फैला रहा हूँ।।

सूरज चांद बनाये हिन मेरे, बिन सूरजों चमकन ये जेहड़े।
आकाश ते जो तारे, मैं ही चमका रहा हूँ।।

मैं ही चमका रहा हूँ, मैं ही चमका रहा हूँ।
आकाश ते जो तारे, मैं ही चमका रहा हूँ।।

जड़ चेतन उपजाये हिन मेरे, बाज़ी जित लवन ओ जेहड़े।
रोशन हो गये नाम यह मेरे, रोशनी दिखा रहा हूँ।

रोशनी दिखा रहा हूँ, रोशनी दिखा रहा हूँ।
रोशन हो गये नाम यह मेरे, रोशनी दिखा रहा हूँ।।

जोत चमके जगत ते मेरी, रोशनी दिखाये यह जेहड़ी
चमकूं सारे भूमण्डल, ये चमक दिखा रहा हूँ।।

ये चमक दिखा रहा हूँ, ये चमक दिखा रहा हूँ।
चमकूं सारे भूमण्डल, ये चमक दिखा रहा हूँ।।

अर्थात् परमेश्वर ही इस शरीर के संयोजक पंच तत्वों यथा आकाश, वायु, अग्नि, जल व पृथ्वी का मूलाधार है। वह ही अपनी ब्रह्म सत्ता से इन्हें क्रियावन्त कर सजीवता प्रदान करता है और यह उसके प्रकाश से सचेतन हो अपने गुणों अनुरूप हर प्राणी को जीवन, स्वास्थ्य व सुख-संवृद्धि प्रदान करते हैं। इन पाँच तत्वों के संदर्भ में सजनों अभी तक जिन

तीन तत्वों को हमने पठन किया यथा आकाश, वायु व अग्नि, उन तीनों तत्वों से जीवन शक्ति को बल मिलता है। इसके अतिरिक्त जल व पृथ्वी ये दोनों तत्व शरीर की परिपुष्टि करते हैं। आइए शरीर की पुष्टि करने वाले इन तत्वों में से आज हम जल तत्व का अध्ययन करते हैं:-

जल ऐसा अनिवार्य पारदर्शक, निर्गंध और स्वादरहित द्रव्य पदार्थ है जिसकी स्थावर और जंगम सब प्रकार की जीवसृष्टि को आवश्यकता है। वायु की तरह इसके अभाव में भी कोई जीवधारी जीवित नहीं रह सकता। इसी कारण इसका एक पर्याय जीवन है। संसार में जल का मुख्य स्रोत वृष्टि है। द्रव यानि तरल पदार्थ होने के नाते इसका कोई निज का आकार नहीं होता किंतु जिस वस्तु के आधार में यह रहता है उसी के आकार का हो जाता है। यहाँ समझने की बात यह है कि द्रवत्व (बहने का भाव) और विभुत्व (सर्वव्यापकता, नित्य, चिरस्थायी) में भेद केवल इतना ही है कि द्रव पदार्थ परिमित अवकाश को घेरता है और विभु पदार्थ पूरे अवकाश में व्याप्त रहता है।

वैज्ञानिक दृष्टिकोण से जल एक यौगिक पदार्थ है जिसकी उत्पत्ति अम्लज (Hydrogen) और उद्‌जन (Oxygen) दो गैसों के योग से हुई है। तापमान की अधिकता से भाप बनकर उड़ जाने और तापमान की न्यूनता से पत्थर की तरह ठोस हो जाने की विशेषता जल में प्रत्यक्ष प्रतीत होती है। यद्यपि इसका कोई रंग नहीं है तथापि अधिक गहरा जल गहराई के कारण प्रायः नीला प्रतीत होता है। इसी प्रकार स्वाद और गंध भी इसमें उन द्रव्यों के कारण उत्पन्न होता है

जो इसमें घुले होते हैं। अवस्था भेद से भाप, मेघ, बूँद, ओला, कोहरा, पाला, ओस, बर्फ़ आदि इसके अनेक रूपांतर हैं। इनमें से बूँद, कोहरा, पाला, ओस आदि इसके तरल रूपांतर हैं। भाप और बादल वायव या अर्धवायव और ओला तथा बर्फ़ घनीभूत रूपांतर हैं।

वैद्यक दृष्टिकोण से जल शीतल, हल्का, रस का कारण रूप, श्रमनाशक, ग्लानिहारक, बलकारक, तृप्तिदायक, हृदय को प्रिय, अमृत के समान जीवनदायक, मूर्च्छा-पिपासा-तन्द्रा-वमन-निद्रा और अजीर्ण का नाश करने वाला है। खारा जल पित्तकारक और वायु तथा कफ़ का नाशक है। मीठा जल कफ़कारक और वायु तथा पित्त को घटाने वाला है। वृष्टि जल अमृत के समान गुणकारी, त्रिदोष शांतिकर, रसायन बलदायक, जीवन रूप, पाचक और बुद्धिवर्धक है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि पानी सामान्यतः विशुद्ध अवस्था में बहुत ही कम पाया जाता है। प्रायः कुछ न कुछ जांतव और वायव द्रव्य उसमें अवश्य मिले रहते हैं। पकाने से पानी के सब दोष मिट जाते हैं। इसी कारणवश जल को पीने से पूर्व वाष्प बना कर शुद्ध करने का विधान है।

जल की पहचान शीत स्पर्श है।

तात्विक दृष्टि से जल पंच महाभूतों में क्रमशः चौथा माना गया है। रस तन्मात्र (पंचभूत अर्थात् शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध का सूक्ष्म अमिश्र रूप) से उत्पन्न होने के कारण रस जो जिह्वा का विषय है इसका प्रधान गुण है और तीन

पूर्ववर्ती तत्वों के गुण यथा शब्द, स्पर्श और रूप इसमें गौण रूप से विद्यमान रहते हैं। पाँचवें मूलतत्व गंध का इसमें अभाव रहता है। यद्यपि यह रंगहीन है तथापि उज्ज्वलता के कारण इसे सफ़ेद वर्ण का माना जाता है।

जल मण्डलस्थ जीवों के शरीर जलीय हैं। रस अनुभव करने वाली इन्द्रिय जिह्वा भी जलीय है। नदी, समुद्र, बर्फ़, ओले आदि जलीय विषय हैं। अपने इन स्थूल रूपों में जल तत्व को अनित्य व परमाणु रूप में नित्य कहा गया है।

आओ अब जानें कि जल तत्व में कौन-कौन से गुण होते हैं:-

चेतन तत्व (प्रकाश) के संयोजन से जल तत्व ने निम्नलिखित गुणों की प्रधानता का स्वामित्व ग्रहण किया है:-

सूक्ष्मता:- जल में सूक्ष्मता का गुण विद्यमान है। इसी कारण यह पृथ्वी तत्व के महीन परमाणुओं में भी प्रवेश कर जाता है। पृथ्वी के संघात में (सघन करने में) सर्वप्रथम जल का ही योग है। इसी संघात के कारण पृथ्वी महान आकार धारण करती है। अपनी इसी सूक्ष्मता के कारण यह वनस्पतियों, जीव-जन्तुओं एवं मनुष्यों की देह में सर्वत्र फैली सूक्ष्म नसों व कोशिकाओं में प्रवाहित होकर रोम-रोम को सजीव भी बनाए रखता है।

स्वेदन क्रिया द्वारा मनुष्य के शरीर की गंदगी को प्रत्येक रोम-छिद्र से निकाल कर शारीरिक तापमान को संतुलित बनाए रखने का श्रेय भी जल के इसी गुण को जाता है। यही नहीं विभिन्न रोगों के उपचार हेतु प्रयुक्त आयुर्वेदिक

औषधियों का अर्क भी जल के इसी गुण का परिणाम है। इस प्रकार जल जीवनप्रदायक है जिसके बिना जीवन असंभव है।

तात्विक दृष्टि में इसके प्रभाव से मनुष्य में जहाँ सकारात्मक रूप से श्रेष्ठता, उत्तमता, निर्मलता, कलात्मकता, कोमलता, तेजस्विता एवं सूक्ष्मावलोकन के गुण उत्पन्न होते हैं वहीं इसके अभाव में धूर्तता, चालाकी, छल-कपट, जालसाजी आदि अवगुण भी आ जाते हैं।

मृदुता:- जल में मृदुता का भी विशेष गुण विद्यमान है। जल के इसी गुण के कारण शुष्क व कठोर पृथ्वी में मृदुता आ जाती है और भूमि नरम होकर उपजाऊ बनती है। बड़ी-बड़ी चट्टानें एवं पहाड़ भी इसी मृदुता के कारण स्वयं में जल को स्थान दे देते हैं। इसी गुण के कारण जल जिस आकृति के आकाश में समाता है बिना किसी विरोधाभास के उसी आकार में ढल जाता है।

तात्विक दृष्टि से इसी गुण की उपस्थिति से जहाँ मनुष्य में कोमल ह्रदयता, दयालुता, कृपालुता, सुकुमारता, लचीलापन, नम्रता, स्निग्धता, सौम्यता, मधुरता और सुन्दरता आती है वहीं इसके अभाव में मन्दता, कमज़ोरी व दुर्बलता आती है।

स्नेह:- स्नेह जल का विशेष गुण है और बिखरे पृथ्वी कणों को मिलाने का हेतु है। पदार्थों में भूमि तत्व की शुष्कता मिटाकर स्निग्धता यानि चिकनापन पैदा करना जल के इसी गुण का परिणाम है। तात्विक दृष्टि से इस गुण के विद्यमान

होने से जहाँ मनुष्य में हितकारिता, रुचि, सुन्दरता, प्रकाश, आभा, कान्ति, लावण्य, प्रेमभावना आदि की वृद्धि होती है तथा शरीर की सार धातु वीर्य पुष्ट होती है वहीं इसके अभाव में अनुराग, मोह व आसक्ति जैसे दुर्गुण पनपते हैं।

आर्द्रता:- रस के गुण के कारण जल में आर्द्रता यानि गीला करने, तर करने व भिगोने का गुण विद्यमान है।

इस गुण के कारण ही वातावरण में सदैव नमी विद्यमान रहती है जिसके फलस्वरूप सम्पूर्ण वातावरण अग्नि के तप्त प्रभाव से बचा रह हरा-भरा व खुशहाल रहता है।

तात्विक रूप से इसी गुण के प्रभाव से मनुष्य की प्रकृति में ताज़गी, शीतलता यानि ठंडापन, खुशी, प्रसन्नता, सुख-तृप्ति का अनुभव, आनन्द, हर्ष, प्रेम, त्याग, करुणा इत्यादि भाव उत्पन्न होते हैं।

प्रवाह:- जल में प्रवाह का गुण विद्यमान है। इसी कारण इसके अंतर्गत द्रव पदार्थ निम्न तल की ओर अपने आप गमन करते हैं। यही कारण है कि यह धारा के रूप में निर्बाध प्रवाहित होता रहता है। इस प्रकार इस प्रवाह में जो भी इससे मिलता है यह उसी को अपने में समाहित कर संग ले चलता है। प्रवाह के इसी गुण के कारण रक्त बहता है, मनुष्य के आँसू बहते हैं, बाढ़ आती है, फोड़ों से मवाद आदि निकल कर बहता है। यहाँ याद रहे, इस प्रवाह को गति वायु देती है अर्थात संचालित वायु करती है। इसी कारण वायु में भी बहने यानि प्रवाहित होने का गुण सम्मिलित हो जाता है।

तात्विक दृष्टि से जहाँ जल का यह बहने का गुण अपने

पवित्र व अविच्छिन्न बहाव से मनुष्य के अन्दर से सारे पाप रूपी कल्मष धो डालता है वहीं नकारात्मक रूप से प्रवाह के नीचे की ओर होने के कारण मनुष्य को सन्मार्ग से विचलित कर कुमार्ग पर अग्रसर कर देता है। यानि मनुष्य सद्प्रवृत्तियों की अपेक्षा दुष्प्रवृत्तियों की ओर शीघ्र आकृष्ट होता है एवं परमार्थ की यानि सुमति की अपेक्षा स्वार्थ यानि कुमति की राह शीघ्रता से अपनाता जाता है। इस प्रकार ऐसा भ्रष्ट चरित्र मनुष्य आवारा हो अपने जीवन-लक्ष्य से भटक जाता है और अपने उद्‌गम स्थल को भूल जाता है और अंततः अधम वृत्ति धारण कर संसार सागर में डूब जाता है।

गुरुत्व:- पृथ्वी की भाँति जल में भी गुरुत्व यानि भारीपन का गुण विद्यमान है। इसी कारण जिस पदार्थ के साथ इसका मेल होता है यह उसके भार को बढ़ा देता है। इस बढ़े हुए भार को तोला भी जा सकता है। गुरुत्व के इसी गुण के कारण धरती पर वर्षा होती है और वर्षा का जल बिना इधर-उधर उड़े सीधे पृथ्वी पर आता है। यहाँ समझने की बात यह है कि जल जहाँ इसी गुण की प्रधानता के कारण नीचे की ओर बहता है वहीं वायु एवं अग्नि में इस गुण के अभाव से ही पृथ्वी का आकर्षण उन्हें अपनी ओर खींच नहीं पाता है। स्पष्ट है कि प्रवाह जल के गुरुत्व गुण के निमित्त है।

तात्विक दृष्टि से इसका अर्थ यह हुआ कि हमारी वृत्ति, प्रकृति, स्वभाव और प्रवृत्तियों (मन का किसी ओर होने वाला लगाव या झुकाव) का सकारात्मक व नकारात्मक प्रवाह जल के इसी गुण के कारण है। हम सांसारिक विषयों को

ग्रहण कर संसार के कार्यों में लीन होते हैं या परम अर्थ को ग्रहण कर निष्कामता और परोपकार में प्रवृत्त होते हैं यह जल के इसी गुण के अधीन है। कहने का आशय यह है कि जिस प्रकार जल वस्त्र को गीला कर उसका गुरुत्व बढ़ा देता है उसी प्रकार जल तत्व का यह गुण हमारे भाव विशेष को महत्त्वाकांक्षा का गुरुत्व दे, भावना और संकल्प के रूप में परिवर्तित कर देता है।

यहाँ विशेषतः- यह जानना अनिवार्य है कि अन्तःकरण के चारों विभागों में से एक मन जो कि द्रव्य है जल के इसी गुण को निरन्तर महत्त्व दिए जाने पर एक सरोवर का रूप धारण कर लेता है फिर ज्ञानेन्द्रियों एवं दृश्यमान जगत के संयोग से जब इस सरोवर में क्षणिक भाव बुलबुलों के रूप में उठते हैं तो महत्त्व दिए जाने पर वे चंचल वायु तत्व के संयोग से प्रबलता धारण कर काम-कामनाओं का रूप धार लेते हैं। यही इच्छाएं ही फिर इस मन-सरोवर में निरन्तर संकल्प-विकल्प की तरंगें उठाकर न केवल इस सरोवर को दूषित करती हैं अपितु अन्तर व्याप्त वायु को भी प्रदुष्ट (**अत्याधिक दोषपूर्ण, लोभ-स्वार्थ आदि के कारण नैतिक दृष्टि से पतित**) कर देती हैं। इस प्रकार शारीरिक, मानसिक व आत्मिक बिगड़ाव की स्थिति आरंभ हो जाती है। परिणामस्वरूप मन अत्यन्त दोषपूर्ण हो विषाक्त हो जाता है और मन के वशीभूत हुआ व्यक्ति लोभ और स्वार्थ आदि के कारण नैतिक दृष्टि से पतित हो भ्रष्ट हो जाता है। स्वेच्छाचारिता एवं मलिनता के कारण उसमें अपवित्रता आ जाती है। धीरे-धीरे कर्म, कुकर्म, अधर्म करने की यही स्थिति बढ़ते-बढ़ते जड़ता, मूढ़ता व हत् ज्ञान का रूप ले व्यक्ति को

विद्रोह और बगावत के कगार पर लाकर खड़ा कर देती है। आओ अब आगे जानें।

प्रभाः- प्रभा का अर्थ है दीप्ति, शोभा या चमक। जल की प्रभा अग्नि की उग्र प्रभा से भिन्न होती है। यह वह स्वाभाविक प्रभा है जो अधिक शीत में या स्नान के पश्चात चेहरे पर दमक के रूप में आती है, जो प्रातः हरी घास व पत्तियों पर ओस के रूप में विद्यमान होती है। यह प्रभा आँखों के साथ-साथ हृदय को भी शान्ति प्रदान करती है। ध्यान दो चन्द्रमा की चाँदनी में भी जल की यही प्रभा मनोरम लगती है और वर्षा उपरान्त समस्त वातावरण चमकता-दमकता प्रतीत होता है यानि यह भी जल के इसी गुण का प्रताप है। **तात्विक दृष्टि से** जल का यह गुण उज्ज्वलता एवं मनोरमता का प्रतीक है जिसके प्रभाव से मनुष्य में उस ज्ञान का प्रकाश उदय होता है जिससे विवेक उत्पन्न होता है और अज्ञानांधकार दूर होता है, तथा उत्तम गुणों का विकास होता है।

विशुद्धताः- जल में स्वाभाविक विशुद्धता यानि शुक्लता का गुण है जिस कारण ओले, बर्फ़ तथा समुद्र में उठने वाला फेन या झाग प्रकाश की किरणें पड़ने से सफेद, मक्खन या चाँदी जैसे रंग का मखमली प्रतीत होता है। विशुद्धता के इसी गुण के कारण ही जल में पारदर्शिता का गुण सदैव विद्यमान रहता है और प्रकाश की उपस्थिति में किसी भी वस्तु का प्रतिबिम्ब दर्पण के सदृश जल में भी स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। स्पष्ट है कि इसी गुण के प्रभाव से ही जल बाह्य या अन्तर्मन के सभी मलों को धो डालता है।

तात्विक दृष्टि से मनुष्य में इस गुण की प्रधानता से वह

उद्यमी हो गंभीर भाव चिन्तन करता है एवं मन को एकाग्र कर नाम-ध्यान द्वारा चित्तवृत्तियों का निरोध करता है। इस प्रकार भक्ति द्वारा कुदरती विज्ञान के शाश्वत अस्तित्व को स्वीकारते हुए मनुष्य परमात्मा की पवित्र खोज में रत हो जाता है और उसके लिए मोक्ष का योग उत्पन्न हो जाता है। स्पष्ट है कि जहाँ इस गुण की प्रधानता से ऐसा व्यक्ति शुद्ध आचारी व सद्गुणी बनता है वहीं इसके अभाव में जालसाजी, दाँवपेंच, ख़ुफ़ियागिरी, कूटचाल, जादू-टोना, विश्वासघात जैसे दुर्गुणों से ग्रस्त हो, व्यभिचारी हो जाता है।

शीतता:- शीतता जल का एकमात्र अद्वितीय गुण है अर्थात अन्य चार तत्वों यथा पृथ्वी, वायु, अग्नि तथा आकाश में यह गुण व्याप्त नहीं। इस गुण की अन्तिम परिणति बर्फ़ के रूप में होती है। जल की यह शीतलता जहाँ वायु को मृदुता व मधुरता प्रदान कर प्राणियों को ठंडक प्रदान करती है वहीं अग्नि की उष्णता को शान्त कर खाद्य-पदार्थों, वनस्पतियों एवं मानव देह को उत्तम रूप से रक्षित रखती है।

तात्विक दृष्टि से इस गुण के संतुलित रूप से विद्यमान रहने से जहाँ मनुष्यों में इच्छापूर्ति तथा विषय-विकारों की क्षुधा-तृप्ति से हृदय में क्षणिक सन्तोष उत्पन्न होता है व काम-क्रोध का आवेश और उपद्रव शान्त हो जाने से व्यक्ति आनन्दित व निश्चिंत हो जाता है वहीं इसके असंतुलन से मनुष्य स्फूर्तिहीन, उदासीन व जोश रहित हो निश्चेष्ट व आलसी हो जाता है। ऐसा पुरुषार्थ विहीन मनुष्य अन्दर और बाहर दोनों ओर से नपुंसक हो हतोत्साहित हो जाता है।

सम्मेलन:- अपने इस महान गुण के कारण जल पृथ्वी तत्व

के साथ मिलकर इस धरती को सींचकर जीवन्त यानि सजीव सा रूप प्रदान करता है। **इस सन्दर्भ में जल का यही गुण सिंचन के द्वारा धरती को सर्वप्रथम उपजाऊ बनाता है।** तत्पश्चात बीजों के अंकुरण के लिए आवश्यक नमी प्रदान कर जड़ों के विस्तार, वृद्धि एवं क्रमिक विकास में सहायक होता है। स्पष्ट है कि यह **सम्मेलन** आवश्यक मात्रा में समय अनुसार जितनी कुशलता से सम्पादित होता है उसी अनुपात में पौधा मिट्टी से आवश्यक पोषक तत्वों को ग्रहण कर फसल की पैदावार में समर्थ हो पाता है अन्यथा समुचित **सम्मेलन** के अभाव में सम्पूर्ण प्राणिजगत को पोषण प्रदान करने वाले पौधे अंकुरण की स्थिति में ही मर जाते हैं। यहाँ स्पष्ट कर दें कि समस्त प्राणिजगत को पोषण प्रदान करने से तात्पर्य प्रकाश संश्लेषण की उस क्रिया से है जिसके अन्तर्गत हरे रंग के सभी पौधे सूर्य के प्रकाश, मनुष्यों द्वारा छोड़ी गई कार्बन डाइऑक्साइड तथा जल के संयोग से न केवल अपना भोजन बनाते हैं अपितु स्वयं पर आश्रित परपोषी जीवों के भोजन एवं श्वसन के लिये आवश्यक ऑक्सीजन की व्यवस्था भी करते हैं। इस प्रकार परपोषी जीव (यानि मानव एवं जीव जन्तु) अपनी वृद्धि एवं विकास के लिये आवश्यक ऑक्सीजन तथा पोषक पदार्थों की आवश्यकता पूर्ति के लिये पौधों पर ही निर्भर रहते हैं और पौधे पृथ्वी एवं जल के समुचित सम्मिश्रण पर आश्रित रहते हैं।

तात्विक दृष्टि से इस गुण का संतुलन जहाँ मनुष्य को शारीरिक-मानसिक हृष्टता, पुष्टता, बलवर्धकता, पराक्रम व सम्पन्नता प्रदान करता है वहीं इसके अभाव में मनुष्य रसहीन

हो उदास व तेजरहित हो जाता है। ऐसा मनुष्य हृदयहीन, डरपोक व कठोर होता है तथा सदैव निराशाओं से घिर कृशकाय हो जाता है।

पवित्रता:- जल में पवित्रता यानि निर्मलता व साफ़ होने का गुण विद्यमान है परन्तु जल की पवित्रता अग्नि की पवित्रता से भिन्न है। अग्नि जहाँ केवल वायु, मिट्टी व धातु आदि को पवित्र बना देती है वहीं जल की पवित्रता वृक्ष, वनस्पति, अन्न, औषधि तथा समस्त प्रकृति आदि में फैले धूल कणों को एवं मलिनता को धो देती है। यहाँ यह बताना भी आवश्यक है कि भूमि भी जल प्रक्षालन से ही शुद्ध होती है। यौगिक क्रियाओं जैसे नेति, धौति, वस्ति इत्यादि द्वारा जल शरीर की समस्त नसों-नाड़ियों का शोधन कर देता है। यही नहीं जिस प्रकार वर्षा का जल विभिन्न स्थानों से मलों को बहाकर ले जाता है उसी प्रकार रक्त में मिला जल शरीर में उत्पन्न हुए दोषों को फेफड़ों में ले जाकर वायु के माध्यम से बाहर निकाल देता है। जिन दोषों का निवारण श्वास के माध्यम से नहीं होता वे शरीरस्थ मल-मूत्र व पसीने के रूप में बाहर निकल जाते हैं। इस प्रकार यह जीव के आवास स्थान अर्थात शरीर को पवित्र व स्वस्थ रखता है। वातावरण व भूमिगत दोषों से निर्विकार होने के लिये यह जल वाष्प बनकर बादलों के रूप में परिवर्तित हो वर्षा जल के रूप में पुनः निर्मल और पवित्र वृष्टि से इस धरा को आप्लावित कर देता है। इस प्रकार इस भूमण्डल को पुनः निर्मल, पावन व मनोहर बनाने में जल की पवित्रता का अपूर्व योगदान है।

तात्विक दृष्टि से जल की यह पवित्रता मनुष्य को शुचिता

यानि विमलता प्रदान कर शुद्ध अन्तःकरण वाला बनाती है। फलतः ऐसा व्यक्ति निष्कलंक पवित्रात्मा हो सद्गुणी, सच्चा, निश्छल, भोला, ईमानदार, निष्ठावान, शिष्ट एवं यथार्थ को जानने वाला ब्रह्मचारी होता है। इसके विपरीत पवित्रता के अभाव में मनुष्य दुर्भावना व वैमनस्य से ग्रस्त हो विकार युक्त यानि मलिन हो जाता है इस प्रकार आशंकाओं से घिरा वह बदकिस्मत नाना प्रकार की विपत्तियों में फँस दुर्भाग्य यानि अधःपतन को प्राप्त होता है।

अंत में सजनों जानो कि जीवन का निमित्त होने के कारण जल को रक्षक की संज्ञा दी जाती है। जल ही पृथ्वीवासियों के भोग का हेतु है अर्थात प्राणधारियों के प्राणधारण का निमित्त है। जहाँ सूर्य की रश्मियों के द्वारा वायु से वाष्प के रूप में आकृष्ट हो यह वृष्टि के रूप में संसार में हरे-भरे जीवन का संचार करता है वहीं शरीर में रस, रुधिर, वीर्य और रज आदि नाना रूपों में जल प्राण रक्षा एवं वंश वृद्धि का निमित्त बनता है। संभवतः जल के अभाव में कृत्रिम उपायों से यह असम्भव है। अंत हमारी सब सजनों से प्रार्थना है कि जल का विधिवत् प्रयोग करना सीखो व सबको सिखाओ।

जल की जीवन महत्ता को जानने के पश्चात् सजनों आगामी सप्ताह हम पृथ्वी तत्व के विषय में बात करेंगे।

दिनाँक 22 जनवरी 2017 का सबक़

पंचभूत अर्थात् पंचतत्व - 5
पृथ्वी

साडा है सजन राम, राम है कुल जहान

अर्थात् ईश्वर हमारा मित्र/प्रियतम सर्वव्यापक है, उसी को जानो, मानो व वैसे ही गुण अपनाओ।

शब्द है गुरु, शरीर नहीं है,

अर्थात् ज्ञानी को नहीं ज्ञान को अपनाओ और निमित्त में नहीं नित्य में श्रद्धा बढ़ाओ।

इस पर सुदृढ़ता से डटे रह, इस अटल सत्य पर स्थिर बने रहोः-

ओ३म् अमर है आत्मा, आत्मा में है परमात्मा

सजनों सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ कह रहा हैः-

आप दी लाईट जावे कुल संसार अन्दर,
लाईट आप दा है प्रकाश साजन।
आप दी लाईट सूरज चाँद देवे,
ते रोशनी लाईट दा है चमत्कार साजन।।

आप दी लाईट सप्तद्वीप गगनमण्डल,
लाईट आप दी सारा विस्तार साजन।
आप दी लाईट आद् जुगाद दिस्से,
लाईट आप दी अपर अपार साजन।।

ब्रह्मा जी कच्चे भाण्डे घड़े,
लाइट आप दी नाल भाण्डा खड़ खड़ करे।
लाईट आप दी करे कार विहार साजन,
लाईट आप दी नाल करे, ओ कार विहार साजन।।

आप दी लाईट जगे ओ आद अन्त साजन,
लाईट आप दी ओ आकाश पाताल साजन।
आप दी लाईट विशाल जगे मन मन्दिर,
ते लाईट आप दी करे ओ सिंगार साजन।।

आप दी लाईट संख चक्र गदा पद्यम् धारे,
लाईट आप दी है मालो माल साजन।
आप दी लाईट जगत निर्लेप दिस्से,
लाईट आप दी ओंकार इक ओंकार साजन।।

आप दी लाईट सर्व सर्वत्र दिस्से,
लाईट आप दी हर प्रकार साजन।
आप दी लाईट त्रिलोकी विच डिस्से चानणा,
लाईट आप दी बिन सूरजों चमत्कार साजन।।

वाह ! कितने ही सुन्दर शब्द है जो अपने आप में, चंद शब्दों में ही, सृष्टि रचना के सारे खेल को स्पष्टतया व्यक्त कर रहे हैं। इससे सजनों समझ में आता है कि भौतिक संरचना चाहे कुछ भी हो परन्तु, सृष्टि के हर आकार में, हर प्रकार में, हर रूप में, हर रंग में, रंगने वाला-रंगाने वाला, करने वाला-कराने वाला, कर्त्ता-अकर्त्ता एक ही है अर्थात् एक ही चेतन तत्व की शक्ति द्वारा यह समस्त चराचर जीव क्रियाशील है।

सजनों अपने अस्तित्व के इसी आधारभूत सत्य को स्वीकारते हुए, हमें भी पंच तत्वों से निर्मित, इस नश्वर चोले के माध्यम द्वारा, इसी जीवनकाल में अपने जीवन का प्रयोजन सिद्ध करने हेतु, निर्विकार व निष्काम भाव से, इस जगत में जीवनयापन करने की कला सीखनी है।

इसी विषय में सजनों पंच तत्वों की श्रृंखला में चल रहे हमारे अध्ययन के सन्दर्भ में आज हम अंतिम तत्व पृथ्वी के विषय में समझते हैं:-

साधारणतः पृथ्वी से तात्पर्य कार्यरूप उस स्थूल भूमि से है जिस पर हम लोग रहते हैं। यह सौर जगत का तीसरा ग्रह है। इसके ऊपरी ठोस भाग (मिट्‌टी, पत्थर आदि) पर ही हम सब लोग चलते-फिरते हैं। इसका आकार नारंगी के समान गोल है तथा यह सूर्य की आकर्षण शक्ति के कारण अपने अक्ष (धुरी) पर घूमते हुए सूर्य की परिक्रमा करती है। पृथ्वी के अपने अक्ष (धुरी) पर घूमने के कारण ही दिन और रात होते हैं तथा सूर्य की परिक्रमा करने के कारण ही इसमें ऋतु परिवर्तन होता है। पृथ्वी की परिधि अत्यंत विस्तृत है। अपने इसी गुण के फलस्वरूप यह प्रत्यक्ष रूप से कारण और कार्यात्मक रूप में सब मनुष्यों के दर्शन का विषय बनी हुई है। इस प्रकार सब स्थूल पदार्थों से महान है। यद्यपि इस स्थूल पृथ्वी में पाँच महाद्वीप और पाँच महा समुद्र हैं यानि इसका अधिकांश भाग जलमय है तथापि इसके गर्भ में यानि अन्दर बहुत अधिक जलता हुआ तरल पदार्थ है।

तात्विक दृष्टि से पृथ्वी पंच महाभूतों में क्रमशः पाँचवी व सर्व

आश्रयदायिनी मानी गई है। इस प्रकार समस्त योनियों के शरीरों की धरिणी और भोगों का आधार यह पृथ्वी ही है। गन्ध तन्मात्र (पंचभूत अर्थात् शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध का सूक्ष्म अमिश्र रूप) से उत्पन्न होने के कारण गंध जो नासिका का विषय है, इसका प्रधान गुण है और चार पूर्ववर्ती तत्वों के गुण यथा शब्द, स्पर्श, रूप और रस इसमें गौण रूप से विद्यमान रहते हैं।

मनुष्य, पशु-पक्षी आदि के शरीर तथा वृक्ष आदि पृथ्वी तत्व के हैं। शरीर और इन्द्रिय के सिवाय जितनी मिट्टी पत्थर आदि रूप पृथ्वी है वह सब पार्थिव विषय है। इसी कारण से स्थूल रूप में पृथ्वी तत्व को अनित्य तथा परमाणु रूप में नित्य कहा गया है।

सजनों चेतन तत्व (प्रकाश) के संयोजन से पृथ्वी तत्व ने जिन गुणों की प्रधानता का स्वामित्व ग्रहण किया है, आओ उनके विषय में अब जानें:-

1. स्थिरता:-- ब्रह्मांड में परस्पर आकर्षण शक्ति के कारण संगठित हुए परमाणुओं को स्थिरता यानि मज़बूती प्रदान करने का गुण पृथ्वी में विद्यमान है। इसी गुण के कारण ही जीव को स्थिर अवयव प्राप्त होते हैं। यदि ध्यान दें तो पेड़ों-पहाड़ों आदि में पृथ्वी तत्व के इसी गुण की प्रधानता होने के कारण ही स्थूलता, ठोसपन और स्थिरता यानि एक ही स्थान पर बने रहने का गुण विद्यमान होता है।

तात्विक रुप से (सकारात्मक)

इस गुण के सम रूप में विद्यमान होने के कारण ही मनुष्य के भावों व आचरण में स्थिरता व स्थायित्व आता है। वह सचेत, दृढ़-संकल्पी, स्थिरमति व स्वस्थचित्त होता है। उसमें मौन, शांति, अचलता, स्थिर भक्ति, धीरता, गंभीरता, अक्षुब्धता, अन्तर्दृढ़ता, प्रसन्नता, दृढ़-प्रतिज्ञता, चिर स्थायी तारुण्य जैसे महान गुण आते हैं।

नकारात्मक रूप में

पृथ्वी तत्व के इस गुण के असंतुलित होने के कारण ही मनुष्य में कठोर हृदयता, निष्ठुरता, हठीपन व अवरुद्धता आती है।

2. आकार:- परमाणुओं को संगठित कर कोई आकृति या स्वरूप प्रदान करने का गुण भी पृथ्वी तत्व में विद्यमान है। यही गुण सम्पूर्ण विश्व की 84 लाख योनियों, वनों-पर्वतों, नदी-समुद्रों, वनस्पतियों इत्यादि में अभिव्यक्त है और इसी गुण की विद्यमानता से वस्तु विशेष का आकार, डीलडौल या बनावट स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। इस गुण के कारण ही हम वस्तु विशेष में अन्तर कर पाते हैं। मुख्यतः यही विभेद ही दृश्यमान जगत के बन्धन का कारण है।

तात्विक रुप से

यह गुण मनुष्य के आन्तरिक विचारों एवं मनोवृत्तियों को आकार देने का कार्य करता है। यही आन्तरिक विचार तथा मनोवृत्तियाँ यदि सकारात्मक होती हैं तो मनुष्य की आत्मोन्नति का मार्ग खोल देती हैं और यदि कुत्सित और

नकारात्मक होती हैं तो विकारों के गर्त में धकेल देती हैं।

3. गुरुत्व:- आकार और स्थिरता का गुण विद्यमान होने के कारण गुरुत्व यानि भारीपन का गुण पृथ्वी में स्वतः ही आ जाता है। इस गुरुत्व के गुण ने ही पृथ्वी में अपार गुरुत्वाकर्षण बल उत्पन्न किया है। गुरुत्वाकर्षण अर्थात् वह आकर्षण जिससे भारी वस्तुएँ पृथ्वी पर गिरती हैं और जिसके परिणामस्वरूप थलचर प्राणी सहजता से गतिशील हो पाते हैं। यही नहीं विज्ञान जगत ने भी पृथ्वी के इस गुण का लाभ उठाकर असंख्य आविष्कार किए हैं जिनका लाभ आज मनुष्यों को विविध रूपों में प्राप्त है।

कहने का तात्पर्य यह है कि पृथ्वी में आकर्षण शक्ति है इसी से वह आकाशस्थ (निराधार) भारी पदार्थों को अपनी ओर खींचती है। इस प्रकार जो पदार्थ नीचे गिरते हैं वे पृथ्वी के आकर्षण से ही गिरते हैं। इस आकर्षण की विशेषता है कि यह उत्पन्न और नष्ट नहीं किया जा सकता और न कोई व्यवधान बीच में पड़ने से उसमें कोई रुकावट या अन्तर पड़ता है।

तात्विक रूप से

पृथ्वी में विद्यमान यह गुण मनुष्य के अन्दर महत्त्वता या बड़प्पन अर्थात् श्रेष्ठता, उत्तमता, उन्नत अवस्था, विशालता, गहनता, शक्तिमत्ता, गुरुता, बड़ाई, ऐश्वर्य, प्रचंडता, दर्प, अहंकार, घमंड व बड़े होने के भाव को प्रकट करता है। यह महत्त्वता और बड़प्पन सकारात्मक व नकारात्मक रूप से

क्रमशः परमार्थ और स्वार्थ को सिद्ध करने की ओर इंगित करता है।

4. कठोरता:- अग्नि व जल तत्व के सहयोग से पृथ्वी में कठोरता प्रदान करने का महान गुण आ जाता है। मिट्टी, जल एवं सूर्य के ताप (अग्नि) से बने पहाड़ इसके प्रत्यक्ष उदाहरण हैं। पृथ्वी की यह कठोरता उसके गुरुत्व को बनाए रखने के लिए परम आवश्यक है। यहाँ समझने की बात यह है कि पदार्थ विशेष की कठोरता या हल्कापन उस पदार्थ में पृथ्वी तत्व की क्रमशः अधिकता व न्यूनता पर निर्भर करता है।

तात्विक रूप से संतुलित रूप में व्याप्त यह गुण जहाँ मनुष्य को शारीरिक, मानसिक सुदृढ़ता व वज्रता प्रदान करता है वहीं नकारात्मक रूप से इसका असंतुलन मनुष्य को निर्दय, निष्ठुर, क्रूर व पाषाण हृदय बनाता है।

5. प्रच्छादन:- पृथ्वी में प्रच्छादन का महान गुण भी विद्यमान है। अपने इस अद्वितीय गुण के कारण ही उसने समस्त प्राणधारियों के शरीरों को आवृत्त कर न केवल उनकी अन्तः संचालित क्रियाओं को (चाहे वे शारीरिक हैं या मानसिक) रहस्य का विषय बना दिया है अपितु इस कवच के माध्यम से उस कुदरत ने हमें भरपूर सुरक्षा प्रदान करने का भी यत्न किया है। तात्विक दृष्टि से पृथ्वी के इसी गुण के कारण ही प्रकृति का हर स्थूल रहस्य वैज्ञानिकों की सीमित दृष्टि से परे अनुसंधान का गोपनीय तथ्य बना हुआ है।

6. शुष्कता:- यह पृथ्वी का स्वाभाविक गुण है। गीली होने पर

भी पृथ्वी-वायु, अग्नि और धूप के संयोग से पुनः अपने वास्तविक रूप में आ जाती है। बढ़ी हुई शुष्कता रुक्षता का रूप ले लेती है।

तात्विक दृष्टि से सकारात्मक रूप में पृथ्वी का यह गुण मनुष्य को उदासीन, विरक्त, निर्मोही और निरासक्त बनाता है तथा नकारात्मक रूप में प्रेम व स्नेह विहीन कर्कश, अशिष्ट व नीरस बनाता है। इस प्रकार यह शुष्कता जहाँ एक ओर चित्त को विकार रहित बनाती है वहीं दूसरी ओर मलिन भी बनाती है।

7. संकोचनः- संकोचन अर्थात् सिकुड़न। रुक्षता के साथ-साथ पृथ्वी में सिकुड़न का गुण भी आ जाता है। पृथ्वी में यह गुण क्रमशः अग्नि द्वारा पानी के शोषण से आता है। यही कारण है युवा अवस्था में जो शरीर पूर्ण बलिष्ठ एवं कांतिवान नज़र आता है वही वृद्धावस्था आने पर सिकुड़ जाता है। तात्विक दृष्टिकोण से पृथ्वी के इसी गुण के कारण मनुष्य स्थूलता से क्रमशः सूक्ष्मता की ओर अग्रसर होता है।

8. क्षमाः- पृथ्वी में अपार सहनशीलता होने के कारण क्षमा का गुण भी विद्यमान है। इसी कारण यह समस्त भार, कष्ट, क्लेश सहते हुए भी किसी के प्रतिकार और दण्ड की अभिलाषा नहीं करती। इस प्रकार असंख्य जीवों के आघातों और भोगों को यह सहज ही सह लेती है। तात्विक दृष्टि से पृथ्वी के इसी गुण की प्रधानता के कारण मनुष्य में धैर्य, क्षमा, धीरता, विशाल हृदयता एवं उदारता की निरतिशय क्षमता आ जाती है।

अंतत:- अपने गर्भ में सम्मोहे हुए असंख्य रत्नों व खनिज पदार्थों की धरोहर से जहाँ पृथ्वी इस भूमण्डल को सुख-सम्पदा व समृद्धि प्रदान करती है वहीं गर्भ में स्थित गैसों के संयोग, दबाव व परिवर्तन से यह भूकंप, ज्वालामुखी व ज्वार-भाटा आदि द्वारा विनाश करने की सामर्थ्य भी रखती है। यहाँ यह स्पष्ट करना अनिवार्य है कि मात्र पृथ्वी तत्व को इसका श्रेय नहीं दिया जा सकता अपितु परस्पर अन्य तीन तत्वों के यथा जल, वायु एवं अग्नि के संयोजन से ही यह स्थिति उत्पन्न होती है। पृथ्वी का यह गुण उसके अपने अस्तित्व की सुरक्षा के लिए परम आवश्यक है। तात्विक दृष्टि से पृथ्वी का यह धर्म जहाँ विषय विकारों के कारण शरीर में पनपी गंदगी और ज़रम जहरीलों को रोग के रूप में निष्कासित करने में सहायक होता है वहीं शरीर को आरोग्यता प्रदान कर आयु लाभ भी पहुँचाता है।

यही नहीं अपनी उर्वरा शक्ति द्वारा अन्न, औषधि, वनस्पति, काष्ठ, फल और फूल आदि द्वारा भूमण्डलीय प्राणियों की पोषणा में इसकी भूमिका निःसन्देह स्वीकार्य है परन्तु यहाँ यह स्पष्टता लेनी भी आवश्यक है कि यह भी सूर्य की प्रकाश रश्मियों व अन्य तीन तत्वों के संयोजन का संयुक्त परिणाम है। यही धरती के फलने-फूलने और हरे-भरे होकर सबको संतृप्त करने का रहस्य है।

संक्षेपत:- उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु व आकाश का अपना-अपना विशिष्ट स्थूल व सूक्ष्म रूप है। इन स्थूल व सूक्ष्म रूपों में व्यवहार करते हुए

प्रत्येक का अपना-अपना धर्म है जैसे पृथ्वी का अणुओं को स्थिरता देना, जल का स्नेह प्रदान करना, अग्नि का उष्णता यानि ऊर्जा देना, वायु का गतिशील बनाना तथा आकाश का अवकाश यानि स्थान देना। इस प्रकार सृष्टि रचना में सभी तत्वों की भूमिका अनिवार्य है। पाँचों में से किसी एक के भी अभाव की कल्पना निराधार है। निस्संदेह इन पाँचों तत्वों की सब अवस्थाओं को समझ कर तथा इनका वास्तविक स्वरूप जान कर यह अनुमान लगाया जा सकता है कि चाहे इन पंच तत्वों द्वारा बना नश्वर शरीर ही मोक्ष का सर्वप्रथम द्वार है परन्तु इस विवेचना से यह भी स्पष्ट है कि यह शरीर ही मनुष्य के बन्धन, राग और भोग का हेतु भी बना हुआ है। अतः हमेशा याद रखो कि:-

शरीर तां उपजना बिनसना वे सजनों,
सजनों वे यश कीर्ति नाल करो प्यार।।

इस सन्दर्भ में वैज्ञानिक दृष्टिकोण से इन पंच तत्वों की उपयोगिता को स्वीकारते हुए हमें सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ के अनुसार सर्वोत्कृष्ट ढंग से इसके प्रयोग की कला को समझना होगा व उसी अनुसार जीवनयापन करना होगा। तभी हम देह की भोग आसक्ति से निवृत्त हो विरक्ति द्वारा इसके प्रयोजन को सार्थक कर इन पंच तत्वों से विमुक्त हो आवागमन के चक्र से आज़ाद हो पाएंगे। इसीलिए तो सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ इस विषय में हमें संदेश दे रहा है:-

किश्ती तैयार किश्ती तैयार।
महाबीर दियां दासियां, चढ़ो ते उतरों समुन्द्रों पार।

पंज तत् घर अपने जाओ जीव विचारे तो उतरम भार उतरम भार।
महाबीर दियां दासियां चढ़ो ते उतरों समुन्द्रो पार।।

शारीरिक संरचना के हेतु पाँच तत्वों यथा आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी के बारे में समझने के पश्चात् सजनों हम सबके लिए बनता है कि हम खुद आध्यात्मिक विषयों अर्थात् आत्मा-परमात्मा, संसार आदि विषयों की ज्ञान प्राप्ति करें व अपने बच्चों को उस ज्ञान से परिचित कराना सुनिश्चित करें ताकि हम और वे जीवन की यथार्थता को गहराई से जानते हुए, भ्रम रहित होकर, वास्तविक रूप से जीवन जीने के योग्य बनें। जानो यह अपने आप में सात्विक संस्कारों से सम्पन्न होने की बात है। अगले सप्ताह हम इसी महत्त्वपूर्ण विषय पर बात करेंगे।

दिनाँक 29 जनवरी 2017 का सबक़

साडा है सजन राम, राम है कुल जहान

अर्थात् ईश्वर हमारा मित्र/प्रियतम सर्वव्यापक है, उसी को जानो, मानो व वैसे ही गुण अपनाओ।

शब्द है गुरु, शरीर नहीं है,

अर्थात् ज्ञानी को नहीं ज्ञान को अपनाओ और निमित्त में नहीं नित्य में श्रद्धा बढ़ाओ।

इस पर सुदृढ़ता से डटे रह, इस अटल सत्य पर स्थिर बने रहोः-

ओ३म् अमर है आत्मा, आत्मा में है परमात्मा

सजनों ये तीनों ही अपनाने योग्य सत्य, अपने आप में प्रत्येक इन्सान के अन्दर, इन्सानियत का मादा जाग्रत करने में पूर्णतया समर्थ है। अतः इन को अपनाओ और आत्मीयता के भाव से युक्त होकर अपना जीवन सफ़ल बनाओ।

सजनों अभी तक हमने अपनी शारीरिक संरचना के मूल घटकों यथा आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी इन पाँच तत्वों के विषय में जाना। नियम से आज गत सप्ताह पढ़ाए गए सबकों के विषय में पुनरावृत्ति द्वारा आत्मनिरीक्षण करने का दिवस है। चूँकि सजनों पंचभूतों के संदर्भ में अब तक जो भी पढ़ा-समझा व जाना उस विषय में आत्मनिरीक्षण करना असंभव है, इसलिए आओ गत सप्ताहों में जो भी तत्त्वज्ञान प्राप्त किया, उसको सार रूप में दूसरी तरह से समझते हैं। इस हेतु सजनों सर्वप्रथम हमें दिलचस्पी में आकर यह

समझना होगा कि समस्त सृष्टि रचना के हेतु, सभी तत्त्व, जहाँ से उत्पन्न होते हैं और भिन्न-भिन्न प्रकार के रूप, रंग, रेखा में जिस कुदरती महागर्भ से दृश्यमान होते हैं, उसे सृष्टि के पालन-पोषण करने की शक्ति शंख, चक्र, गदा, पद्मधारी, विष्णु भगवान के नाम से जाना जाता है। अतः जो भी जीव इस ईश्वरीय शक्ति के अनुरूप, कुदरत प्रदत्त अंतर्निहित स्वाभाविक गुणों पर स्थिरता से बना रहता है, वह अपने जीवन को सार्थक कर पाता है।

यह अपने आप में प्रत्येक ईश्वरीय रचना का, उस कारियों के कारीगर परमेश्वर के प्रभुत्व में बने रह, अपने शरीर सहित अन्दरूनी व बैहरूनी वृत्तियों को विशुद्ध रखते हुए, जगत में विशेष रूप से विचरते हुए भी, उसके विकृत स्वभावों से निर्लेप रहने का पराक्रम दिखाने की बात होती है। अतैव इस दुर्लभ व अनमोल मानव रूप प्राप्त होने के पश्चात् हर मानव का कर्त्तव्य बनता है कि वह बाल्यावस्था से ही तत्त्वज्ञान प्राप्त करने के लिए सदा तत्पर रहे व यथार्थता में सजनता से भरपूर निष्कलंक जीवन जीने में सामर्थ्यवान बनें।

इस संदर्भ में जानो कि किसी भी कारणवश, सांसारिक आकर्षण शक्ति का प्रभुत्व स्वीकारते हुए, इन दिव्य स्वभावों के विपरीत कोई भी अमानवीय चलन अपनाना, अपने मन-मस्तिष्क में विकृतियाँ भरने की बात होती है यानि अपनी वास्तविकता से भटकने की बात होती है। इसीलिए तो सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ हमें इसके प्रति सावधान करते हुए व अपने जीवन के प्रधान लक्ष्य से परिचित कराते हुए

कह रहा है:-

कुदरत ने इन्सान बनाया,
ओहदे विच इक जीव बना के।
आत्मपद दी खोज करो,
अपनी इन्सानी दिखा के।
हाँ अपनी इन्सानी दिखा के
वाह अपनी इन्सानी दिखा के।।

इंसानियत में आ अपना जीवन सफ़ल बनाने के लिए सजनों आओ जानें कि वास्तव में तत्त्वज्ञान क्या है?

तत्त्व का अर्थ है वास्तविक स्थिति। हर वस्तु की वास्तविकता ही उसकी यथार्थता या असलियत की प्रतीक होती है। जगत के मूल कारण 25 तत्त्व यथा पुरूष, प्रकृति, बुद्ध, अहंकार, चक्षु, कर्ण, नासिका, जिह्वा, त्वक्, वाक्, पाणि, पायु, पाद, उपस्थ, मन, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध, पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश माने गए हैं। सभी मानेंगे कि इन सभी तत्वों का सारांश परमतत्त्व परमेश्वर ही है।

सजनों इन्हीं में से पाँच प्रधान तत्त्व जिनसे संसार की सृष्टि हुई है वह आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी हैं। यद्यपि सजनों यही पाँच तत्त्व ही समस्त प्राणियों के सब अंगों के समूह रूप शरीर का ढाँचा बनाते हैं तथापि परमेश्वर ही इन पंचभूतों के शरीर को बनाने का हेतु है क्योंकि वह परमात्मा ही जीवात्मा के रूप में इस शरीर को धारण करते हैं।

सजनों जिस तरह इस भौतिक शरीर में शरीर का भाव या

धर्म सदा निहित रहता है इसी तरह धीरे-धीरे शरीर का क्षीण हो, मृत्यु को प्राप्त होना भी सुनिश्चित होता है। अतः प्रत्येक जीव के लिए इस धारणा का बोध रखते हुए उस परमतत्व से निरन्तर जुड़े रहना, अपने आप में शरीर की रक्षा व सौन्दर्यवर्धन सुनिश्चित करने हेतु, परम आवश्यक होता है। कहने का आशय यह है कि उसके लिए इन पाँच तत्वों के शरीर की नश्वरता का बोध रखते हुए, अपने प्राकृतिक स्वरूप में यथा बने रहना आवश्यक होता है ताकि वह किसी प्रकार से भी इस सांसारिक मोह बंधन में उलझ, विषय-विकार यथा काम, क्रोध, लोभ, मोह व अहंकार आदि को धार कर, जन्म-मरण के चक्रव्यूह में न फँस जाएं यानि अपने सच्चे घर का रास्ता न भूल जाएं। इस संदर्भ में सजनों सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया हैः-

शरीर तां उपजना बिनसना वे सजनों,
सजनों वे यश कीर्ति नाल करो प्यार।
दिन चैन राती नींदर न होवे एहो है
साडा सजनो वे, वे सिंगार वे।।
यश ते कीर्ति विच कोई फ़रक न पवे,
ओ सजन अपना नाम रौशन करे।
बोलो सतनाम श्री वाहे गुरु,
जो बोले सो निहाल, सत श्री अकाल।।

सजनों यह परम पवित्र चरित्रवान व यशस्वी बनने की बात है। ऐसा करने पर ही वह देहधारी अपने शरीर का पालन-पोषण उचित ढंग से करते हुए, अपने शरीर के अंगों की

बनावट तथा उनके कार्यों को भली-भांति जाँच सकता है व सत्-असत् का विचार कर मनुष्यता अनुरूप अर्थात् हर निर्णय विचारपूर्वक लेता हुआ, एक विवेकी व बुद्धिमान इंसान की तरह जीवनयापन कर सकता है। जानो कि विवेक ही वह शक्ति है जिससे भले-बुरे का ठीक और स्पष्ट ज्ञान यानि सत्यज्ञान प्राप्त होता है और इसी कुदरती शक्ति के प्रयोग द्वारा प्राप्त होने वाला सत्यज्ञान ही इंसान को तत्त्वज्ञानी बनाता है।

याद रखो तत्त्वज्ञानी के हृदय में ही प्राणियों की चेतन वृत्ति के कारण-स्वरूप पदार्थ अर्थात् ब्रह्मतत्त्व का साक्षात्कार होता है व 'विचार ईश्वर है अपना आप' का नित्य भाव जीवित रहता है जिससे मन में संतोष उत्पन्न होता है व ऐसा संतोषी प्राणी निर्बाध आत्मानन्द अर्थात् आत्मा में लीन होने का सुख प्राप्त करता है। सजनों जब ऐसे न्यायशील इंसान को प्रकृति और पुरुष की विभिन्नता का ज्ञान हो जाता है तो वह आत्मबोधी अर्थात् बल, बुद्धि, विद्या से सम्पन्न, मनुष्य रूप में इस जगत में जो भी करता है, वह अपने आप को अकर्त्ता तथा असंग चेतन पदार्थ मानकर अर्थात् प्रकृति से भिन्न तथा उसका पूरक अंग मानकर, परमेश्वर के प्रतिनिधि के रूप में ही करता है।

यह अपने आप में माया से निर्लिप्त रह व परमात्म स्वरूप में स्थित रह वैसा ही पुरुषार्थ कर पाने के योग्य बनने की यानि पुरुषों में श्रेष्ठ बनने की मंगलकारी बात होती है। ऐसा होने पर जो धीरता व वीरता का भाव हृदय में जाग्रत होता है

उसके प्रयोग द्वारा वह सामर्थ्यवान शत्रु-मित्र आदि के भाव से सर्वदा उदासीन रहते हुए, इस मिथ्या जगत में सजनता से भरपूर निष्पाप जीवन जीता है और पुरुषोत्तम कहलाता है। सजनों यह अपने आप में अद्‌भुत घटना होती है क्योंकि ब्रह्म का प्रतिरूप जीव आध्यात्मिक ज्ञान से परिपूर्ण हो आत्मस्वरूप में स्थिर हो जाता है।

अन्य शब्दों में सदा अपने वास्तविक स्वरूप में स्थित रहने वाला ऐसा पराक्रमी मानव ही, जिस उद्देश्य पूर्त्ति हेतु परमेश्वर ने उसे मानव बनाकर इस सृष्टि में भेजा होता है, उसे सिद्ध कर अमर नाम कहाता है और परमपद प्राप्त कर लेता है। इस तरह वह प्रकृति को जगत का उपादान कारण मानते हुए, अपने मूल स्वरूप को कदाचित् विकृत नहीं होने देता यानि निर्विकारता से प्राकृतिक स्वभावों पर अपना अधिकार रखते हुए, आत्मिक स्वरूप और शारीरिक प्रकृति में संधि स्थापित रख, सत्य-धर्म की राह पर सीधा चलता है। तभी तो वह प्रकृतिवाद में उलझ द्वि-द्वेष व वैर-विरोध अपनाने के स्थान पर, ब्रह्म भाव पर स्थित रह, इस रूपात्मक जगत का निष्काम भाव से विकास कर पाता है।

इस तरह अपनी स्वाभाविक अवस्था में बने रहने से उस तत्त्वज्ञानी के होश हवास सदा ठिकाने रहते हैं और वह यथार्थता से किसी विध् भी भ्रमित नहीं होता। तभी तो उसके लिए सच्चाई-धर्म के निष्काम रास्ते पर समभाव से बने रह, समदृष्टि अनुरूप सजन-व्यवहार द्वारा, परोपकार करना सहज होता है। यह अपने आप में मन पर अधिकार रखते

हुए सांसारिक विषयों का परित्याग और पारमार्थिक पदार्थों को ग्रहण करने की शुभ बात होती है जिसके परिणामस्वरूप उसे सब तरफ से प्रतिष्ठा व सम्मान ही प्राप्त होता है।

सजनों हम सब भी ऐसे उत्तम इंसान बन, समभाव-समदृष्टि के सबक़ अनुसार सजनता पूर्वक कर्मठता से जीवन अर्थ सिद्ध करने के निमित्त सक्षमता प्राप्त कर पाएं उसके लिए हमें अपने मन की मर्म जानने के योग्य बनना होगा ताकि हमारे मन में कोई निंदार्थ सोच न पनपे और हम अपने मन-वचन-कर्म द्वारा परम अर्थ की सिद्धि हेतु सतत् रूप से आगे बढ़ते रहें। इस प्रकार हम तत् अर्थात् परब्रह्म का सत् बोध कर तेजस्वी व ओजस्वी इंसान की तरह, बिन औखयाईयों, बिन खेचलों अपने जीवन का परम प्रयोजन सिद्ध कर सकेंगे।

सजनों इसी प्रयोजन सिद्धि हेतु सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ हमारे जीवन के प्रधान लक्ष्य की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट करते हुए क्या कह रहा है, ध्यान से सुनोः-

श्री राम हरे, सुखधाम हरे,
निष्काम हरे, विश्राम हरे।
ब्रह्मज्ञान हरे, परमधाम हरे,
ओ३म् हरी ओ३म्, ओ३म् ओ३म् हरे।।

सत् चित्त आनन्द स्वरूप मेरा,
ओजी सत् हरे सत् सत् हरे।
ओ३म् हरी ओ३म्, ओ३म् ओ३म् हरे,

ओ३म् हरी ओ३म्, ओ३म् ओ३म् हरे।।

राम कृष्ण गोपाल स्वरूप मेरा,
ओजी राम हरे, राम राम हरे।
ओ३म् हरी ओ३म्, ओ३म् ओ३म् हरे,
ओ३म् हरी ओ३म्, ओ३म् ओ३म् हरे।।

ओ३म् तत्त् सत् ब्रह्म स्वरूप मेरा,
ओजी ओ३म् हरे ओ३म् ओ३म् हरे।
ओ३म् हरी ओ३म्, ओ३म् ओ३म् हरे,
ओ३म् हरी ओ३म्, ओ३म् ओ३म् हरे।।

सब घट वासी सर्व निवासी स्वरूप मेरा,
ओजी सब हरे सब सब हरे।
ओ३म् हरी ओ३म्, ओ३म् ओ३म् हरे,
ओ३म् हरी ओ३म्, ओ३म् ओ३म् हरे।।

आत्मा सर्व परमात्मा स्वरूप मेरा,
ओजी आत्मा हरे आत्मा आत्मा हरे।
ओ३म् हरी ओ३म् ओ३म् ओ३म् हरे,
ओ३म् हरी ओ३म्, ओ३म् ओ३म् हरे।।

सजनों जानते हो, इस अवस्था में स्थित हो जाने पर ईश्वर जीव को क्या कह उठते हैं वह कहते हैं:-

आ, ब्रह्म नाल ब्रह्म हो जा, आ, ब्रह्म नाल ब्रह्म हो जा।।

इस तरह फिर एक निगाह एक दृष्टि द्वारा उस सजन को

सर्व-सर्वत्र ब्रह्म ही ब्रह्म निगाह आता है और वह सजन एक दर्शन में स्थित हो अपने आप में परिपूर्ण हो जाता है।

सजनों यह अपने आप में इन्द्रियों के पाँच विषयों यथा शब्द, स्पर्श, रूप, रस एवं गंध में अज्ञानियों की तरह फँस, विषयी बनने के स्थान पर, एक ईमानदार व आत्मज्ञानी इंसान की तरह उनका हितकर ढंग से प्रयोग करने की बात है।

उपरोक्त विवेचना से सजनों स्पष्ट होता है कि जीव, ब्रह्म का प्रतिरूप, वास्तव में अपने आप में आध्यात्मिक ज्ञान से परिपूर्ण होता है। परन्तु मनुष्य रूप में उचित पालना के अभाव में परमतत्व व कुदरत की रमज़ न जान पाने के कारण, वह निज यथार्थ के प्रति अबोध रह जाता है। परिणामस्वरूप ऐसा मानव आध्यात्मिक रूप से रोगी हो जाता है और उसके मन में अपूर्त्ति का भाव जाग्रत हो जाता है।

यह अपूर्त्ति उसके मन में नाना प्रकार की इच्छाओं/कामनाओं को जन्म देती है और वह आजीवन उनकी पूर्त्ति में ही उलझ कर रह जाता है। यह एक जीव के सशक्त होने के बावजूद भी, इंसान रूप में गरीबी व गुलामी का विकारयुक्त जीवन जीने की बात होती है। जान लो कि ऐसे मानव के मन में संतोष का अभाव होने के कारण परमार्थ के प्रति रूचि ही नहीं उत्पन्न होती। तभी तो वह स्वार्थपरता का सिद्धान्त अपना, शारीरिक और मानसिक रूप से आधि-व्याधि ग्रस्त हो जरजरी भूत बन जाता है और तीनों तापों यथा आध्यात्मिक, आधिभौतिक व आधिदैविक से संतप्त हो अधमता को प्राप्त होता है।

इस दुःखमय अवस्था से उबारने हेतु सजनों फिर आती है युवावस्था की भक्ति यानि समभाव-समदृष्टि की युक्ति जिसके अनुशीलन द्वारा मानव संतोष-धैर्य अपनाकर, सच्चाई-धर्म के निष्काम रास्ते पर अग्रसर हो जाता है और तीनों तापों का रोग मिट जाता है। परिणामस्वरूप मानव जीवन की यथार्थता को समझ यथार्थ रूप से जीवन जीते हुए अपने जीवन का परम लक्ष्य प्राप्त करने में सफ़ल हो जाता है।

निःसंदेह यह जानने के पश्चात् सजनों आप सबके अन्दर तीनों ताप का रोग क्या है और उस रोग पर फ़तह कैसे पाई जा सकती है, यह जानने की उत्सुकता जाग्रत हो रही होगी। तो आपकी जानकारी के लिए इस विषय में हम आगामी सप्ताह बातचीत करेंगे।

दिनाँक 5 फरवरी 2017 का सबक़

ताप

साडा है सजन राम, राम है कुल जहान
अर्थात् ईश्वर हमारा मित्र/प्रियतम सर्वव्यापक है, उसी को जानो, मानो व वैसे ही गुण अपनाओ।

शब्द है गुरु, शरीर नहीं है,
अर्थात् ज्ञानी को नहीं ज्ञान को अपनाओ और निमित्त में नहीं नित्य में श्रद्धा बढ़ाओ।

इस पर सुदृढ़ता से डटे रह, इस अटल सत्य पर स्थिर बने रहोः-
ओ३म् अमर है आत्मा, आत्मा में है परमात्मा

सजनों गत सप्ताह हमने तत्त्वज्ञान के विषय में जाना जिसके द्वारा हमें ज्ञात हुआ कि आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्ति द्वारा, अपनी निज सत्ता के मूल स्रोत अर्थात् आत्मतत्त्व का यथार्थ जानने वाला मानव ही वास्तव में परिपूर्ण मनुष्य होता है। वह ही समभाव-समदृष्टि की युक्ति अनुसार इस जगत में विचरते समय सर्वव्यापक ब्रह्म सत्ता का यथार्थ अनुभव करते हुए, शब्द ब्रह्म विचारों पर अटलता से खड़ा रह पाता है और परिपूर्ण संतोष को धारण कर, धीरता से, सच्चाई-धर्म के निष्काम मार्ग पर अग्रसर हो पाता है। ऐसा सचेतन मानव ही एकता, एक अवस्था यानि नित् युवावस्था में बने रह, ताकतवर होकर, परस्पर सजन भाव का वर्त-वर्ताव कर पाता है और सर्वहितकारिता की भावना से ओत-प्रोत हो

परोपकार कमाने का विशेष पुरुषार्थ दिखाने में कामयाब हो पाता है। इस परिपूर्ण सम अवस्था में सजनों उस मानव को जीवन का पूर्ण आनन्द प्राप्त हो जाता है और उसे कोई कष्ट-क्लेश, दुःख यानि ताप-संताप नहीं सताता।

इस संदर्भ में सजनों विडम्बना की बात यह है कि यह सब जानने-समझने के बावजूद, कलियुग में कोई विरला ही तत्त्वज्ञान प्राप्ति में रूचि रखता है और यही कारण है कि आध्यात्मिकता के अभाव में उस मानव को अपने दिव्य आत्मस्वरूप की विस्मृति हो जाती है। इस प्रकार वह अपनी यथार्थ हस्ती के प्रति, जीवन धारण करने के प्रयोजन के प्रति व जीवनयापन के समुचित ज्ञान के प्रति अनभिज्ञ हो जाता है और उसका झुकाव सहज ही आध्यात्मिकता की जगह सांसारिकता की ओर हो जाता है। परिणामस्वरूप उस अचेतन मानव के मन में असंतोष व अधीरता का भाव घर कर जाता है और उसके लिए अपने समस्त कर्म-कर्त्तव्य सत्यता व धर्मज्ञता से निभा पाना असंभव हो जाता है। सजनों यहीं से आरम्भ होता है मानव जीवन में दुःखों का, कष्ट-क्लेशों का, विपत्तियों का, आधि-व्याधि का व इन्हें यदि एक शब्द में कहें तो तीनों तापों का। इसीलिए तो सजनों सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया है:- इक नूं भैणां भुलियां, कर्मां कष्ट दिखाए हज़ार।

सजनों वर्तमान युग में संसार का हर मानव तापग्रस्त है और नाना प्रकार की पीड़ा भुगत रहा है। इन तीनों तापों से छुटकारा पाने के लिए ही वह संतप्त प्राणी सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में सजन श्री महाबीर जी के आगे प्रार्थना कर रहा है:-

तीनों तापों ने आन सताया ए,
हुन रक्षा करो महाबीर जी रक्षा करो।
हुन रक्षा करो महाबीर जी रक्षा करो।

सजनों तीनों तापों से छुटकारा पाने के लिए आवश्यक है कि पहले हम जानें कि ये तीनों ताप क्या हैं? आओ आज इसी विषय में जानते हैंः-

सजनों इस संदर्भ में ताप शब्द का शाब्दिक अर्थ है हृदय का दुःख, मानसिक कष्ट-क्लेश, बुखार, पीड़ा, अग्न आदि। इसलिए सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया हैः-

तीनों ताप देख के बली दुनियां दे विच आ गये,
दुखड़े सब दे दूर होसन,
त्रिलोकी नूं बली जी हर्षा देसन
महाबीर जी ने तीनों ताप मिटाए,
सब दे क्लेश हटाए, महाबीर जी ने तीनों ताप मिटाए
तीनों तापों का टैम्परेचर घटता-बढ़ता रहता है।

सजनों यह तीनों ताप जड़तत्व का स्वाभाविक गुण हैं तथा चित्त की चंचलता व अस्थिरता के परिचायक हैं। इसी से राग-द्वेष, काम, क्रोध, आशा-तृष्णा, मोह-माया, वाशना व व्याधि यानि रोग, विपत्ति, आवेश, रोष, ग्लानि, जलन, झंझट-बखेड़ा, लड़ाई-झगड़ा, खेद, कष्ट होता है व स्वभावों का टेम्परेचर घटता-बढ़ता है। परिणामतः संकल्प का झुखना और इन्सानों का रोना आरम्भ हो जाता है। सजनों इनका लक्षण पीड़ा व संताप है तथा यह साधना में विघ्नकारी सिद्ध होते हैं।

जानो कि सृष्टि के तीन अवान्तर यानि अंतवर्त्ती भेद हैं-- अध्यात्म, अधिभूत और अधिदैव।

अध्यात्म:- जो सीधे अपने साथ सम्बन्ध रखने वाले हैं, जैसे बुद्दि, अहंकार, मन, इन्द्रियाँ, शरीर और आत्मा आदि।

अधिभूत:- जो अन्य प्राणियों की भिन्न-भिन्न सृष्टि से सम्बन्ध रखने वाले हैं, जैसे गौ, अश्व, पशु-पक्षी आदि।

अधिदैव:- जो दिव्य शक्तियों की सृष्टि से संबंध रखने वाले हैं जैसे पृथ्वी, सूर्य, देवता आदि।

अध्यात्म, अधिभूत और अधिदैव सृष्टि के संबंध से तीन ही प्रकार का सुख-दुःख होता है यथा आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक। सबकी जानकारी हेतु आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक दुःख को ही क्रमशः आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक ताप कहते हैं।

आध्यात्मिक:- आध्यात्मिक सुख-दुःख सजनों दो प्रकार का है- शारीरिक और मानसिक। शरीर का बलवान, फुर्तीला और स्वस्थ होना शारीरिक सुख है, शरीर का दुर्बल, अस्वस्थ और रोगी होना शारीरिक दुःख है। इसी प्रकार शुभ संकल्प, शांति आदि मानसिक सुख है। काम, क्रोध, लोभ, मोह, विषाद, ईर्ष्या, तृष्णा, शोक, राग, अपमान, द्वेष आदि मानसिक दुःख है।

आधिभौतिक:- आधिभौतिक सुख वह हैं जो स्थावर व जंगम में दूसरे प्राणियों से मिलता है जैसे गौ आदि से दूध-घृत,

पेड़-पौधों से अनाज व सब्जियाँ, घोड़े आदि से सवारी का। आधिभौतिक दुःख वह हैं जो पशु, पक्षी, मनुष्य, पिशाच, मच्छर, सर्प, बिच्छु आदि प्राणियों के काटने से प्राप्त होता है।

आधिदैविक:- आधिदैविक सुख-प्रकाश, वृष्टि आदि से होता है और आधिदैविक दुःख देवताओं यानि प्राकृतिक शक्तियों के द्वारा पहुचँता है जैसे आँधी, अतिवृष्टि, अति शीत, अति उष्णता, वज्रपात यानि सहसा कोई संकट आने व बिजली आदि के गिरने से उत्पन्न होता है।

उपरोक्त विवेचना से सजनों स्पष्ट होता है कि:-

आध्यात्मिक ताप के अंतर्गत रोग, व्याधि यानि बीमारी, विपत्ति, आफ़त, झंझट-बखेड़ा आदि शारीरिक/दैहिक दुःख और क्रोध, लोभ आदि मानसिक दुःख आते हैं ।

आधिभौतिक ताप के अंतर्गत अन्य जीवों या शरीरधारियों द्वारा प्राप्त, रक्त और शुक्रदोष तथा मिथ्या आहार-विहार से उत्पन्न व्याधियाँ आदि आते हैं। तथा दैवीय व प्राकृतिक आपदाओं आदि से प्राप्त हुए दुःख को आधिदैविक ताप कहते हैं।

आध्यात्मिक ताप के संदर्भ में सजनों सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया है कि **‘आध्यात्मिक ताप है जन्म का रोग, विचार करना कि हमारा जीवन किस तरह बन सकता है?’**

अब जन्म का रोग क्या है, इस विषय में सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया है:-

'कई जन्म-जन्मान्तरा दा हौं-मैं दा रोग भैणों,
नाड़ी परखी ते रोग हटाए बलधारी सारे'

यह भी कहा गया है:-

हौं-मैं दा रोग सतावे तीनों ताप जलावे,
हुन ताप मिटाया गदाधारी,
स्वामी ताप मिटाया गदाधारी।।

'हौं-मैं' के इस रोग का विस्तार करते हुए इस ग्रन्थ में आगे कहा गया है:-

कुदरत ने भांडे घड़े, कुदरत ने पाया जीव।
जीव विच 'हौं-मैं' निकले, 'हौं राजा 'मैं' होया वज़ीर।
हां हां 'मैं' होया वज़ीर, वाह वाह 'मैं' होया वज़ीर।।
'हौं' राजा होया दलगीर, 'मैं' वज़ीर होया फ़कीर।
'मैं' वज़ीर होया फ़कीर, 'मैं' वज़ीर होया फ़कीर।

'हौं' अर्थात् 'हूँ' और 'मैं' यानि कर्त्ता का रूप। इस तरह यह 'मैं हूँ' का भाव है। यह अहंभाव या अहंता दूसरे शब्दों में निजत्व का ही अभिमान है तथा अहंकार का ही रूप है। इसका विषय गर्व है। यह 'मैं हूँ' या 'मैं कहता हूँ' इस प्रकार की भावना की अभिव्यक्ति है। यह मैं और मेरा का भाव है। अपने व्यक्तित्व को अपनी नज़र में दूसरों से महान समझना है। निजत्व का यह अभिमान मानव को अहंमति अर्थात् भ्रमात्मक आध्यात्मिक आत्मज्ञान में फँसा, आत्मस्वरूप की विस्मृति करा देता है।

आओ अब इस के दुष्परिणाम जानते हैं:-

इससे सजनों स्पष्ट होता है कि आध्यात्मिक यानि आत्मा और परमात्मा के विषय में यथार्थ ज्ञान के अभाव में सजन इस ताप से ग्रसित हो जाता है और उसके अन्दर चेतन तथा जड़तत्व का अविवेक अर्थात् मिथ्या ज्ञान जिसे अज्ञान कहते हैं, उत्पन्न हो जाता है। कहने का तात्पर्य यह है कि वह जड़तत्व में आत्मातत्व का आभास करता है यानि जड़तत्व को भूल से चेतनतत्व मान लेता है जो उसके आध्यात्मिक दुःख यानि आध्यात्मिक ताप ग्रस्त होने का प्रधान कारण होता है। इस ताप से युक्त व्यक्ति 'हौं-मैं' व आधि-व्याधि से ग्रस्त हो यानि शारीरिक-मानसिक व आत्मिक रूप से अस्वस्थ हो, विसूचिका यानि जन्म-मरण के चक्रव्यूह में फँस जाता है और फिर उस आवागमन के चक्कर से छुटकारा पाने हेतु विचार करता है कि जन्म के इस रोग व व्याधि को कैसे मिटाऊँ?

इस संदर्भ में इस तरह सजनों विचार करने पर उसे समझ आता है कि प्रधान दुःख 'हौं-मैं' है। इसी के कारण वह द्वि-द्वेष से ग्रस्त हो जन्म और मरण की त्रास भुगत रहा है। अतः जब तक समभाव-समदृष्टि की युक्ति अनुसार उसे आत्मतत्व का यथार्थ-ज्ञान नहीं हो जाता और वह अपनी अजरता-अमरता व नित्यता का बोध कर तद्नुकूल आचार-विचार व व्यवहार नहीं अपनाता तब तक इस दुःख से उसकी निवृत्ति नहीं हो पाती। इस प्रकार तत्त्वज्ञान व ब्रह्मज्ञान प्राप्ति होने पर ही जीव इस ताप से छुटकारा पाता है। तभी तो कहा गया है:-

"हौं-मैं" दा रोग हटावे, दिल विचों दुई मिटावे
नी ओ अंधेरा मिटावे, ह्रदय विच चानणा दिखावे
जन्म दित्ता ने सँवार,
ओ सच्चाई वाला, महाबीर जी पाया ए हार
नी ओ अभिमान हटावे, दिलों अहंकार मिटावे
नी ओ हुण कुल नूं बचावे, है ओ अंधेरे दा चानण
बचाया ने पख परिवार,
ओ सच्चाई वाला, महाबीर जी पाया ए हार।

इसके पश्चात् आधिभौतिक ताप के विषय में सजनों सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ हमें बताता है कि 'आधिभौतिक ताप है:- विचार करना कि किस तरीके से हमें शांति की प्राप्ति हो सकती है।'

यह जनाता है कि भौतिक ताप से ग्रस्त व्यक्ति के अन्दर, नश्वर जगत के सन्निकर्ष में आने पर, इन्द्रियों के माध्यम से विषयों की प्राप्ति व भोग की आशा-तृष्णा उठती रहती है। तृष्णा अर्थात् कोई वस्तु पाने के लिए आकुल करने वाली इच्छा। यह तृष्णा बार-बार प्राणियों को उत्पन्न करती है। विषयों के प्रति राग यानि प्रिय या अभिमत वस्तु के प्रति मन में होने वाले भाव या झुकाव, ईर्ष्या और द्वेष, प्रेम, अनुराग, मोह, कष्ट, पीड़ा से युक्त होती है तथा इन विषयों का अभिनन्दन करने वाली होती है। यहाँ और वहाँ यह सर्वत्र अपनी तृप्ति खोजती रहती है। तभी तो कहा गया है:-

तृष्णा दी सर्पणी जलावे, शांति बक्षो तेजधारी।

यह तृष्णा काम तृष्णा होती है जो नाना प्रकार के विषयों की

कामना करती है। भवतृष्णा होती है जो संसार की सत्ता बनाए रखती है। विभव तृष्णा होती है जो संसार के वैभव की इच्छा करती है। तृष्णा की धाराएँ प्राणियों को बड़ी प्रिय और मनोहर लगती हैं। इस संदर्भ में इस कुदरती ग्रन्थ में कहा गया हैः-

दुनियां दा रोग है भारी, आए ब्रह्मचारी आए गदाधारी।।
ए रोग सबको कठिन लगा है, किसे न बुझी नाड़ी
सारा दिन सब नूं रोग सतावे, वैद्य आए बलधारी
जमदियां दा ए रोग लगा है, महाबीर जी करेसन कारी।
आशा तृष्णा दा रोग लगा है, बली आप मिटासन दुःख भारी।
इस रोग दी कोई दवा न सुझे, औषधि पिलाई बलधारी।

सजनों सुख के फेर में पड़ प्राणी उसकी धारा में पड़ते हैं और यह भूल जाते हैं कि विषय सुख के भोग से इन्द्रियों की तृप्ति नहीं होती बल्कि इससे तो राग-क्लेश उत्पन्न होता है और उनमें जो रूकावटें आती हैं उनसे द्वेष-क्लेश उत्पन्न होता है। सजनों ज्यों-ज्यों भोग का अभ्यास बढ़ता है, त्यों-त्यों तृष्णा भी बलवती होती जाती है। विषय-कामना विषयों के उपभोग से कभी शांत नहीं होती अपितु और भड़कती है। इस प्रकार विषय सुख के भोग के पीछे भागता व्यक्ति शांति की प्राप्ति हेतु उसके पीछे भागता है परन्तु विषय सुख की कामना कभी शांत नहीं होती, अपितु और बढ़ती है। इस तरह सजनों विषयों के भोग से इन्द्रियाँ दुर्बल हो जाती हैं, अंत में इन्द्रियों में विषय-भोग की क्षमता बिल्कुल नहीं रहती पर तृष्णा फिर भी सताती रहती है। तभी तो कहा गया है

जेहड़े वेले वृद्धावस्था आवे,
हाड़ माँस सारा सुक जावे, अजे वी तृष्णा सतावे

सजनों यही व्यक्ति के आधिभौतिक ताप से ग्रस्त होने का परिचायक होता है।

आओ अब जानते हैं कि आधिदैविक ताप क्या है:-

सजनों आधिदैविक ताप के संदर्भ में सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ हमें समझा रहा है कि 'आधिदैविक ताप है:- सब देवताओं को पूजना, आज यह व्रत रखना कल वह व्रत रखना। विचार करना कि हमें किस तरह विश्राम मिल सकता है।'

स्पष्ट है सजनों इस ताप से ग्रस्त व्यक्ति दैवीय व प्राकृतिक विपत्तियों से मुक्ति पाने हेतु कभी एक देवता को खुश करने के चक्कर में तो कभी दूसरे देवता को खुश करने के चक्कर में, तरह-तरह से उनकी आराधना करता है। अन्य शब्दों में वह अज्ञानियों द्वारा बताए गए व्रत-नेम, पाठ-पूजा, तंत्र-मंत्र, जप-तप आदि विभिन्न अविचार व कर्मकांड युक्त, आडम्बरी भक्ति भावों का सहारा ले, विश्राम पाने की चेष्टा करता है परन्तु सिवाय भटकाव के उसको कुछ प्राप्त नहीं होता।

सजनों इन तापों के विषय में सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ यह भी कह रहा है कि 'जिनको तीनों तापों ने सताया है, चाहे वह कितना ही यत्न करें, विश्राम नहीं पा सकते। 'यद्यपि सजनों यह दुःखत्रय यानि ताप मन की ऐसी कष्टदायक अवस्था है जिससे छुटकारा पाने की इच्छा प्राणियों में स्वाभाविक ही होती है तथापि रजोगुण अर्थात् जीवधारियों की प्रकृति का वह स्वभाव जिससे उनमें भोगविलास तथा बनावटी बातों में रूचि उत्पन्न होती है तथा जो चंचल और

भोगविलास में प्रवृत्त करने वाला होता है, उसको ताप या दुःख का प्रतिकारण मानते हुए, इससे निवृत्ति कठिन प्रतीत होती है। इसी कारण सजनों-त्रिविध दुखों की निवृत्ति अत्यंत पुरुषार्थ का विषय और शास्त्र जिज्ञासा का उद्देश्य माना गया है।

इस विषय में जानो कि जिस प्रकार शारीरिक टेम्प्रैचर के ऊपर-नीचे होने पर प्रकृति प्रदत्त औषधि के सेवन द्वारा निरोगता प्राप्त की जाती है उसी प्रकार आध्यात्मिक ताप के असंतुलित होने पर पुनः आध्यात्मिक स्वस्थता प्राप्त करने हेतु वैद्यों के वैद्य सजन श्री शहनशाह हनुमान जी ने नाम-अक्षर की औषधि का नियमित रूप से तीन खुराक के रूप में सेवन करने का विधान रखा है। तभी तो सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया है किः-

तृष्णा दी सबको आग लगी है,
नाम दा मींह बरसाए महाबीर जी आए

साथ ही यह भी कहा गया है

तीनों ताप जलाया त्रेह लगी बेशुमार,
महाबीर जी नाड़ी परख लई, ताप मिटाया बलधार
ताप लथा रघुनाथ मिले, दासी होई प्रसन्न,
रोग सारे मिट गए, मिल गए सूरज चन्द।।

याद रखो सजनों पहला ताप जीत लेने से अर्थात् आत्मपद की प्राप्ति कर लेने से बाकी दो ताप (आधिभौतिक) और (आधिदैविक) बिन यत्नों समाप्त हो जाते हैं। चूंकि सजनों वर्तमान समयकाल में अधिकांशतः लोग इस रोग से ग्रसित हैं, अतः बताई युक्ति अनुसार निरंतर नाम-अक्षर चलाना

आवश्यक है। याद रखो जो यह कार्य अफुरता से करता है उसे ही आध्यात्मिक विद्या प्राप्त होती है व वह ही ब्रह्मज्ञानी कहलाता है। सजनों इस औषधि से प्राप्त होने वाले लाभ की महत्ता को देखते हुए, इसके प्रति किंचित मात्र भी लापरवाही वर्तना हानिकारक सिद्ध हो सकता है। अतः ऐसी भूल मत करना और याद रखनाः-

नाम दा है प्रकाश, साडे मिटे सारे सन्ताप,
नज़र आवें तूं ही तूं ही।

महाबीर जी पूरण मिल गए, मिट गए तीनों ताप,
नज़र आवें तूं ही तूं ही।

स्पष्ट है सजनों कि चेतन और जड़तत्व का विवेकपूर्ण ज्ञान यानि आत्मिक ज्ञान, ताप निवृत्ति द्वारा मोक्ष, आनंद व शांति को प्राप्त करने का मुख्य साधन है। अब प्रश्न यह उठता है कि यह ज्ञान आए तो आए कहाँ से? तो जानो कि जिसमें पूर्ण-ज्ञान है, जो सर्वज्ञ है, सर्वव्यापक और शक्तिमान है, जिसमें दुःख और जड़ता तथा अज्ञान का नितांत अभाव है, जहाँ तक आत्मा का पहुँचना आत्मा का अंतिम ध्येय है, जो ज्ञान का पूर्ण भंडार है, समभाव-समदृष्टि की युक्ति अनुसार, वहाँ से अर्थात् हृदय वेद विदित से ज्ञान प्राप्त कर ही आत्मा जड़-चेतन का विवेक प्राप्त कर सकती है। इस प्रकार जड़तत्व से अपने को सर्वथा भिन्न करके निर्विकार, निर्लेप, शुद्ध परमात्मा स्वरूप में अवस्थित होने पर ही यानि अज्ञान और अविद्या के सर्वथा नाश से ही तीनों तापों का रोग मिट सकता है और अविद्या के बंधनों को तोड़कर समस्त दुःखों से सर्वथा मुक्ति पाई जा सकती है। याद रखो इस मुक्त

अवस्था में दुःख-सुख दोनों का अभाव हो जाता है। तभी तो इस विषय में सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया है:-

'रूप रंग रेखा मुक गई, फिर तीनों तापों के टैम्परेचर की समाप्ति हुई। फिर वह सजन गगनमंडल में जहाँ रूप, रंग, रेखा नहीं महाराज जी के साथ मेल खा जाता है। बिन औखियाइयों, बिन खेचलों, बिन तकलीफों, वह जन्म की बाज़ी को जीत लेता हे। यहाँ पर तीनों तापों का टेम्परेचर जो घटता-बढ़ता रहता है वह समाप्त हो जाता है। जैसे बुखार घटता-बढ़ता रहता है इसी तरह हमारे स्वभावों का टेम्परेचर भी घटता-बढ़ता रहता है। अगर हम संतोष पर काबू पाते हैं तो धैर्य छूट जाता है। धैर्य पर काबू पाते हैं तो सच्चाई-धर्म छूट जाता है। इस युक्ति पर चलने से तीनों तापों का रोग मिट जाएगा और हमारे सब सवाल हल हो जाएंगे। फिर समभाव जो एक निगाह एक दृष्टि देखनी होती है बिना यत्न के उसकी प्राप्ति हो जाएगी, यह है जन्म की बाज़ी को जीत लेना।'

अतः सजनों सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में विदित समभाव समदृष्टि की युक्ति अपनाओ और तीनों तापों का रोग मिटा जन्म सफ़ल बनाओ।

दिनाँक 12 फरवरी 2017 का सबक़

त्रिगुण - 1

साडा है सजन राम, राम है कुल जहान

अर्थात् ईश्वर हमारा मित्र/प्रियतम सर्वव्यापक है, उसी को जानो, मानो व वैसे ही गुण अपनाओ।

शब्द है गुरु, शरीर नहीं है,

अर्थात् ज्ञानी को नहीं ज्ञान को अपनाओ और निमित्त में नहीं नित्य में श्रद्धा बढ़ाओ।

इस पर सुदृढ़ता से डटे रह, इस अटल सत्य पर स्थिर बने रहोः-

ओ३म् अमर है आत्मा, आत्मा में है परमात्मा

सजनों इसी परमतत्व के साथ अपने ख़्याल का नाता जोड़ो और इस तरह सदा चेतन अवस्था में बने रहो।

गत सप्ताह सजनों हमने जाना कि अविनाशी पुरुष से उत्पन्न प्रकृति अव्यक्त है। वही व्यक्त होने पर जगत का रूप ले लेती है यानि मूल सूक्ष्म प्रकृति ही घनीभूत होकर स्थूल हो जाती है और सृष्टि के समस्त पदार्थों की रचना करती है। प्रकृति जड़ है और पुरुष चेतन। प्रकृति और पुरुष पृथक-पृथक होकर कार्य नहीं करते। पुरुष प्रकृति में स्थित होकर ही प्रकृतिजन्य गुणों का उपभोग करता है। हम कह सकते हैं कि प्रकृति क्रियाशील है और पुरुष निष्क्रिय दृष्टा है। पुरुष और प्रकृति दोनों ही अनादि हैं और प्रकृति से ही समस्त गुण और विकार उत्पन्न होते हैं। इस तरह समूची सृष्टि सत्त्व,

रज और तम् इन तीनों गुणों से युक्त होने के कारण त्रिगुणात्मक कहलाती है परन्तु वह परम पुरुष परमात्मा सदा त्रिगुणातीत रहता है।

सजनों प्रकृति के इन तीनों गुणों के संदर्भ में जानो कि प्रकृति के तीनों गुण सर्वत्र हैं और विभु हैं अर्थात् प्रत्येक वस्तु में पाये जाते हैं। यह सुख-दुख और मोह स्वरूप हैं। सत्य का स्वभाव प्रकाश है। रजस प्रवृत्त करने में समर्थ है इसलिए इसका स्वभाव क्रिया है। तमस् रोकने वाला है इसलिए इसका स्वभाव स्थिति है। तीनों गुणों का स्वभाव है कि वे एक दूसरे के आश्रय में रहते हैं, एक दूसरे को दबाते हैं तथा एक दूसरे से ही उत्पन्न होते हैं। सभी गुण परिणामशील हैं। परिणाम का अर्थ है तबदीली अर्थात् पहले धर्म को छोड़कर किसी दूसरे धर्म को ग्रहण करना। इन्हीं गुणों के कारण जो वस्तु स्थिर है उसमें क्रिया उत्पन्न हो जाती है और वेगवाली क्रिया के पीछे उसमें प्रकाश प्रकट हो जाता है। जो प्रकाशवाली है वह समयान्तर में यानि कुछ समय पश्चात् प्रकाशहीन हो जाती है और अन्त में क्रियाहीन भी हो जाती है। ध्यान दो जब एक वस्तु स्थिर होती है तो उसमें तमस् प्रधान होता है। रजस और सत्य गौण रूप से रहते हैं और समय पर उसमें प्रकट हो जाते हैं। जब वह वस्तु क्रियावाली हो जाती है तो उसमें रजस् प्रधान हो जाता है। सत्व और तमस् गौण होते हैं। फिर वही वस्तु जब प्रकाश वाली हो जाती है तो उसमें सत्व प्रधान हो जाता है। रजस् और तमस् गौण होते हैं। यह भी जान लो कि गुणों का असली रूप अर्थात् साम्यपरिणाम कभी दृष्टिगोचर नहीं होता (जैसे दूध में दूध के निर्विकार बने रहने की अवस्था) जो विषम परिणाम

दृष्टिगोचर होता है (जैसे दूध में निश्चित समय के पश्चात् खटास आदि विकार के आने से होता है) वह माया जैसा है और विनाशी है। इसी के कारण विकार यानि दोष उत्पन्न होता है। यहाँ समझने की बात यह भी है कि जब तक तीनों गुण समान रूप में विद्यमान रहते हैं तब तक प्रकृति में हलचल यानि परिवर्तन नहीं होता यानि प्रकृति स्वरूपावस्था में स्थित रहती है परन्तु जैसे ही इन तीनों गुणों का संतुलन बिगड़ जाता है वैसे ही प्रकृति में हलचल आरम्भ हो जाती है और विकृति आरम्भ हो जाती है। सजनों उपरोक्त के संदर्भ में यदि हम अपने आप को लें तो ज्ञात होगा कि जो मानव की प्रकृति या उसका स्वभाव है, वह ही व्यक्त होने पर जगत का रूप धारण करती है और मानव के अन्तःकरण में कल्पना के रूप में नई-नई अनूठी चीज़ों के रूप उपस्थित करती है।

इस तरह यह सूक्ष्म प्रकृति ही घनीभूत होकर स्थूल रूप धारण कर लेती है और सृष्टि के समस्त जड़ पदार्थों के साथ प्राणी का सम्बन्ध जोड़ती है। मानव की बुद्धि इस जड़ता को ग्रहण कर मूढ़ न हो जाए उसके लिए आवश्यक होता है कि जिस चेतन पुरुष से यह प्रकृति उत्पन्न हुई है उसके साथ सतत् रूप से मानव के ख़्याल का योग बना रहे यानि यह योग माया के अधीन हो वियोग में न तबदील हो जाए अन्यथा जड़ता के कारण अधोपतन के मार्ग पर जाने से उसको कोई नहीं रोक सकेगा। इस बात को समझ कर सजनों सदैव अपने मूल चैतन्य के सम्पर्क में बने रह, चेतन बने रहो और कदाचित् प्रकृति में उलझकर उसके मायावी जाल में मत फँसो।

मत भूलो कि यह प्रकृति यानि माया भी सदा उस आद् पुरुष के साथ ही योग रखती है क्योंकि वह जानती है कि मैं उसकी शक्ति से ही क्रियाशील हूँ अर्थात् उस पुरुष की चेतन शक्ति से मैं केवल जड़ पदार्थ ही बना सकती हूँ पर इस जड़ता में चेतनता तो केवल वह परमेश्वर ही भर सकते हैं। निःसंदेह ऐसा करते समय उसे इस बात का बोध होता है कि अगर उस आद् पुरुष के साथ मेरा वियोग हो गया तो मेरा तो वजूद ही समाप्त हो जाएगा। अतः वह सदा उसकी आज्ञा में बनी रह, चरणों की दासी ही बने रहना पसंद करती है।

सजनों इस प्रसंग से शिक्षा ले, उस प्रकृति की तरह हमें भी चाहिए कि हम भी जड़ता में न फँसकर सदा अपने मूल चैतन्य स्वरूप से जुड़े रहें और इस हेतु शब्द ब्रह्म विचारों को ग्रहण कर उनके संग अपने ख़्याल का नाता जोड़ें। इसी से हमारा हृदय मानवता से परिपूर्ण रह सकता है और हम धर्म पर अडिग बने रह धर्मज्ञ इन्सान कहला सकते हैं। मात्र इतनी सी सावधानी से हमारे समस्त दुःख, सुख में बदल सकते हैं। अतः इस हेतु हर कदम पर अपने मन, वाणी और कर्म पर लगाम रखो और सदैव स्मरण रखो कि वह चैतन्य पुरुष मेरे हृदय में स्थित होकर मुझे हर पल देख रहा है। उसको हाज़िर-नाज़िर मानते हुए हर कार्य भली-भांति विचार कर करो। याद रखो इसी युक्ति को अपनाने से गुणवान बन सकते हो। इसके विपरीत यदि अपनी यथार्थता के प्रति अबोध रहकर मनगढ़ंत तरीके से सब कुछ करोगे तो प्रकृति के समस्त विकार मन में उत्पन्न हो जाएंगे और इतनी सी भूल के कारण मानवता के स्थान पर दानवता अपना बैठोगे और इस अबोधता के कारण अपने समेत आने वाली

पीढ़ियों का भी विनाश कर बैठोगे। फिर कह रहे हैं सजनों कि 'मैं' के भाव में आकर इस प्रकृति जन्य जगत का उपभोग मत करो अपितु जिसने यह प्रकृति बनाई है उसी चैतन्य पुरुष में स्थित रह, निष्काम भाव से इसका उपयोग करो। इस हेतु कर्त्ता होते हुए भी अकर्त्ता बने रहो। याद रखो इसी तरह कर्मफल से आज़ाद बने रह परमात्मा की तरह ही त्रिगुणातीत रह पाओगे और 'विचार ईश्वर है अपना आप' यह शक्तिशाली भाव अपना पाओगे।

इस संदर्भ में सजनों मानव का जैसा भाव व वृत्ति होती है, उसी तरह के गुण उसमें उत्पन्न हो जाते हैं। इस आधार पर प्रकृति से जो तीन वृत्तियाँ उत्पन्न होती हैं यथा सात्त्विक, राजसी और तामस, उन्हीं तीन वृत्तियों से तीन गुण उत्पन्न होते हैं, जिन्हें क्रम से सात्विक, राजसी और तामसी गुण कहते हैं। इन्हें सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुण भी कहते हैं। सतोगुण प्रकृति का सबसे श्रेष्ठ गुण होता है जो मन को शुभ कर्मों की ओर प्रवृत्त करता है। ज्ञान, प्रकाश, शांति, विवेक आदि इसके लक्षण हैं। यह आत्मतत्त्व मूलतत्त्व, तथा चेतन तत्त्व का भी बोधक है। सत्वगुण की प्रधानता वाले व्यक्ति या पदार्थ को सात्विक कहा जाता है। उसकी प्रकृति श्रेष्ठ होती है। रजोगुण प्रकृति का वह गुण है जिससे जीवधारियों में भोग-विलास तथा दिखावे की रुचि उत्पन्न होती है। रजोगुण के लक्षण चंचलता और भोग विलासिता हैं। तमोगुण प्रकृति का वह गुण होता है जिसके प्राधान्य से मनुष्य बुरे से बुरे कार्य करता है। अधम या निकृष्ट वृत्ति वाला मनुष्य तमोगुणी कहलाता है। इस प्रकार सत्वगुण हल्का और प्रकाशक, रजोगुण चंचल और भोगविलास में

प्रवृत्त करने वाला और तमोगुण भारी और रोकनेवाला होता है। सत्त्वगुण सुख में, रजोगुण कर्म में और तमोगुण ज्ञान को ढक कर प्रमाद में लगाता है। सत्त्व से ज्ञान, रज से लोभ तथा तम् से प्रमाद, मोह, अज्ञान उत्पन्न होता है।

इस प्रकार सजनों ये तीनों गुण ही इस अविनाशी जीवात्मा को शरीर से बाँधते हैं। जो मनुष्य सुख और ज्ञान की आसक्ति से बँधता है, उसे सत्त्वगुणी कहते हैं, जो मनुष्य कर्मों और फल की आसक्ति से बँधता है उसे रजोगुणी कहते हैं और जो मनुष्य प्रमाद, आलस्य, गर्व, मोह, निद्रा से बँधता है, उसे तमोगुणी कहते हैं। इस तरह प्रत्येक मनुष्य में तीन गुण सर्वदा मिलते हैं, लेकिन जब उसमें रजोगुण और तमोगुण को दबाने की क्षमता शक्ति होती है, तो उसमें सत्त्वगुण बढ़ता है और जब मनुष्य में सत्त्वगुण और रजोगुण को दबाने की सामर्थ्य होती है, तो उसमें तमोगुण बढ़ता है। इस प्रकार जब पदार्थ में सत्व गुण प्रधान होता है तो वह रजस और तमस् को दबाकर सुख, प्रकाशादि और अपने धर्मों से शांत वृत्ति उत्पन्न करता है। यह हल्का होता है इसलिए इससे शरीर में हल्कापन, तितिक्षा, संतोष, प्रकाश तथा सुख उदय होता है। जब रजस गुण प्रधान होता है तो सत्व और तमस को दबाकर दुख प्रवृत्ति आदि से घोर-वृत्ति उत्पन्न करता है। यह उत्तेजक और गतिशील होता है इसलिए इससे शरीर में उत्तेजना और चंचलता बढ़ जाती है। जब तमस् गुण प्रधान होता है तो सत्व और रजस को दबाकर आलस्य, सुस्ती आदि से मोह वृत्ति उत्पन्न करता है। तमस् भारी और रोकने वाला है इसलिए इससे शरीर में निद्रा और भारीपन छाया रहता है तथा काम करने में प्रवृत्ति

नहीं रहती। सात्त्विक भाव व गुण से जो मनुष्य सत्कर्म करते हैं, उसमें कहीं न कहीं लोककल्याण एवं परहित का भाव अवश्य रहता है। ऐसे मनुष्य को सुख-शांति, ज्ञान-वैराग्य-भक्ति जैसे निर्मल फलों की प्राप्ति होती है। इसी तरह राजस भाव व गुण से जो मनुष्य स्वार्थ लोभवश सांसारिक कर्मों को करता है, उसे अशांति-दुःख, विषयभोग, मन की चंचलता जैसे कर्म फलों की प्राप्ति होती है और जो मनुष्य तामस भाव व गुण से तामसिक कर्मों को सम्पादित करते हैं, उन्हें अज्ञान, अंधकार, प्रमाद जैसे कर्मफलों की उपलब्धि होती है। रजोगुणी मनुष्य आत्मलाभ के लिए ही कर्मों का सम्पादन करता है और तमोगुणी मनुष्य निम्नकोटि के कार्यों के सम्पादन के कारण अकर्मण्यता को प्राप्त करता है। इसी प्रकार सत्त्वगुण में स्थित हुए मानव स्वर्गादि लोकों को, मृत्यु के बाद प्राप्त होते हैं, रजोगुण में स्थित हुए मानव, मनुष्य लोक को प्राप्त करते हैं और तमोगुणों में स्थित हुए मानव पशु-पक्षी-कीट आदि योनियों को प्राप्त होते हैं। सच्चा गुण सत्त्वगुण है जिसे अपनाकर मनुष्य अपने जीवन को सफल और सार्थक बना सकता है, लेकिन इसकी समझ के लिए आवश्यक है कि वह रजोगुण और तमोगुण के कार्य एवं प्रभाव को भली-भाँति समझे, अन्यथा उससे चूक हो सकती है।

सजनों उपरोक्त विवेचना से स्पष्ट होता है कि सत्त्वगुण अपनाकर ही मनुष्य अपने जीवन को सफल और सार्थक बना सकता है। ऐसा इसीलिए होता है क्योंकि सत्वगुणी जीवन में प्रत्येक कार्य को करने से पहले उससे प्राप्त होने वाले परिणाम को विचार लेता है और फिर जो उचित होता है, उसी अनुसार निष्काम भाव से क्रिया करता है। इसके

विपरीत रजोगुणी व्यक्ति जीवन में जो भी करता है वह केवल अपने लिए करता है व अपने सम्मान को समक्ष रख, मान प्राप्ति हेतु ही करता है। इसी तरह तमोगुणी इन्सान तो निर्बोध होने के कारण नीचता वाले कृत्य करता है। अतः यह समझते हुए हमें सत्वगुणी इंसान बनना है। इस संदर्भ में सजनों यह भी जान लो कि गुणों की धारणा के आधार पर मनुष्य तीन प्रकार के होते हैं यथा उत्तम, मध्यम व मंद अधम।

उत्तम मनुष्य

1. उत्तम मनुष्य में सात्विक गुणों की प्रधानता होती है अतः वह सबसे उत्कृष्ट कहलाता है।
2. हर हाल में सन्तुष्ट, धीर व प्रसन्नचित्त बना रहता है।
3. वह दुःख-क्लेश आने पर भी सुकर्म ही करता है।
4. वह लोभ-लालच, मोह-ममता आदि में फँसकर भ्रमित या विचलित नहीं होता। उसकी बुद्धि अस्थिर नहीं होती।
5. वह अपने निष्कामता धर्म पर अडिग बना रहता है। अपना धर्म कभी नहीं छोड़ता।
6. अपना फ़र्ज़ अदा सच्चाई-धर्म से खुशी-खुशी निभाता है ।
7. वह आज्ञाकारी, ईश्वर के हुक्म को मानने वाला तथा हर परिस्थिति यानि जन्म-मरण, रोग-सोग, खुशी-ग़मी, मान-अपमान व अमीरी-ग़रीबी में सम बना रहता है।
8. समस्त कार्य व्यवहार करते हुए उसका ध्यान जीवन लक्ष्य यानि मोक्ष प्राप्ति की ओर रहता है।
9. वैश्विक एकता और शांति की भावना से ओत-प्रोत हो वह

परोपकारी सबका सजन बन सबको सज्जन बनाता चला जाता है।

मध्यम मनुष्य

1. मध्यम कोटि के मनुष्य में राजसिक गुणों की प्रधानता होती है।
2. वह कार्य करने के योग्य तो होता है पर कार्य खुशी से नहीं करता, अतः संतुष्ट नहीं रहता।
3. विचार पकड़ता तो है किन्तु परिस्थितिवश विवेचना नहीं कर पाता।
4. कष्ट-क्लेश तथा दुःख आने पर सुकर्म छोड़ देता है।
5. सच्चाई-धर्म की राह पर अग्रसर होता तो है मगर काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार के वशीभूत हो पथभ्रष्ट हो जाता है।
6. बुद्धि की अस्थिरता के कारण स्वभावों में स्थिर नहीं रह पाता इसलिए गिर-गिर कर खड़ा होता है।
7. संकल्प-विकल्प के कुसंग में पड़ दुविधाग्रस्त स्थिति से घिरा रहता है। परिणामस्वरूप उसका मन निरन्तर शांत नहीं रह पाता है।
8. जीवन लक्ष्य के प्रति सतर्क व जागरूक न होने के कारण हार खा जाता है।

मंद अधम मनुष्य

1. मंद अधम कोटि के मनुष्य में तामसिक गुणों की प्रधानता होती है अतः ऐसा व्यक्ति अविद्या ग्रस्त हो अज्ञानवश

पापाचरण करता है और नीच, निकृष्ट या खोटा इंसान कहलाता है।

2. दुर्भाग्यवश समझाने पर भी सही मार्ग पर नहीं चलता यानि पिता के वचनों के विरूद्ध चलता है।

3. कुसंग में पड़ कुकर्म व दुराचरण करता है।

4. अपने जन्म का वैरी कहलाता है।

5. निम्न श्रेणी की योनियों मे भटकता रहता है।

इस प्रकार सजनों एक गुण पारखी मानव केवल उन्हीं पदार्थों को ग्रहण करता है जो स्वास्थ्यवर्धक हों। निःसंदेह इस हेतु उसके लिए सर्वप्रथम वस्तु के प्रभाव व उपभोग से प्राप्त होने वाले परिणाम की जानकारी प्राप्त करनी आवश्यक होती है ताकि वह किसी ऐसी वस्तु का प्रयोग न कर बैठे जो उसके लिए अहितकर हो। याद रखो इसके प्रति क्षणिक भी चूक या लापरवाही भिन्न-भिन्न प्रकार के रोगों व दोषों यानि अवगुणों की उत्पत्ति का कारण बन सकती है। इसीलिए तो कहा गया है कि हर मानव के लिए हर वस्तु में निहित गुण को अपने अन्दर धारण करने से पहले उसको समझना चाहिए और उन्हें धार अपने हृदय को गुणों की खान बना मन-वचन-कर्म द्वारा उनका सत्यनिष्ठा व प्रसन्नता से प्रयोग कर अपने ऊपर उपकार करना चाहिए। याद रखो गुण ग्रहण करने की इस विद्या या कला में दक्षता द्वारा ही किसी वस्तु के लाभ या उसके लाभप्रद तत्त्व को जाना जा सकता है।

सजनों यह जानने-समझने के बाद हमें लगता है कि प्रत्येक इन्सान ने त्रिगुणों के संदर्भ में आत्मनिरीक्षण कर लिया होगा और इस बात की परख कर ली होगी कि उसमें किन गुणों की प्रधानता है। इस जाँचना से सजनों आपको दो बातों की समझ आ गई होगी। एक तो यह कि मुझ में जो बुरे लक्षण हैं, उससे उबर कर मुझे सत्यनिष्ठ व धर्म परायण इन्सान कैसे बनना है दूसरा यह कि यदि मैं अभी समय रहते ही ऐसा उद्यम नहीं दिखाता तो मुझे कौन सी योनि प्राप्त होने वाली है। सजनों अगर वह योनि पसंद न आ रही हो तो समय रहते ही उत्तम गति प्राप्ति हेतु यत्नशील हो जाना। सजनों इस तरह निश्चित रूप से अपनी किस्मत जाग्रत कर सकते हो।

इस सन्दर्भ में यह भी याद रखो कुछ भी धारण करते समय या परस्पर गुणों के आदान-प्रदान के समय उस वस्तु के परिमाण से अधिक उसकी गुणवत्ता पर ध्यान देने वाला व्यक्ति ही एक समझदार मानव कहलाता है। ऐसे मानव के विचारों में उच्चता और व्यवहार में विनम्रता होती है। इसलिए तो मानव-धर्म अनुसार गुणों का विचार करना एक मानव की आचार-संहिता का सुदृढ़ आधार कहलाता है और उसे सर्वगुण संपन्न बनाता है। यहाँ यह जान लेना आवश्यक है कि हर मानव का नैतिकता का स्तर उसकी गुणवत्ता के आधार पर ही मापा जाता है। यही स्तर उसके जीवन के हर पहलू में एक मानव की सफ़लता, उन्नति, यश-कीर्ति व भाग्य का निर्माता होता है।

यहाँ यह भी याद रखने की बात है कि ज्यों-ज्यों मानव गुणों को धारण करता है त्यों-त्यों ही उसको अपने परमात्म-

स्वरूप की पहचान होती जाती है और उसके गुणों का यशगान संसार में कीर्ति के रूप में होने लगता है। जान लो कि एक गुणी ही अंतर्निहित अलौकिक शक्ति द्वारा उस परमात्मा का सर्व-सर्व बोध कर सकता है। अतः हमें भी गुणधारणा का महत्व समझना चाहिए और इसके प्रति सतर्क होना है ताकि एक अच्छा इंसान बन हम हर प्रकार का पराक्रम दिखाने के योग्य हो जाएँ। यही जीवन में विजयी होने का प्रतीक है।

आओ गुणवान बनकर उत्तम पुरुष बनने का संकल्प लें।

सबकी जानकारी हेतु गुणों के संदर्भ में क्रमशः तामसिक, राजसिक व सात्विक गुण की विस्तार से विलग-विलग चर्चा हम आगामी कक्षाओं में करेंगे।

दिनाँक 19 फरवरी 2017 का सबक़

त्रिगुण - 2
तमोगुण

साडा है सजन राम, राम है कुल जहान
अर्थात् ईश्वर हमारा मित्र/प्रियतम सर्वव्यापक है, उसी को जानो, मानो व वैसे ही गुण अपनाओ।

शब्द है गुरु, शरीर नहीं है,
अर्थात् ज्ञानी को नहीं, ज्ञान को अपनाओ और निमित्त में नहीं, नित्य में श्रद्धा बढ़ाओ।

इस पर सुदृढ़ता से डटे रह, इस अटल सत्य पर स्थिर बने रहोः-
ओ३म् अमर है आत्मा, आत्मा में है परमात्मा

गत सप्ताह तीन गुणों के रूप में हमने सामूहिक रूप से जाना। आज हम प्रकृति के उन तीन गुणों में से सबसे निकृष्ट तमोगुण के बारे में विस्तार से जानते हैं।

तमोगुण दो शब्दों के योग से बना है यथा तम् और गुण। यहाँ तम् अंधकार, पाप, क्रोध, अज्ञान, कालिमा, मोह, नर्क, अविद्या आदि का प्रतीक हैं, व गुण अपने आप में तम् के धर्म का प्रतीक है। सात्त्विक, राजस एवं तामस में से यह तीसरा और अधम गुण है, जिसके अंतर्गत सात्त्विक और राजसी वृत्ति को दबाकर तामसी या क्रोधी वृत्ति के सहारे, कुछ उचित से अधिक अनुचित प्राप्ति हेतु, स्वभाव द्वारा प्राप्त करने की, दृढ़वादिता प्रदर्शित होती है। अन्य शब्दों में जब

व्यक्ति, अपने अभीष्ट, किसी भाव, पदार्थ, पद, अधिकार आदि को, अपनी इच्छा के प्रतिकूल पड़ने वाले विरोधियों को, धराशायी कर, प्राप्त करता है, तो ऐसे व्यक्तियों को तामसी वृत्ति व गुण वाला कहते हैं। ऐसे तमोगुणी अहंकारी मानव के विषय में सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया है:-

हौं मैं दा तैनुं रोग लगा हाई, मोह माया दी फाँसी
गूढ़ी निद्रा विच तूं सौं गयों पंज चोर खड़े ने सिरांधी
जन्म दी मर्म न जानी, जन्म दी मर्म न जानी।

वस्तुतः सर्वदेह अभिमानियों को, मोहित करने वाली, यह तामसी वृत्ति, अज्ञान से उत्पन्न भाव व गुण है, जो संसार से प्राप्त होती है और जीवात्मा को प्रमाद, क्रोध, आलस्य और निद्रा द्वारा बाँधती है। इस तमोगुण के बढ़ने पर अंतःकरण और इन्द्रियों में अंधकार एवं कर्त्तव्यकर्मों में अप्रवृत्ति और प्रमाद अर्थात् व्यर्थ चेष्टा उग्रता, निद्रा आदि, अंतःकरण की मोहिनी प्रवृत्तियाँ उत्पन्न होती हैं जो ख़्याल को लुब्ध कर लेती हैं। तभी तो ऐसे तमोगुणी व्यक्ति के मन में, अपनी लोभयुक्त इच्छाओं को पूर्ण करने का जोश/उद्वेग होता है और इच्छापूर्ण न होने पर वह क्रोध का आवेश उनके स्वभाव द्वारा प्रदर्शित होता है। इससे उनकी श्वसन क्रिया पर भी बुरा प्रभाव पड़ता है जिसके प्रभाव से उनका शरीर व मन रोगग्रस्त हो जाता है। फलस्वरूप ऐसा व्यक्ति नकारात्मक सोचता है और गंदगी इकट्ठी कर विषाक्त हो जाता है। इस विषय में सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया है:-

राम नाम नूं भुलिया होया, तृष्णा लगी है सतान।

बुद्धिहीन हो गई है तेरी, सर्पणी लगी है डंग चलान।।

याद रखो तामस भाव व गुण अविवेकी व्यक्तियों का आभूषण है। तमोगुणी मनुष्य अधम या निकृष्ट वृत्ति वाले होते हैं और उसकी प्रधानता से वे बुरे से बुरा कार्य करने से भी नहीं सकुचाते। उनको हर समय कुछ न कुछ पाने की पिपासा सताती है और इस प्रकार वे कामनाओं के गुलाम, अंधकारमय चलन अपनाकर, नारकीय जीवन जीते हैं। इसीलिए तो सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ कह रहा है:-

कूड़ कपट छल हृदय भरया, ऐसा पाप कमावे।
कूड़ कपट छल हृदय भरया, मैंनु लड़नदी जाच न आवे।
ऐसा ठग ओ ठगियां करदा, किवें न ओ नरकां नूं जावे।।

जान लो कि तामसिक प्रवृत्ति वाले व्यक्ति का मन अपवित्र होता है। वह न केवल सांसारिक भोगों एवं ऐश्वर्य की प्राप्ति हेतु अविवेकशील बुद्धि से काम लेता है, अपितु उसके उपभोग एवं उपयोग में भी अनौचित्य का आश्रय लेता है, जिससे न वह समाज में समादृत होता है और न ही वास्तविक जीवन में सुख-शांति प्राप्त कर पाता है। वह अधिकतर अधपका, रसरहित, दुर्गंधयुक्त, बासी, झूठा भोजन करता है तथा शास्त्रविधि से हीन हो दूसरों का अनिष्ट ही करता है। अन्य शब्दों में स्वभाववश सभी प्राणियों को बात-बात पर कटु वचनों के प्रयोग द्वारा डसना व अपना ज़हर उगल कर उन्हें कष्ट पहुँचाना, उसकी सहज प्रवृत्ति होती है। इसीलिए तो वह अभावग्रस्तों की मदद नहीं करता। यदि सहायता करता भी है, तो कुकर्मियों-अधर्मियों की। ऐसे इंसान की अवस्था का बख़ान करते हुए सतवस्तु

का कुदरती ग्रन्थ कह रहा हैः-

जन्म मरण दा अधिकारी होयों, अनगिनत रोग दिखावे।
निन्दया उस्तत कूड़ चतुराईयाँ, घर घर धुम मचावे।

इस प्रकार वह सदा भय व भ्रांति ग्रस्त रहता है। इसी कारण दुःख व अचानक विपत्ति आ जाने पर उसके मन में मानसिक अंधकार छा जाता है और तामसी प्रकृति के परिणामस्वरूप अन्दर शोक उद्‌भूत होता है। यही नहीं उसे परमात्मा का नाम लेने में भी कोई रूचि नहीं होती। तभी तो वह न तो प्रभुत्व में अनुराग रखता है और न ही आत्मीयता युक्त व्यवहार करने में। उसकी दृष्टि न तो उदार होती है और न व्यापक। उसके लिए स्वार्थ पूर्ति ही सब कुछ होती है। इस प्रकार तामस भाव व गुण के विकास से मानव में अपकर्ष की स्थिति बनती है और यह उसके विनाश और अपयश का कारण सिद्ध होती है। हम कह सकते हैं कि मानव को सच्चे अर्थों में अमानव व राक्षस (असुर) बनाने का श्रेय जिन आंतरिक वृत्तियों को दिया जा सकता है, उसमें तामसी वृत्ति का विशेष महत्त्व है। वस्तुतः प्रकृति ने सृष्टि का संहार इसी आधार पर किया है। तभी तो कहा जाता है कि तामसी वृत्ति से युक्त खल-दुष्ट एवं दुर्जन इंसान दूसरों के विनाश के लिए ओलों के सदृश अपना नाश भी कर बैठता है व अधोगति को प्राप्त होता है। इस संदर्भ में ग्रन्थ में कहा गया हैः-

जेहड़ा पुत्र कुपुत्र हुआ, ओ लोक निंदित, परलोक निंदित
उसने जन्म अपना बरबाद किया
इस दुनियाँ ते अपयश लै करके,
नरकां दे विच ओहदा वास हुआ।

जानो सजनों यही एक तमोगुणी मानव की पहचान होती है। तमोगुण के प्रभाव से मानव के हृदय में छाया हुआ अज्ञान का अंधकार उसे अपनी यथार्थता के प्रति अबोध बना देता है। याद रखो जिसका हृदय आकाश अंधकार से घिरा हुआ होता है वह मानव तमीज़ यानि भले और बुरे की परख़ करने वाली विवेकशक्ति यानि ज्ञान खो बैठता है। ऐसा होना निज प्रकाशित स्वरूप के प्रति अपरिचित हो अंधकार का स्वरूप धारण करने व उसी अनुसार एक निशाचर की तरह जगत में विचरने की बात होती है।

इस संदर्भ में सजनों यदि मानव विकास के इतिहास पर विचार किया जाए तो ज्ञात होता है कि मानवता का ह्रास व विनाश, तामस पुरुषों-व्यक्तियों के कारनामों से ही हुआ है। लंका नरेश रावण, कौरवों के अधिनायक धृतराष्ट्र व दुर्योधन आदि ने अपने सत्त्व-रज गुणों को छोड़कर, तामस गुण को ही आत्मसात् किया था, जिससे उनका और मानवता का विनाश हुआ। इस संदर्भ में रावण का उदाहरण सबके सामने ही है जिसके विषय में सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया है:-

रावण पापी ए कर्म कमांवदा,
सीता माता नूं लंका लै जांवदा।
तलवारां कस कस के आंवदा,
ए रावण दियां हैन अनीतियाँ,
रावण हंकारी हंकारता दिखांवदा,
कुल सारी दा नाश करांवदा।
अपनी करनी दे फल नूं पांवदा,

ए रावण दियां हैन अनीतियाँ।

स्पष्ट है कि तामस पुरुषों के कारण ही मानव के उन्नयन एवं प्रगति में बाधा पहुँचती है।

सजनों उपरोक्त विवेचना के आधार पर ही गीता में भी कहा गया है कि 'जिस विपरीत ज्ञान (अज्ञान) के द्वारा मनुष्य एक क्षणभंगुर और नाशवान शरीर को ही सब कुछ मान कर उसमें सर्वस्व की भाँति आसक्त रहता है तथा जो बिना युक्ति वाला, तत्त्व अर्थ से रहित और तुच्छ है, वह ज्ञान तामस है। जो सुख भोगकाल में और परिणाम में भी आत्मा को मोहने वाला है, वह निद्रा, आलस्य और प्रमाद से उत्पन्न हुआ तामस है। जो तामस गुण से आवृत्त बुद्धि अधर्म को ही धर्म मानती है और शेष संपूर्ण धर्मों को भी विपरीत मानती है, वह बुद्धि तामसी है। इसी तरह दुष्ट बुद्धि वाला मनुष्य जिस धारणा के द्वारा निद्रा, भय, चिंता, दुःख एवं उन्मत्तता को नहीं छोड़ता है, वह धारणा तामसी है। जो कर्म परिणाम, हानि, हिंसा और सामर्थ्य को न विचारकर, केवल अज्ञान से आरंभ किया जाता है, वह कर्म तामस कहा जाता है तथा जो विच्छेप-युक्त चित्त-वाला, शिक्षा से रहित, धूर्त और दूसरे की अजीविका का नाशक एवं शोक के स्वभाव वाला, आलसी और दीर्घसूत्री (प्रत्येक कार्य में आवश्यकता से अधिक देर या विलम्ब करने वाला) है, वह कर्त्ता तामस कहा जाता है।

इस तरह सजनों यह तामस भाव और गुण मानव की सबसे बड़ी अनुपलब्धि है इसीलिए तो कुदरत हमें सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ के माध्यम से न केवल तामसी भाव व गुण और व्यक्ति के क्रिया-क्लापों के विषय में बता रही है, अपितु

जीवन में उसे न अपनाने के प्रति इस प्रकार सतर्क भी कर रही है:-

विषयां विकारां विच चित्त न लावीं,
इन्हां कोलों तूं बच के राहवीं।
ए हैन नरक दा द्वार, ए हैन नरक दा द्वार।।

इस परिप्रेक्ष्य में मत भूलो कि कलुकाल में तो अधिकतर मानवों के हृदय अंधकार से परिपूर्ण यानि तमोगुणयुक्त होते हैं और उनका नशीले पदार्थों के प्रति विशेषकर झुकाव होता है जिसका प्रमाण आज की भयावह विकट परिस्थितियों के रूप में समक्ष देखने को ही मिलता है। तभी तो आज के मानव कुछ भी प्राप्त करने के लिए एक दूसरे पर किसी प्रकार का भी प्रहार करने के लिए तत्पर रहते हैं। परन्तु अब जान लो कि ऐसे मानवों की इस जगत में बने रहने की अवधि बीत चुकी है क्योंकि सतयुग आ रहा है और कलुकाल जा रहा है इसलिए इनका दग्ध-भस्म में जाना सुनिश्चित है। ऐसे सजनों के स्वभाव व परिणाम को व्यक्त करते हुए सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया है:-

झूठ अंधेरा खरीद करे इन्सान,
छल कपट दा करे व्यापार।
कण्डे औझड़ खाई खोद लई अपने लई,
हुण ओ डिगने नूं खड़ा है तैयार।।
झूठ है तुहाडा खाना पीना और बोलचाल,
झूठ दा पाया सजनों सिंगार।
झूठ दा करो तुसां वर्त-वर्ताओ,
झूठा है सजनों तुआडा ए प्यार।।

इस परिप्रेक्ष्य में सजनों जान लो कि तमोगुणी इंसान कष्ट-क्लेशों में उलझ कर अत्यन्त दुःखदाई पीड़ा भुगतते हैं। यही नहीं जब कोई सत्त्वगुणी उन्हें विचार प्रदान करता भी है तो वे उसकी बात सुनते ही उखड़ जाते हैं और प्रलय मचा देते हैं। निःसंदेह ऐसा करते समय वे भूल जाते हैं कि उनके भाव-स्वभावों द्वारा आई यह प्रलय कदाचित् सत्य को यानि उस सत्त्वगुणी को नहीं समेट सकती क्योंकि वह सत्यनिष्ठ तो तैरना जानता है अर्थात् हर परिस्थिति में अपने मन को नियंत्रित करने की कला में प्रवीण होता है। इसी के साथ सत्य हल्का होता है जबकि झूठ भारी होने के कारण बार-बार गोते खाता है और सत्त्वगुणी को रोकने के नए-नए ढंग लड़ाता है। ऐसा करते समय वह इस सत्य के प्रति अनभिज्ञ होता है कि वह सत्यनिष्ठ तो पूर्व दिशा में, जिधर जीवन का सहज बहाव है, उस बहाव के साथ-साथ बहता-बहता अपने आप एक दिन अपने निश्चित स्थल पर पहुँच जाएगा, अतः उसको रोकने के सारे यत्न विफल हैं। इस प्रकार दूसरों को त्रासित करते-करते अंततः वह इस भवसागर में आप ही डूब जाता है।

सजनों याद रखो अगर ऐसे तमाशबीन यानि दूसरों का हक छीनने वाले, झूठ के व्यापारी, विषय-विकारों में ग्रस्त ऐय्याश मानव अभी भी होश में आकर सम, संतोष, धैर्य, सच्चाई, धर्म की स्वाभाविक पोशाक पहन लेते हैं व बुद्धिमान बन मानवधर्म अनुरूप शिष्टाचार अपना लेते हैं, तो वह अपने गले पर लटकती हुई मौत की तलवार के वार से बच अपना जीवन उद्धार कर सकते हैं। जानो यह मन से तमोघ्न यानि अंधेरा दूर कर अपने यथार्थ परमात्म-स्वरूप को प्राप्त कर

यानि मोह माया की गहरी निद्रा से जाग व मूर्खतापूर्ण अविचारी चलन से निजात पा एक विचारशील मोह रहित सचेत इंसान की तरह सत्य धर्म के निष्काम रास्ते पर बने रह परोपकार प्रवृत्ति में ढल व परमात्म-स्वरूप होकर अकर्त्ता भाव से इस जगत के उद्धार के निमित्त सब कुछ करते हुए एक दर्शन में स्थित रहने की बात है। अंततः सजनों हम तो यही कहेंगे कि :-

सोया है तो जाग ओ बन्दे सोया सोया जाग।
खुल गए तेरे भाग ओ बन्दे खुल गए तेरे भाग।।
शहनशाह ओ दाता उस दाते दे चरणों में आ।
जेहड़ा सजन आ गया, उन्हां नूं मिला देवनगे सुहाग।
ओ सुहाग ओ सुहाग ओ सुहाग ओ सुहाग।।

सजनों इस अटल सुहागिन होने की बात को समझो और अफुरता से अपनी सुरत का नाता शब्द के साथ जोड़े रखो अर्थात् मन को सदा प्रभु में लीन रखते हुए, निज का यथार्थ बोध कर, ब्रह्मज्ञानी हो जाओ व ब्रह्म नाल ब्रह्म नाम कहाओ।

सजनों तमोगुण के विषय में जानने के पश्चात् आगामी सप्ताह हम रजोगुण व सतोगुण के विषय में बात करेंगे।

दिनाँक 26 फरवरी 2017 का सबक़

त्रिगुण - 3
रजोगुण

साडा है सजन राम, राम है कुल जहान
अर्थात् ईश्वर हमारा मित्र/प्रियतम सर्वव्यापक है, उसी को जानो, मानो व वैसे ही गुण अपनाओ।

शब्द है गुरु, शरीर नहीं है,
अर्थात् ज्ञानी को नहीं ज्ञान को अपनाओ और निमित्त में नहीं नित्य में श्रद्धा बढ़ाओ।

इस पर सुदृढ़ता से डटे रह, इस अटल सत्य पर स्थिर बने रहोः-

ओ३म् अमर है आत्मा, आत्मा में है परमात्मा

सजनों आओ राजसिक गुण के बारे में जानेंः-

रजोगुण मानव के तीन गुणों- क्रमशः सत्त्व, रजस् और तमस् में से मध्यवर्ती यानि दूसरा गुण है अर्थात् यह सात्त्विक की शुद्ध व उत्कृष्ट चेतना से नीचे और तामसी से ऊपर है। पौराणिक मान्यतानुसार, देव, मानव और दानव के प्रधान गुणों को लक्ष्य कर ये तीन गुण बने, जिनमें देव सत्त्व-प्रधान, मानव राजस और दानव तामसी माने गए। इस प्रकार, मानवों में यह राजस ही - काम या ऊर्जा तत्त्व रुपेण-प्रधानता से लक्षित होता है।

रजोगुण रागरूप कामना और आसक्ति में उत्पन्न होता है। इसलिए यह माना जाता है कि यह जीवधारियों की प्रकृति

का वह स्वभाव है जिससे उनमें भोगविलास तथा बनावटी बातों में रूचि उत्पन्न होती है। यह मनुष्य को कर्म-प्रवृत्त करता हुआ, कर्म के फल से अधिक जोड़ता है यानि कामनायुक्त होता है। इससे लोभ, स्वार्थ, वासना, कामना, अशान्ति बढ़ती है, जो अन्ततः दुःखदायी सिद्ध होती है। इसी लालसा से हमारा बचाव करने हेतु सजनों सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया है:-

लालच बुरी बला ओ लालच बुरी बला
कई जीवां दा करे ओ ख़ात्मा,
लालच करे तबाह हां हां लालच करे तबाह।।

अर्थात् यह समूलता मानव के अन्दर से मानवता के गुण का लोप कर उसके चरित्र का नाश कर डालता है।

रजोगुण के सजनों दो भेद हैं- 1 तमो उन्मुख, अधोगामी राजस और 2 सत्त्वो उन्मुख, ऊध्वर्गामी राजस। प्रथम में स्वार्थपरता, लोभ, अहं, काम, क्रोध के कारण यह जड़ता की ओर उन्मुख होता है, अतः त्याज्य कहलाता है। दूसरे में यह निष्काम कर्म, उपकार, त्याग, विराग, सेवा, दान आदि द्वारा सत्त्वोन्मुख हो जाता है व उन्नति कर चरमोपलब्धि प्राप्त करता है। इससे सजनों स्पष्ट होता है कि राजस, मानवीय चेतना व स्वभाव की मध्यवर्ती दशा है। इसके द्वारा मानव चाहे तो योगी बन सकता है और चाहे तो भोगी बन सकता है।

रजोगुणी मनुष्यों में काम, राग, तृष्णा आदि की प्रवृत्तियाँ प्रबल व त्याग, तप, साधना, संयम का भाव न्यून होता है।

मौज-मस्ती की ज़िन्दगी के यह स्वामी होते हैं और कड़वे, खट्टे, नमकीन, गरम, तीखे, चटपटे व दाहक आहारप्रिय होते हैं, जिससे उनका स्वभाव भी तीखा, कड़वा व चटकीला होने से अन्ततः रोग कारक हो जाता है। अन्य शब्दों में इससे उनके अन्दर न केवल शारीरिक तापक्रम को असंतुलित करने वाले शारीरिक त्रिदोष यथा वात, पित्त व कफ़ उत्पन्न हो जाते हैं अपितु काम, क्रोध, विलासिता, तनाव, भय, दुःख, शोक, जड़ता, अज्ञानता, आलस्य आदि जैसे दुष्ट मानसिक विकार भी पनप जाते हैं। ऐसे इन्सानों के विषय में बताते हुए सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ कह रहा हैः-

मोह माया बिना ग़मग़ीन होया,
ग़मग़ीन होया परेशान होया।
भुलिया धन दियां मौजां माणदा है,
गर्ज मार गरीब डरावंदा है।।
अधा अन्ना तें अधा सुजाखा ए,
ए दुनियां अजब तमाशा है।।

स्पष्ट है सजनों राजसी प्रकृति के लोग कीमती पोशाक पहनते हैं, भूषण भूषित रहते हैं, माँस मद्यादि का सेवन करते हैं, उत्तम वाहन, वैभव-महल आदि पसन्द करते हैं। सुन्दर नारी साथ रखते हैं व आराम से जीवन जीते हैं। वे श्रम कम करते हैं, दम प्रिय यानि इन्द्रियों को वश में रखने के स्थान पर वे दाम प्रिय यानि विश्व भोगी होते हैं। ईश्वर भजन में उनकी इतनी रूचि नहीं होती इसलिए ये ईश्वर भजन भी दंभयुक्त होकर फलासक्ति से करते हैं। वे दान करते भी हैं

तो प्रतिदान हेतु। वे सकाम पूजा- भक्ति करते हैं तथा साधु व सदाचारियों पर हँसते हैं। परमार्थ दर्शन की जगह इन्हें भौतिक दर्शन अधिक भाता है। अतः नैतिक मूल्य से वे कुछ दूर रहते हैं। तभी तो सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया है:-

साजन जी देखो पब्लिक उपरों तां पा रही सूट साड़ियाँ
पर हृदय अन्दरों ते निगाह आ रहियां खोखलियाँ ओ सारियाँ।।
बाहर ते कोट पतलून पावो नाले लावो टाई।
जीवन अपना नहीं बनाया उमरां ऐवें गँवाई, उमरां ऐवें गँवाई ।।

नैतिकता के स्थान पर भोगवादी प्रवृत्ति होने के कारण ही ऐसी प्रकृति वाले इंसान का ख़्याल नित्यता के भाव से विमुख हो मिथ्यता के भाव से युक्त हो जाता है। ऐसा अनर्थ होने पर उसके हृदय स्थित आत्मप्रकाश के स्रोत के आगे अज्ञान रूपी धूल का बादल छा जाता है। परिणामस्वरूप हृदय का वातावरण अंधकारमय हो जाता है और इस प्रकार इंसान निज यथार्थ स्वरूप का बोध करने में असमर्थ हो जाता है व शनैः शनैः समय व्यतीत होने पर उसे उसकी विस्मृति हो जाती है। ऐसे लोगों के लिए सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया है:-

जन्म-जन्मांतरां दी हृदय विच मैल जो छाई,
अर्थ दी उत्थे नहीं समाई।

यह अपने आप में सच का राज छोड़ कर कच का राज प्राप्त करने वाली वृत्ति होती है जिसमें छल-कपट, झूठ, चतुराईयाँ, चोरी व ठगी वाली राजनीति चलती है। इस प्रकार प्रभु का

संग विच्छेदन होने पर इंसान, आध्यात्मिक ज्ञान धारणा के स्थान पर, भौतिक ज्ञान धारणा को प्राथमिकता देते हुए, मनमत अनुसार अपनी कामना सिद्धि हेतु स्वार्थपरता के सिद्धान्त अपना बैठता है। तभी तो उसका ख़्याल अपने सच्चे घर में स्थिर रहने के स्थान पर मनुराज के मायावी जाल में उलझ जाता है और शनैः-शनैः वहीं का ही होकर रह जाता है। इस अवस्था के दृष्टिगत ही सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया है:-

भजन बन्दगी इन्सान भुल के ते, भुल गए स्वरूप हमारा।
सच्चाई धर्म दे दो मंत्र भुल गये, न डिट्ठा प्रतिबिम्ब दा नज़ारा।।

इस प्रकार उपरोक्त विवेचना से सजनों स्पष्ट होता है कि अधिकतर राजसिक स्वभाव वाले व्यक्ति को समृद्धिशाली बन अन्यों पर आधिपत्य जमाते हुए राजाओं का सा सुख भोगने में रूचि होती है। इतिहास गवाह है कि ऐसे व्यक्ति का व्यक्तित्व अति रहस्यपूर्ण होता है और अपना-अपना स्वामित्व सुरक्षित रखने हेतु वैसा ही राजनीतिक चलन अपनाते हैं। यह अपनी स्वार्थ सिद्धि हेतु यानि राज सिंहासन पर बने रहने के लिए, किसी को भी नीचे से ऊपर उठाने व ऊपर से नीचे गिराने की क्षमता रखते हैं यानि राई का पहाड़ बना सकते हैं और पहाड़ को राई बना सकते हैं। इस परिप्रेक्ष्य में ग्रन्थ में कहा गया है:-

दुनियां वाले इन्सान बिगड़ गए, बिगड़ गई प्रजा ओ सारी।
बिगड़ गया दुनियां दा राजा, बिगड़े ओ खलक़त सारी।।

स्पष्ट है सजनों अपनी मनगढ़ंत राजनीति के विरूद्ध चलने वालों को यह राजा, राजद्रोह दंड व्यवस्था द्वारा दबा, अन्यों

के मन में भय का वातावरण भर देते हैं। राजकोष भरने के लिए इन्हें किसी के दुःख-दर्द की चिंता नहीं सताती। तभी तो इन राजाओं के वंशजों का रहन-सहन व जीवन जीने का ढंग आम आदमी से बिल्कुल भिन्न होता है। इनका शासन आत्मभाव से नहीं अपितु मनोभावों से चलता है व उन द्वारा प्रजापालन तथा अन्य राज्यों से व्यवहार, अपनी राजनीति को सुदृढ़ता प्रदान करने हेतु ही होता है।

यही नहीं जो उनके प्रति निष्ठा नहीं रखता उनको यह शक के दायरे में खड़ा करने से भी नहीं सकुचाते। निःसंदेह, ऐसे राजभोगी यह भूल जाते हैं कि इनकी करनी पर भी किसी की नज़र रहती है और अच्छी-बुरी करनी के अनुसार इन्हें राजराजेश्वर यानि राजाओं के राजा परमेश्वर द्वारा उचित परिणाम प्रदान करने की कुदरती व्यवस्था है और इसीलिए इनके लिए आवश्यक होता है कि वह प्रजा के हित के लिए जो भी करें शास्त्रविहित धर्म अनुसार केवल उनके उद्धार के लिए ही करें। याद रखो जब रजोगुण सम्पन्न व्यक्ति आवेशित या क्रोधित हो जाते हैं तो ही लड़ाई-झगड़ों व युद्ध की नौबत आती है। इस तरह क्रोध के आवेश में आ, जब राजसिक गुण वाले तमोगुणी हो जाते हैं और उन्हें राज्य विस्तार का लोभ पड़ जाता है तो वह राज्य का नाश कर देते हैं। ऐसे इंसानों की करनी का वर्णन करते हुए ही सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया हैः-

घड़ रहे घड़ रहे हथियार कैसे,
कैसे ओ घड़ रहे होसीया मार पछाड़।
ओ हो हो हो हो होसीया मार पछाड़।।

धर्म छोड़े इन्सान ओ सारे धर्म छोड़े ओ सृष्टि सारी।
विपत्ति खरीद लई ओन्हां ने हो गए आपस विच शिकारी
उत्पात आने वाला है होसीया अत्याचार।
भाई भाईयां नूं मारनगे हथियार करन प्रहार,
ओहो हथियार करन प्रहार।।

इस संदर्भ में सजनों आज संसार में कोई विरला ही ऐसा राज्य-श्री है जो अपने राज्य की शोभा तथा वैभव बढ़ाने व प्रजा को आनन्द प्रदान करने की सामर्थ्य रखता है। अतः हमें इस भाव या गुण के अनुसार अपने आप को विकसित नहीं करना अपितु हमें तो श्रेष्ठ पुरुष बनने हेतु सर्वोत्तम भाव व गुण अपनाकर सतोगुणी बनना है जिसके लिए आवश्यकता है - राजसी स्वभाव यानि राग से विरागोन्मुख होने की। तभी हमारा चरम विकास सम्भव हो सकता है। इस हेतु हमें अपनी आसक्ति और लिप्सा, जो भौतिक विश्व के प्रति है, उसे सदुपदेश, सत्य के संग यानि शब्द ब्रह्म विचारों द्वारा, किसी प्रकार, परोक्ष सत्ता के प्रति, मूल शक्ति के प्रति, मोड़ना है। ऐसा करने से हमारी चेतना का ऊर्ध्वमुखी विकास सहज ही हो सकता है और हम विश्राम को पा सकते हैं। इस हेतु हमें सदैव सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ के इन शब्दों को याद रखना चाहिएः-

ख़्याल जदों अपने घर विच राहवे,
तदों जीव विश्राम नूं पावे।
जेहड़े इन्सान यत्न करन, यत्न करन।।

याद रखो किसी भी रजोगुणी व्यक्ति के अन्दर बदलाव की यह क्रिया दो प्रकार से सम्भव होती है- सहजा और

दुर्घटनाजन्य। सहजा विधि से, जब राजसी चरित्र सात्त्विकता की ओर अग्रसर होते हैं, तब उनका भावान्तरण सहज ही हो जाता है। वे अब प्रेय यानि अविद्या को छोड़ श्रेय यानि श्रेष्ठता को प्राप्त करना चाहते हैं अर्थात पुत्र, वित्त, प्रिया आदि भोगों की असारता को जांच-परखकर, चिंतन कर, त्याग देते हैं। दुर्घटनाजन्य परिस्थिति वह है, जब सहसा गृहस्थ-धन, पुत्र-पत्नी आदि के नष्ट हो जाने पर वे विरक्त हो जाते हैं। दोनों ही स्थितियाँ राजस के सात्त्विक रूपान्तरण या विकास की द्योतक हैं- रसखान आदि महान कृष्णभक्त, तुलसीदास आदि परिस्थितिवश यानि दुःखों के कारण ही सन्यासी बने थे।

इस संदर्भ में सजनों हम सब स्वीकारते हैं कि एक सीमा में रजोगुण व्यक्तिगत विकास हेतु ठीक है, पर सीमातीत होने पर वह अनियन्त्रित मनु प्रजापति के जैसा निरंकुश हो जाता है। अन्य शब्दों में जीवन धारण व रक्षण के लिए कुछ भौतिक साधन तो अवश्य चाहिएँ पर जब उन में उत्तरोत्तर लिप्सा बढ़ती है और उसका संपुंजन और केन्द्रन होने लगता है, तब खतरा आता है। ऐसा होने पर मानव समस्त प्रजा व प्रकृति को भोग्या मान बैठता है। फलतः दोनों ओर से बग़ावत झेलते हुए क्षत-विक्षत हो जाता है।

हमारे में से किसी के साथ ऐसा न हो इस हेतु सजनों आवश्यकता है समय रहते ही श्रद्धा, विश्वास व संयम के साथ सात्त्विकता की ओर उन्मुख होने की। ऐसा होने पर ही हमारा पूर्ण सात्त्विक विकास हो सकता है और हम चरम उत्कर्ष को प्राप्त कर सकते हैं। यह सजनों कैसे संभव होगा,

इस संदर्भ मे सजनों सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ कह रहा है:-

भैणां पंजा विषयां नू छोड़ के,
आओ महाबीर जी दे द्वार।
रघुनाथ जी दे चरण दिखा देसन,
सारी उमर खुशी विच गुज़ार।।
भैणां वैर-विरोध हटा के,
महाबीर जी दा नाम ध्याओ।
शान्ति हृदय विच बसे,
सियाराम जी दे दर्शन पाओ।
आशा तृष्णा नूं छोड़ के,
प्रीति महाबीर जी दे चरणां नाल लाओ।
ओ दीन पर दयाल होसन,
मौत दा भय मिटाओ।।

इस सन्दर्भ में सजनों याद रखो कि जो व्यक्ति विषयों में लिप्त रहता है और दु:ख-तकलीफ आने पर अपने रिश्ते के नाम पर द्वारे की दुहाई देता है तो वह सरासर अपने आप से धोखा करता है व छली और मतलबी कहलाता है। आशय यह है कि जब आप द्वारे की चाल पकड़ते ही नहीं और उसके स्थान पर विषयों को महत्त्व दे विकारग्रस्त हो जाते हो तो बदले में कष्ट-क्लेश तो प्राप्त होंगे ही होंगे, अत: ऐसे में द्वारे का नाम लेकर दुहाई देना अनुचित है। याद रखो इस द्वारे की नीति है कि निष्कामी ही ईश्वर का भक्त कहलाता है। अत: निष्कामता अपना कर उत्तम पुरुष बन जाओ। कामना-मयी, आडम्बर-युक्त भक्ति भाव अपना कर आसक्ति

में मत फँसो। ऐसे भक्त सच्चे भगत नहीं अपितु बगुले भक्त कहलाते हैं और वह अपने साथ-साथ इस जगत को भी ठगते हैं। ऐसे इन्सान अब सावधान हो जाओ और सीधे रास्ते पर आ जाओ। सीधे रास्ते पर आने पर ही यानि विषयों को त्याग कर ही मौत का भय मिटा सकते हो।

इस मौत के भय को मिटाने हेतु हमें जिस सत्त्वगुण को धारण करना है, उस विषय में हम अगली कक्षा में बात करेंगे।

दिनाँक 5 मार्च 2017 का सबक़

त्रिगुण - 4
सतोगुण

साडा है सजन राम, राम है कुल जहान

अर्थात् ईश्वर हमारा मित्र/प्रियतम सर्वव्यापक है, उसी को जानो, मानो व वैसे ही गुण अपनाओ।

शब्द है गुरु, शरीर नहीं है,

अर्थात् ज्ञानी को नहीं ज्ञान को अपनाओ और निमित्त में नहीं नित्य में श्रद्धा बढ़ाओ।

इस पर सुदृढ़ता से डटे रह, इस अटल सत्य पर स्थिर बने रहोः-

ओ३म् अमर है आत्मा, आत्मा में है परमात्मा

श्री साजन जी आया आँखों के रस्ते,
दिल में समाया, हँसते-हँसते।
आँखों ही आँखों से, दिल की बातें होती हैं।
धड़कन बढ़ जाती है जब मुलाकातें होती हैं।।
ये ही हमारे सर का ताज है।
सभी सुरतों का अमर सुहाग है।।

सजनों उस अमर सुहाग के साथ तो कोई विरली सुरत ही नाता जोड़ती है इसीलिए उसके संग बने रहने का सौभाग्य किसी विरले को ही प्राप्त होता है। वह विरला सजन वो होता है जो समर्पित भाव से उस प्रभु की चरण-शरण में बना रहता है। इसके विपरीत जो स्वार्थपरता के भाव से उस ईश्वर का

संग करता है उसे ही जीवन में योग-वियोग का सुख-दुःख सहना पड़ता है। अतः विश्राममय बने रहने के लिए हर जीव को चाहिए कि वह उस अमर सुहाग के साथ अपना ख़्याल जोड़े और उसकी विचारधारा को बिना किसी तर्क-वितर्क के अपना ले। पर आप सब भी मजबूर हो क्योंकि आपका मन और जिह्वा दोनों ही तर्क-वितर्क करने से नहीं रूकते और उस ईश्वर का कहना न मानना आपका चलन बन जाता है। कलियुग में अधिकतर इंसान इस चलन से मजबूर होकर ही परस्पर सम्बन्ध निभाते हैं। यही कारण है कि उनके आपसी व्यवहार में कोई सुन्दरता नहीं होती अपितु कटुता व पीड़ा भरी होती है। ऐसे में कैसे उनकी सुरत सम, संतोष, धैर्य, सच्चाई, धर्म जैसे स्वभावों से श्रृंगारित हो सकती है? इसीलिए ऐसे सजनों का जीवन निंदनीय होता है और उन्हें बुरा काम करने का व बुराई के जरिए ही सब अनुचित तरीके से प्राप्त करने का चस्का पड़ जाता है। यह अपने आप में सबसे बुरा विषय-रस होता है। ऐसे इंसानों की दशा का वर्णन करना अति दुष्कर होता है। किसी की भी ऐसी हालत न हो इसीलिए तो कहते हैं कि तमोगुण व रजोगुण से ऊपर उठ जाओ और सतोगुण को धार कर सत्य के पारखी बन जाओ। इस संदर्भ में सदाचारी मनुष्य बनने के लिए सजनो आओ आज सत्त्वगुण के विषय में जानते हैं:-

सतोगुण, यह तीन गुणों - सत्त्व, रज और तम में से प्रथम व श्रेष्ठ सद्‌गुण है। चैतन्य प्राण, मूल तत्व भी यही है। यह शक्ति या जीव शक्ति भी है। सत्त्व का सार सद्‌गुण है, इसलिए इसे धर्म, गुण या स्वभाव भी कहते हैं। यह गुण निर्मल, प्रकाशमान, विकाररहित, अतः सुखदायी और ज्ञान

संयुत माना गया है। अतः इन तीनों गुणों में यदि कोई ग्राह्य है तो वह सतोगुण ही है। तभी तो सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया है:-

वेला छुटकिया हथ नहीं आवना,
कूड़ छड के ते सच नू कमावना।
पल्ले बन लै सच्चाई वाला दाम जी,
ओ३म् पल्ले बन लै सच्चाई वाला दाम जी।।

सतोगुण शब्द ब्रह्म विचारों से उत्पन्न सद्भावना, विवेक और सद्बुद्धि से पनपता है और रागात्मक-रजोगुण और क्रोधात्मक-तमोगुण को दबाकर, सत्पुरूषों के मन, वाणी और आचरण में विकसित होता है। सद्गुण से जो ज्ञानप्रकाश मिलता है, उससे हृदय वेद-विदित प्रकाशित हो जाता है। फलतः निष्काम कर्म द्वारा कर्म फल से मुक्ति पाते ही चित्त में समत्व भाव स्थित हो जाता है और सुख-दुःख, मान-अपमान, मित्र-वैरी, सम प्रतीत होने पर, परमानन्द की प्राप्ति होती है। इसकी चरम दशा में यानि त्रिगुणातीत भाव दशा आने पर, योगी 'ईश्वर है अपना आप प्रकाश, ईश्वर है अजपा जाप' इस सत्य का बोध कर लेते हैं और इस प्रकार भक्ति के चरम पद अर्थात् भगवान को पा, परमात्म स्वरूप होकर, इस जगत में विचरते हैं। ऐसे योगियों के मन की परम पावन प्रकाशित अवस्था का वर्णन करते हुए सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया है:-

ओथे संयोग कहाँ और वियोग कहाँ,
ओथे रोग कहाँ और सोग कहाँ।
जेहड़े मन मन्दिर प्रकाश करेंदे ने,
ओथे खुशी कहाँ और ग़मी कहाँ।।

इस आधार पर हम कह सकते हैं कि सतोगुण के दो भेद हो सकते हैं 1. गुणमय दशा और 2. गुणातीत दशा। गुणमय दशा में व्यक्ति का मन, सर्गुण-निर्गुण में विचरता है और गुणस्वरूप हो सुखद, निर्द्वन्द तोष का अनुभव करता है। उसे सबका सुख-दुःख अपना सुख-दुःख, समभाव से प्रतीत होता है। चित्त की इस दशा में संसार के समस्त पात्र, सब भाव, एक धारा में लय हो जाते हैं यानि चित्त एकोन्मुख हो जाता है और मन प्रशस्त और सरल हो जाता है।

मानव सहृदय हो जाता है। यह सत्त्वचित्त की मुक्त दशा होती है। बद्ध दशा में उसमें यह मेरा है, वह तेरा है, का भेदभाव सामान्यतः रहता है पर जहाँ हमारी जागतिक चेतना इस 'ममकार' से ऊपर उठ जाती है, वहाँ सात्विक वृत्ति राजती है। इसे सत्त्वोद्रेक यानि उत्तम प्रकृति की अधिकता कहते हैं जिसके अंतर्गत हमारा बोलचाल, खान-पीन, रैहणी-बैहणी सब सत्यमेव हो जाती है। यहाँ अपना हित, सर्व हित में ढल जाता है। स्वार्थ की संकीर्ण परिधि से चेतना अवमुक्त होकर परार्थ या परमार्थ की ओर उठ जाती है।

इस दशा में रसना का स्वाद, रहनी की चटक, चालचलन में चपलता, वृत्ति की चंचलता, सादगी और शान्ति में परिणित हो जाती है। यह सात्विक अनुकूल दशा है। इसमें विषय आसक्ति छूट जाती है, काम-क्रोध नहीं होता अपितु सर्व मंगल की भावना आ जाती है। यह वृत्ति प्रकाशतुल्य, निर्मल, निर्विकार, सुखद और ज्ञानयुक्त होती है। तभी तो कहा गया है:-

निर्मल वृति, निर्मल स्मृति,
जैं सूक्ष्म युक्ति वल ध्यान दिया।
निर्मल पा लिया बाणा उसने,
अपना आप पहचान किया।।

जान लो कि गुणातीत दशा इससे भी ऊपर की दशा होती है। इसके अंतर्गत मानव मन गुणों के प्रभाव से परे हो निर्वाण में स्थित हो, शून्य व शांत हो जाता है यानि त्रिगुणात्मिकता से निर्लिप्त हो जाता है। यह भक्ति की भावातीत आनन्दमय दशा होती है। इस दशा में जीव पूर्ण चेतना का अनुभव कर अखण्ड, अनन्त व त्रिकालव्यापी हो जाता है। इस संदर्भ में सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया है:-

जेहड़ा सच वर्ते सच वर्त वर्तावे,
ओ मेल महाराज जी नाल खाता है।
तिनां कालां दी पहचान ओ करके,
त्रिकालदर्शी हो जाता है, त्रिकालदर्शी हो जाता है।।

आओ अब आगे जानते हैं कि सतोगुणी इंसान, किस प्रकृति के होते हैं:-

अन्य शब्दों में सत्त्व चेतना हमारे कर्म की वह सर्वोच्च दशा है, जिसमें तमस का क्रोध और रजस का काम शमित होकर सत्त्वोद्रेक के प्रकाश से समत्व को प्राप्त कर लेता है। चूंकि यह त्रिगुणों में सर्वोपरि है, अतः इसके धारक सात्विक प्रकृति के उत्तम कोटि के मनुष्य होते हैं। वे आस्तिक और भौतिक से अधिक आध्यात्मिक सत्ता के विश्वासी होते हैं, इसलिए सदाचारी, परोपकारी, निर्लेप, निर्भिमानी और उदाराशय

होते हैं। वे संतोषी, धीर और गम्भीर प्रकृति इंसान, शांति प्रिय, उद्वेग-आवेग रहित और निष्काम साधक होते हैं तथा पुण्यात्मा और साहसी माने जाते हैं। सहिष्णुता, परदुःखकातरता, उदारता आदि ऐसे सात्विक पुरुषों के स्वाभाविक लक्षण होते हैं। ऐसे सजनों के बारे में इस ग्रन्थ में कहा गया हैः-

आप तरे कुल सगली तारे, सोई सजन परम पद पावे।
ओ पहुँच गए परमधाम नूं उन्हां पा लिया अपने स्थान नूं
ओ ओ ओ ओ रोशन जगत विच सारे मारे चमकारे

ऐसा सतोगुणी व्यक्ति सदा सरस, स्निग्ध, सारवान तथा हृदयग्राही अन्न, शाक-सब्ज़ी, फल, दूध, पानी, दही, अंकुरित पदार्थ, शहद आदि गर्मी व स्फूर्ति प्रदायक, पुष्टिकारक, रक्तशोधक, शक्तिवर्द्धक और रोगनाशक आहार का सेवन करता है। इससे न केवल उसके शरीरस्थ तापमान को संतुलित रखने वाले वायु, पित्त और कफ़ समान मात्रा में उपस्थित रहते हैं अपितु शरीर की सारभूत धातु की पुष्टि भी होती है। परिणामस्वरूप वे सतोगुणी आयुबल, उत्साह व आरोग्य लाभ प्राप्त करते हैं व उसकी सन्तान भी उत्तम गुण सम्पन्न होती है। सतोगुणी सत्य और अहिंसा के पुजारी होते हैं यानि सत्य को धारण कर सच्चाई-धर्म के रास्ते पर ठीक चलते हैं व सबको भी सत् मार्ग पर चलने का ही पाठ पढ़ाते हैं। तभी तो उनके विषय में कहा गया हैः-

सच वर्ते सच वर्त वर्तावे, धर्म दा ही ओ मन्त्र उचारे।
आराधना धर्म दी साधना करके पहुँचे दयालु दे द्वारे।।

हम कह सकते हैं कि वे सदा सत्य-भाव पर ही स्थिर रहते हैं व सत्य-धर्म की भक्ति के अतिरिक्त और किसी की आराधना नहीं करते। इस प्रकार उनमें सदैव निज सत्य का बोध बना रहता है यानि उन्हें हृदय वेद विदित द्वारा ब्रह्म और जीव का ज्ञान सदा प्राप्त रहता है। इसी आध्यात्मिक ज्ञान रूपी धन से परिपूर्ण मन ही उनकी आत्मतुष्टि का हेतु होता है जिससे उन्हें सदा मनःसंतोष प्राप्त रहता है। इस अवस्था में उन सात्विक आहारी व विहारी के मन को सात्विक विचार ही भाते हैं जिससे सत्य उनके हृदय में सदा प्रकट रहता है और स्वभावों का घटता-बढ़ता टैम्प्रेचर सम रहता है। परिणामतः उनकी मानसिक अवस्था किसी परिस्थिति में भी डोलायमान नहीं होती यानि वे सुख-दुःख को सम मानते हैं तथा शत्रु-मित्र में भेद नहीं करते। सदाचरण उनकी पूँजी होती है। उनका व्यवहार अद्‌भुत व चरित्र निर्मल तथा पवित्र होता है। बल और तेज उनमें सदा विद्यमान रहता है। वे आत्मतत्व से सम्बन्ध रखने वाले धीरता से सत्वगुण पर बने रह सदा अच्छे कामों में ही प्रवृत्त रहते हैं और उत्तम प्रकृति वाले परोपकारी मानव कहलाते हैं। तभी तो वह इसी जीवन काल में अपना जीवन सफ़ल बना लेते हैं और उनके बारे में कहा गया हैः-

सम संतोष और धैर्य धर्म,
सच्चाई दा जिस पा लिया पहरेवा
फिर बने जीवन अपना कर लै निबेड़ा
फिर बने जीवन अपना कर लै निबेड़ा

इस प्रकार जो संतोषी, समत्व बुद्धि, निर्मल, निरासक्त व निर्वैर होते हैं, वे ही सत्त्वगुण की कसौटी पर खरे उतरते हैं।

उन्हें ही वास्तविक अर्थ में सजन पुरुष कहते हैं। जान लो कि ऐसे श्रेष्ठ मानव ही परम पद के अधिकारी होते हैं व उनकी सुरत का परमधाम में वास होता है। इस प्रकार वे सत्त्वगुणी उत्तम गति को प्राप्त करते हैं। इस विषय में सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ कह रहा है:-

सुगम रस्ता ओ धारण करके अगम अगोचर पावे।
बिन किश्तियों बिन बेड़ियों, बिन जहाज़ों पार हो जावे।।
निर्भय निर्वैर ओन्हुं मिले विश्रामी पलंग।
कैसा ओ चमक रिहा चमके ओ महान,
जपो भगवान, जपो भगवान।

इसीलिए तो कहते हैं कि सत्यवान यानि प्राणयुक्त बनो और एक साहसी इंसान की तरह सदाचारिता के मार्ग पर स्थिरता से बने रहो। यह अपनी यथार्थ प्रकृति में स्थित बने रहते हुए धर्म अथवा अध्यात्म अनुसार परस्पर बातचीत व वर्त-वर्ताव करने की बात है। जानो ऐसे अच्छी संगति में रहने वाले सजन ही एकात्मा के भाव से परस्पर मेलजोल रखने में समर्थ होते हैं। यही तो समभाव-समदृष्टि का सबक सिखाता है कि सबको एकसा समझो व देखो व परस्पर सजनता का व्यवहार करते हुए एकता, एक-अवस्था में बने रहो।

इस संदर्भ में सजनों हम सब स्वीकारेंगे कि आज के इस अधर्म व पापमय कलियुग में जहाँ दिन-रात, हर तरफ काम-क्रोध का नंगा नाच चल रहा है और सब तामसिकता और राजसिकता में बहकर अंधाधुंध दौड़ रहे हैं, दूसरे का पैर खींच कर आगे बढ़ने की होड़ है, ऐसे में मानव के मन-वचन-कर्म में सात्त्विकता का दर्शन एक अनूठा दृष्टांत ही है। याद

रखो आगे दो प्रकार से बढ़ा जाता है। एक तो अपनी प्रगति रेखा को उत्तरोतर कर्मठता और तेज से अग्रसर कर, और दूसरा, दूसरे की प्रगति रेखा को मिटाकर अपनी छोटी रेखा को बड़ी बनाने का कुचक्र रच कर। यद्यपि इस कलियुग में कुटिल प्रकार से, तिकड़म से ही आगे बढ़ने का प्रचलन है तथापि कुछ एक मनस्वी यानि बुद्धिमान, जागरूक और आदर्श मूल्यों के प्रणेता यानि रचयिता ऐसे भी सत्पुरूष हैं, जो दूसरे की रेखा को छोड़ अपनी ही प्रगति रेखा के विकास को अनवरत उन्नीत करते हैं। वस्तुतः इसी पद्धति के विकास की महत्ता है। यही पद्धति सात्विक है।

गुणों के विषय में हुई सारी बातचीत को समझने के पश्चात् सजनों यह ज्ञात होता है कि मनुष्य के आचरण, उसके क्रियाकलाप व उसके खानपान इत्यादि से यह स्पष्टता परिलक्षित हो जाती है कि उसमें प्रकृति के किस गुण की प्रधानता है। मनुष्य यदि सावधानीपूर्वक अपने को देखे यानि आत्ममंथन करता हुआ आत्मविश्लेषण करे तो वह ध्यान-धारणा, आत्मसंयम, आत्मविश्वास व अभ्यास के बल पर, अंतर्निहित सतोगुण को विकसित कर आत्मबोध कर सकता है तथा रजो व तमोगुणयुक्त पदार्थों व भाव-स्वभावों का त्याग कर इनसे उत्पन्न समस्त आधि-व्याधियों से बचा रह सकता है।

सारतः सजनों सर्वोत्तम सत् के भाव को ग्रहण कर अंत:प्रकृति के सर्वश्रेष्ठ गुण सात्विकता का अपने अन्दर विकास करो और इस तरह सम, सन्तोष, धैर्य, एकता, प्रीति, त्याग, मधुरता, दया, क्षमा, गंभीरता, वैराग, करुणा,

ईमानदारी, सत्यता, भद्रता, साहस, निष्कपटता, विशुद्धता, सजनता, दृढ़ता, निष्कामता, शीलता, परोपकारिता आदि आंतरिक विशेष भावों व सद्‌गुणों से युक्त होकर धर्म की राह अपनाओ। ऐसा होने पर ही अंतःकरण निरंतर स्वच्छ, निर्मल व पारदर्शी बना रहेगा और आप असीम प्रफुल्लता, आनंद व सुख-शांति को प्राप्त कर परम पुरुषार्थ की सिद्धि कर पाओगे। अंत में हम तो आपको सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ अनुसार यही कहेंगेः-

सच्चाई धर्म वर्तो ते वर्ताओ,
हां इन्सान हो तो इन्सानी दिखाओ।।
धर्म सच्चाई नूं फड़ लवो,
महाराज नाल न छडो प्रीत सजनों
सच्चाई धर्म ही नाल चलेगा,
इसे विच है तुहाडी जीत सजनों।

सजनों जीत या हार यह अब आपके अपने हाथ में है क्योंकि श्री साजन जी कहते हैंः-

(श्री साजन जी के मुख के शब्द)

शब्दः एक दा करो अजपा जाप,
फिर ब्रह्म शब्द दा पाओ प्रकाश।
एहो सजनों पकड़ो इतिहास,
फिर ब्रह्म स्वरूप है अपना आप।।

जन्म दी बाज़ी जित चाहे हार,
फिर जीत हार है तेरे हाथ।
अपने जन्म नूं न कर घात,
अपने जन्म नूं न कर घात।।

कुदरत ने तैनुं इन्सान बनाया,
इस जगत ते तां तूं आया उस ईश्वर दी है करामात।
अपने जन्म नूं न कर घात,
अपने जन्म नूं न कर घात।।

माता सजन जी दे गर्भ विच आया,
उस ईश्वर ने तेरा अंग अंग सजाया।
सूरज चांद दा डिट्ठा प्रकाश,
अपने जन्म नूं न कर घात अपने जन्म नूं न कर घात।।

उस ईश्वर दे तूं गुण गा लै,
उस ईश्वर दा ध्यान लगा लै
उस ईश्वर दा सिमरन कर के,
एहो धन दौलत चलेगा साथ।
अपने जन्म नूं न कर घात,
अपने जन्म नूं न कर घात।।

ख़बरदार अकल ते राहवीं,
बुरा संग कर अकल अपनी न गवावीं।
अकल न कर बरबाद,
अकल कर लै तूं आज़ाद।
अपने जन्म नूं न कर घात,
अपने जन्म नूं न कर घात।।

अकल है सारा जगजीत,
मीतां की ओ है ओ मीत अकल अपनी टिकाणे ला।
फिर तूं उस ईश्वर नूं पा,
फिर जीत जीत है तेरे हाथ।
अपने जन्म नूं न कर घात,
अपने जन्म नूं न कर घात।।

अकलवान ते ईश्वर रैहंदे प्रसन्न,
अकल इन्सान नूं करदी है दंग।
अकल वेदों में है विदित,
अकल वेदों में है अस्थित।
अकल है तुम्हारे पास, अपने जन्म नूं न कर घात,
अपने जन्म नूं न कर घात।।

शब्द:- सजनों जे दुनियां वल्लों मुख मोड़ लिया,
फिर दुनियां वल मुख करना क्यों।
ऐह दुनियां है जे मुसाफ़िरख़ाना इस दुनियां वल फिर मुख फेरना क्यों।।

(श्री साजन जी दे मुख दी शाख)

(सुनो मेरे सजनो ईश्वर तुहानूं की कैहंदे हिन)

मेरा नाम है बक्षन्द ओ सजनों हो तुसां अक्लमन्द मेरा नाम है बक्षन्द।
अपनी अक्ल दे नाल कुल दुनियां नूं जगाओ,
कुल दुनियां नूं जगाओ।
मेरा नाम है बक्षन्द ओ सजनों हो
तुसां अक्लमन्द मेरा नाम है बक्षन्द।।
अपनी अक्ल दे नाल दुनियां ते बुझिया दीपक जगाओ,
दुनियां ते बुझिया दीपक जगाओ।
मेरा नाम है बक्षन्द ओ सजनों हो
तुसां अक्लमन्द मेरा नाम है बक्षन्द।।
अपनी अक्ल दा है प्रकाश,
परउपकार कुल दुनियां ते दिखाओ,

परउपकार कुल दुनियां ते दिखाओ।
मेरा नाम है बक्षन्द ओ सजनों हो
तुसां अक्लमन्द मेरा नाम है बक्षन्द।।

इस संदर्भ में सजनों हम आप सब से पूछते हैं कि अक्ल किस-किस के पास है?

सभी के पास।

सजनों सब के पास अक्ल है तो उसे संभाल के मत रखो अपितु उसका विवेकशीलता से इस्तेमाल करना शुरू करो ताकि सबके समक्ष उस का प्रत्यक्षीकरण हो सके। अतः मात्र यह कहने तक ही सीमित न रहो क्योंकि कलियुग में तो हर इंसान ही यही दावा करता है कि मैं अक्लवान हूँ। इसी अक्ल की यानि 'मैं'-'मैं' की लड़ाई ही तो हर तरफ चल रही है। कोई अपने आप को कम बुद्धिमान नहीं समझता और न ही 'मैं' तुल्य किसी को मानता है। इसी झूठे अहंकार के कारण ही मानव एक-दूसरे की कदर नहीं करता और अन्यों पर अपना प्रभुत्व जमाए रखना चाहता है। सजनों यह घटिया किस्म का अहं-भाव होता है जो खुद को समझ नहीं आता और इंसान बेफ़जूल में तर्क-वितर्क करता है और बनती बात को भी बिगाड़ कर नुकसान पर नुकसान करता जाता है। यही अहंता का भाव उसे खा जाता है यानि उसको परमार्थ से दूर कर देता है। इसके विपरीत जो समभाव में स्थित रहता है वह ऐसा नहीं करता क्योंकि उसके अन्दर सत्य बोध करने की समर्थता होती है। वह किसी पर अपना आधिपत्य नहीं जमाता और जहाँ जरूरत होती है, वही सत्यता से अपना मत देता है। जीवन में उसे चाहे कितनी भी कठिन से

कठिन परिस्थिति का सामना क्यों न करना पड़े वह कभी हताश नहीं होता अपितु अपनी सूझबूझ, धीरता व विवेकशीलता से उस कठिनाई से उबरने का मार्ग निकाल ही लेता है। आपको भी सजनों सजन श्री शहनशाह महाबीर जी के मार्गदर्शन में ऐसा ही निपुण इंसान बनना है। यह कार्य आप किस प्रकार जाग्रति में बने रहते हुए सिद्ध कर सकते हो, इस विषय में हम आपको आगामी सप्ताह बताएंगे।

दिनाँक 12 मार्च 2017 का सबक़

जाग्रति - 1

साडा है सजन राम, राम है कुल जहान

अर्थात् ईश्वर हमारा मित्र/प्रियतम सर्वव्यापक है, उसी को जानो, मानो व वैसे ही गुण अपनाओ।

शब्द है गुरु, शरीर नहीं है,

अर्थात् ज्ञानी को नहीं ज्ञान को अपनाओ और निमित्त में नहीं नित्य में श्रद्धा बढ़ाओ।

इस पर सुदृढ़ता से डटे रह, इस अटल सत्य पर स्थिर बने रहोः-

ओ३म् अमर है आत्मा, आत्मा में है परमात्मा

सजनों गत सप्ताहों में त्रिगुणात्मक प्रकृति का अध्ययन करने के पश्चात् हमें ज्ञात हुआ कि सत्त्वगुण ही मानव की श्रेष्ठतम प्रकृति अर्थात् सद्भाव, सद्-विचार, सद्-आहार, सद्बुद्धि व विवेक का परिचायक है। निःसंदेह एक जाग्रत/जागरूक यानि सोच-विचार कर समस्त कार्य करने वाला सचेतन व कर्मठ इंसान ही हर पल सत्त्वगुण के इन समस्त आयामों के प्रति, सजग रह, निष्काम भाव से सत्कर्म करने में प्रवृत्त हो सकता है और इस तरह मानव जीवन के प्रयोजन को साकार कर सकता है। इसके विपरीत मोह-माया की गूढ़ी निंद्रा में सोया अचेतन इंसान अपने जीवन के प्रधान लक्ष्य के प्रति जागरूकता के अभाव में, संसारी अज्ञान में उलझ चौरासी लाख योनियों में भटकने के लिये मज़बूर

हो जाता है और दुर्दशा को प्राप्त होता है। तभी तो सजनों सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया है:-

जेहड़ा सोया पड़े अपना जन्म बरबाद करे,
जेहड़ा सोया सोया जागे जन्म आबाद करे।
जेहड़ा फ़र्ज़ अदा वल्लों रोए पड़े,
ओ चौरासी भुगतने नूं जाए खड़े।
ओ चौरासी भुगतने नूं जाए खड़े, जाए खड़े।।

सजनों सजन श्री शहनशाह महाबीर जी के द्वारे पर होने के बावजूद, हममें से किसी के साथ ऐसा न हो और हम इसी जन्म में ही अपने जीवन का मकसद सिद्ध कर पाएं, इस हेतु आओ जीवन में जाग्रति/जागरूकता के महत्त्व को समझते हैं:-

जाग्रति वह सचेष्ट यानि चेतनायुक्त अवस्था अर्थात् ज्ञानात्मक मनोवृत्ति है जिसके अंतर्गत मनुष्य को इंद्रियों द्वारा सब प्रकार के व्यवहारों और कार्यों का अनुभव होता रहता है। यह मानव के अंतःकरण यानि मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार आदि वृत्तियों की वह सजग अवस्था है जिसके अंतर्गत उसे सदा अपने इस चैतन्य स्वरूप का प्रबोध रहता है कि 'वह आंतरिक रूप से परमात्मा की सचेतन शक्ति है और इस अंतरस्थ वास्तविक निज के जागरण से ही उसका मन सत्यनिष्ठा व धर्मपरायणता के भाव से युक्त हो, आत्मीयता अनुरूप मानवीय आचार-व्यवहार दर्शा सकता है।' यह अपने आप में समभाव-समदृष्टि की युक्ति अनुसार सदा सजन भाव पर बने रहने की बात होती है। अन्य शब्दों

में तभी इंसान इन्द्रियों व मन के समस्त कार्यों और व्यापारों का परिज्ञान रखते हुए, अपने वास्तविक स्वरूप में स्थित रह सकता है और अपनी विवेकशक्ति द्वारा, सही-गलत, शुभ-अशुभ, करणीय-अकरणीय व कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य का बोध कर सद्-विचारों के ग्रहण व विधिवत् प्रयोग के प्रति उद्यत रह, आत्मोन्नति कर सकता है। इसीलिए तो कहते हैं किः-

जाग्रति, जाग्रति
निज के प्रति,
पौरुष बल के प्रति,
निज की पहचान कर,
अपने ही पौरुष बल द्वारा,
जो चाहो इस दुनियां में कर सकते हो।

जाग्रति जाग्रति
प्राण के प्रति,
मन के प्रति,
मन-प्राण को शांत कर,
इन्द्रियों की एकाग्रता,
साधे रख सकते हो, साधे रख सकते हो।

जाग्रति जाग्रति,
ज्ञान के प्रति,
विचार के प्रति,
आत्मज्ञान को आत्मसात् कर,
अपनी बुद्धि को,
सदा विवेकशील बनाए रख सकते हो।

जाग्रति जाग्रति,
आहार के प्रति,
व्यवहार के प्रति,
सात्विकता अपना कर,
आजीवन स्वस्थ और सदाचारी बने रह सकते हो।

जाग्रति जाग्रति,
परिवार के प्रति,
समाज के प्रति,
समभाव और सजन-भाव अपना कर,
पतन से उन्हें उबार पुनः नैतिक बना सकते हो।

जाग्रति जाग्रति
वर्तमान के प्रति,
भविष्य के प्रति,
वर्तमान में जाग्रत रह
हम अपने भविष्य को अपनी मुट्‌ठी में कर सकते हैं।
जाग्रत अवस्था मानस की सिद्ध कर सकती है हर काम,
परोपकार करते हुए भाव भी रहे निष्काम,
निष्काम ही तो है ब्रह्मज्ञान, ब्रह्मज्ञान ही तो है परमधाम,
विश्राम, विश्राम, विश्राम, विश्राम।

इससे सजनों स्पष्ट होता है कि जाग्रति हृदय में यथार्थ स्वरूप के प्रकाशित/प्रकट रहने की स्थिति है यानि आत्मा की जाग्रत अवस्था का प्रतीक है। इस अवस्था के अंतर्गत

जगत के सब कार्यव्यवहार करते हुए भी, इंसान को अपनी यथार्थ हस्ती का अर्थात् 'ओ३म अमर है आत्मा, आत्मा में है परमात्मा' का बोध बना रहता है और वह तद्नुसार 'विचार ईश्वर है अपना आप' के भाव से युक्त होकर, अकर्त्ता भाव से, समभाव-समदृष्टि के सबक अनुरूप, सदाचारिता पूर्ण, समृद्धिशाली जीवन व्यतीत करता है।

आशय यह है कि वह सत्य-धर्म का निष्काम उपासक, हर हाल में अपने मन को स्थिर यानि ब्रह्मलीन रखने में समर्थ होता है जिसके परिणामस्वरूप उसके मन में किसी प्रकार के संकल्प के उठने की संभावना नहीं रहती। जानो यही एक श्रेष्ठ मानव के परिपूर्ण सचेतन होने की पहचान होती है। यह जानते-समझते हुए सजनों हम कह सकते हैं कि इस मायावी जगत में विचरते समय, निज धर्म/गुण के प्रति जागरूक इंसान ही, इस विषयी जगत के विकारों यथा काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार आदि से अपनी रक्षा करने हेतु, सतर्कता से अपने ख़्याल पर ध्यान का पहरा रख सकता है और एक निर्विकारी, परिपूर्ण इंसान की तरह, अपनी गुण शक्ति आदि के द्वारा, अपने जीवन का हर कार्य धीरता व निर्विघ्नता से सिद्ध करता हुआ, अंत अपने जीवन लक्ष्य मोक्ष को प्राप्त कर सकता है।

अब जानो कि जाग्रति के अभाव में क्या होता है?

सजनों जान लो कि इसी जाग्रति के अभाव में ही, जब मन, बुद्धि तथा इन्द्रियाँ तमोनिद्रा में सो जाती हैं तो मनुष्य शारीरिक व मानसिक रूप से रोगी हो जाता है और इसी

दोष के कारण उसके जीवन का विकास अवरुद्ध हो जाता है। फलतः सांसारिक विषयों के वर्त-वर्ताव के कुप्रभाव के कारण, प्राणियों की चेतन वृत्तियाँ, शारीरिक व मानसिक स्तर पर, बीच-बीच में कुछ समय के लिए निश्चेष्ट होकर रूक जाती हैं। इसी कारण आत्मिक तत्त्व का प्रबोध नहीं रहता और सचेतन बुद्धि के स्थान पर अचेतनता व अवचेतनता पनपती है। यह दुष्क्रिया अपने आप में निज ज्ञान व यथार्थ शक्तियों से अपरिचित हो, अज्ञानमय नकारात्मक वातावरण को अपनाने की हेतु होती है। इस अवस्था में इंसान का मन सदा आकुल व पीड़ित रहता है और वह धीरे-धीरे एक सुप्त इंसान की तरह बेसुधी में जीवन जीने का आदी हो जाता है। इस बेसुधी की दशा में मानव का सारा स्वत्व, पाँच चोर यथा काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार आदि लूट कर ले जाते हैं। परिणामतः उस मानव के मन की शांति भंग हो जाती है और संतोष-धैर्य के अभाव में वह जीवन में कुछ भी सत्य-धर्म की मर्यादा अनुसार करने में असमर्थ हो जाता है। इस तरह परमार्थी धन की तरफ से कंगाल वह मानव स्वार्थपरता अपना, आजीवन झुखते-रोते हुए आप तो दुःख भोगता ही है, साथ ही संगी-साथियों में भी दुःख ही बाँटता है। इंसान की इसी हालत के दृष्टिगत सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया हैः-

गूढ़ी निद्रा विच तूं सौं गयों,
पंज चोर खड़े ने सिरांधी।
जेहड़े वेले जागियों होयों हैरान,
लुट गए चोर घर होया विरान।।

इस तरह आध्यात्मिक, भौतिक व आत्मिक तौर पर सब कुछ

गँवा बैठने के बाद जब वह मानव बुरे परिणाम को प्राप्त होता है तो सिवाय चिंता या पछतावे के अतिरिक्त उसको कुछ प्राप्त नहीं होता। परिणामतः उसका ख़्याल उर्ध्वमुखी होने के स्थान पर पतनोन्मुख हो इतना पतित हो जाता है कि अपनी सुध-बुध ही खो बैठता है। इस तरह उस अविवेकी का जीवन पथ अंधकारमय हो जाता है और उसके लिए, निषंग होकर सत्य-धर्म के रास्ते पर चलना असंभव हो जाता है। फिर वह स्वार्थी व छली-कपटी जीवन में जो भी करता है, उसका भेद कोई नहीं पा सकता।

यह अपने आप में जगत से आज़ाद रहने के स्थान पर, मोह-माया में फँस, झंझटों व उलझनों में पड़ जाने की व परिपूर्ण सचेतनता खो अपने जीवन लक्ष्य व कर्त्तव्यों के प्रति प्रगाढ़ निद्रा में सोते हुए पागलों जैसा झूठा जीवन जीने की बात होती है। इसके परिणास्वरूप उस दरिद्र संकोची के मन में अपने ही प्रति हीन भाव पैदा हो जाती है जो स्वयं उसके ही नहीं अपितु उसके कुटुम्ब-कबीले के विनाश का कारण भी बनता है। सजनों ऐसा होने पर मानव का आत्मतत्त्व से सम्बन्धविच्छेदन हो जाता है और इंसान मनमत के अधीन हो, जन्म-मरण के चक्रव्यूह में फँस जाता है। ऐसे सजनों के विषय में सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया है:-

सुनो साजन जी कलुकाल दी,
साजन जी सुनो कहानी साजन जी सुनो कहानी।
इस वक्त मौजां माण रहे सजन,
फिर न मौज ओ जाणी, साजन जी सुनो कहानी।।
खड़ा लटकदा खड़ा पटकदा खड़ा भटकदा,

सुत्तयां रैण विहाणी सजनों सुत्तयां रैण विहाणी।

इसी आवागमन के चक्रव्यूह से बचाने हेतु सजनों आपको भी जागने का आवाहन दिया जा रहा है। इस आवाहन से निःसंदेह सोने वाले तो जाग सकते हैं, पर जो जागकर सोए हैं, उन्हें कैसे पुनः जगाएँ, यह हमें समझ में नहीं आता। उन्हें तो हम यही कह सकते हैं कि इस बात पर विचार करो और ख़्याल को नैतिक पतन अवस्था से उबार, पुनः उन्नत अवस्था में आ जाओ। इस संदर्भ में सजनों शास्त्र कह रहा है:-

खावन पीवन विच दिन न बिताइयो,
निंद्रा विच न रात।
नाम ध्यान विच इस्थर रहियो,
जपियो अजपा जाप।।
पालना करो हनुमान जी दे वचनां दी,
पकड़ियो अपना आप।
फिर खालस सोना खोट न राहवे,
ज्योति स्वरूप दा पाइयो प्रकाश।।

सजनों याद रखो परमात्मा से प्राप्त इस अनमोल मानव जीवन को लापरवाही व अज्ञानता के कारण मोह-माया में लिप्त होकर, सोने-खाने-पीने व ऐशो-आराम में बिता देना मूर्खता है। यह आत्म मूल्यांकन व आत्म साक्षात्कार के अभाव में आत्मविकास के मार्ग को खुद अवरुद्ध करना है और अपनी परिस्थितियों व समस्याओं से पलायन कर अवनति को प्राप्त होना है यानि संसार में व्यर्थ भटकना है।

सजनों ऐसे ही इंसान के लिए जो जीवन के परम पुरुषार्थ की तरफ से सोया रहता है, कहा गया है कि जो सोवत है सो खोवत है व जो जागत है सो पावत है अर्थात् जागरण उन्नति का लक्षण है व शयन अवनति का। अन्य शब्दों में सोना कलियुग का प्रतीक है और जागना सतयुग का। अतः सजनों सतयुग में प्रवेश पाने हेतु उठो, जाग्रति में आओ और कलियुगी भाव-स्वभाव तबदील कर, अपना लक्ष्य सिद्ध करो।

जाग्रति में आने के लिए सजनों याद रखो कि जागरूकता का होना नितांत आवश्यक है। जागरूकता से तात्पर्य निद्राशून्यता, सचेतता, प्रबुद्धता अर्थात् बोध सहित जागने से है जिसके लिये निद्रा, आलस्य, अज्ञान, मोह, अकर्मठता व मूढ़ता/जड़ता का त्याग नितांत आवश्यक है। सजनों जानो कि ये तत्त्व मनुष्य को असावधान व अचेतन बनाते हैं व जागरूकता के पूर्ण विरोधी होते हैं। अतः हानिकारक जानकर इनका त्याग कर दो और जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में, हर अवस्था में, हर परिस्थिति में, आठों पहर, आत्मचिन्तन एवं आत्म निरीक्षण द्वारा शारीरिक, मानसिक व आत्मिक रूप से होशियार व जाग्रत रहना सीखो। इस कार्य की सिद्धि हेतु सजनों सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में विदित समभाव-समदृष्टि की युक्ति अनुसार जगत के समस्त कार्यव्यवहार करते हुए, अपना ख़्याल व ध्यान प्रभु के चरणों में यानि आद् ज्ञान स्रोत में अफुरता से जोड़े रखो और इस तरह शब्द ब्रह्म विचार प्राप्त कर सचेतन बने रहो व हृदय सचखंड बना लो।

इस संदर्भ में याद रखो कि जिसका ख़्याल व ध्यान पूर्णतः

परमतत्व यानि एक ही ओर लगा होता है उस एकाग्रचित्त का ही मन सदा शांत रहता है। ऐसा इंसान ही जाग्रत कहलाता है। वह ही विवेकशीलता से काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, स्वार्थपरता आदि अवगुणों को त्याग करने का अदम्य पुरुषार्थ दिखा पाता है और अभीष्ट सिद्धि हेतु, निरंतर एकाग्रता, तल्लीनता व पूर्ण सजगता यानि सतर्कता व सावधानी से लक्ष्य अभिमुख हो सकता है।

सजनों यहाँ पर समभाव-समदृष्टि की युक्ति अनुसार, 'एक ख़्याल एक दृष्टि (अर्थात् ध्यान), एक दृष्टि एक दर्शन' होने की महत्ता स्पष्ट होती है और ज्ञात होता है कि क्यों श्री साजन परमेश्वर हमें 'ख़्याल ध्यान वल व ध्यान प्रकाश वल' जोड़े रख अफुर होने का निर्देश दे रहे हैं। अन्य शब्दों में सजनों यही पूर्णतः जाग्रत यानि चैतन्य हो, सर्वव्यापक अपने यथार्थ रूप का बोध करने की बात है। यही उन्नति तथा ज्ञानोदय का लक्षण है। सजनों ज्ञानोदय यहाँ साहस का पर्याय है जो आत्मनिर्भरता से आता है। आत्मनिर्भरता स्वअर्जित आत्मिक ज्ञान से आती है। यह आत्मिक ज्ञान, शब्द ब्रह्म से प्रस्फुटित होता है और हृदय में ऐसे निर्मल वातावरण की सृष्टि करता है, जिससे मानव निज प्रकृति को नियंत्रित कर सकता है अर्थात् अपने मन, बुद्धि, विचार, भाव-भावना, व्यवहार और कल्पनाओं को संयमित रख जितेन्द्रिय बन सकता है और संतोष-धैर्य अपना कर, सच्चाई-धर्म की निष्काम राह पर निर्विघ्न चलते हुए परोपकार कमा सकता है। इस प्रकार यह ज्ञान मुक्ति का प्रतीक होता है जिसके लिए सतत् जागरण आवश्यक होता

है। ऐसा होने पर ही वह सत्यनिष्ठ मानव लौकिक, नैतिक, सामाजिक व आध्यात्मिक धरातल पर अपने जीवन कर्त्तव्यों के निर्वाह के प्रति, शारीरिक व मानसिक रूप से जागरूक रह पाता है और सदैव ऐक्य भाव में बना रह अपने सत्-चित्त-आनन्द स्वरूप में स्थित रह पाता है।

सजनों आप हम सब भी प्रसन्नतार्पूवक जीवनयापन करते हुए पूर्ण चैतन्य बने रह सकें, इस हेतु इस विषय को और स्पष्टता व सूक्ष्मता से आगामी कक्षा में बताया जाएगा।

दिनाँक 19 मार्च 2017 का सबक़

जाग्रति - 2

साडा है सजन राम, राम है कुल जहान
अर्थात् ईश्वर हमारा मित्र/प्रियतम सर्वव्यापक है, उसी को जानो, मानो व वैसे ही गुण अपनाओ।

शब्द है गुरु, शरीर नहीं है,
अर्थात् ज्ञानी को नहीं ज्ञान को अपनाओ और निमित्त में नहीं नित्य में श्रद्धा बढ़ाओ।

इस पर सुदृढ़ता से डटे रह, इस अटल सत्य पर स्थिर बने रहोः-
ओ३म् अमर है आत्मा, आत्मा में है परमात्मा

सजनों गत सप्ताह हमने जाना कि जाग्रति/जागरूकता व्यक्ति के मन की दुर्बलताओं का नाश करके उसके जीवन का विकास तो करती ही है, साथ ही दूसरों के सहयोग, भलाई, कल्याण के मार्ग को भी प्रशस्त करती है। गहन चिन्तन एवं सूक्ष्म निरीक्षण से जागरूक हुआ व्यक्ति अहंकार, स्वार्थ, मोह, लोभ, क्रोध आदि मानवीय अवगुणों को त्याग देता है। अपने विवेक से उचित-अनुचित का निर्णय ले, अपने शारीरिक-मानसिक स्वास्थ्य यथा खान-पान, पौष्टिक आहार, सद्-विचारों व पर्यावरण, शिक्षा आदि के प्रति सचेतन हो जाता है और सत्कार्यों को क्रियान्वित करने में सक्षम हो जाता है। वस्तुतः जाग्रत व्यक्ति ही दूसरों के भीतर जागरूकता व्याप्त करने में समर्थ हो सकता है इसीलिए

फिर वह सर्वहितकारिता की भावना से ओत-प्रोत हो समाज के अन्य सदस्यों को भी निष्ठापूर्वक सुधारने का प्रयास करता है यानि औरों के लिए भी सदाचार का मार्ग प्रशस्त करता है। आओ अब इससे आगे जानते हैं:-

सजनों सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में सजन श्री शहनशाह महाबीर जी कह रहे हैं:-

सुत्ते ओ कुवेल, हुण जागो सवेल,
हनुमान जी भुलयां नूं जगाई रखदा।
राम नाम दी रटन लगवाई रखदा,
ओ३म् हुन जागो हुन जागो।
हुण जागो हुण जागो ख़बरदार होवो,
हुण जागो हुन जागो।।

अर्थात् हम जन्म-जन्मांतरों से भूले-भटके बेसुध जीवों को, तमोघ्न यानि अज्ञान की घोर निद्रा से जागने का निर्देश देते हुए सजन श्री शहनशाह हनुमान जी, कह रहे हैं कि हे बेसमय सोए हुए इन्सानों ! अब जागो और खबरदार हो जाओ क्योंकि शुभ प्रभात अर्थात् स्वर्णिम युग का सूर्य अब उदित हो रहा है। इस प्रकार सजनों आने वाले समय को दृष्टिगत रखते हुए, वस्तुतः वह हमें स्वधर्म की रक्षा हेतु, निज यथार्थ व उसकी शक्ति, व्यक्तिगत-पारिवारिक-सामाजिक दायित्वों व कर्त्तव्य-कर्मों तथा सदाचार पूर्ण सतयुगी आचार-संहिता अपनाने के साथ-साथ, मानव जीवन की चरम उपलब्धि के प्रति जागरूक करने का प्रयत्न भी कर रहे हैं ताकि हम हकीकत में इस मानव जीवन का

आनन्द मानते हुए व कर्म फल से मुक्त रह सर्वहितकारी भी सिद्ध हो सकें।

इस संदर्भ में सजनों यह समझना अनिवार्य है कि काल की गति निर्बाध है, उसकी धारा सतत् प्रवाहमान है। वहाँ सर्वत्र निरंतरता है। खंडबोध नहीं है। इस काल को तीन खंडों में बाँटा गया है- भूत, वर्तमान और भविष्य। याद रखो न भूत की सत्ता होती है, न भविष्य की। जब तक घड़ी देखकर समय का बोध करते हैं, कुछ सैकेंड बीत जाते हैं। देखते-देखते वर्तमान, अतीत की गाल में समा जाता है। वस्तुतः उस वर्तमान को पल भर निहार भी नहीं पाते कि वह अतीत बन जाता है, जो क्षण भर पहले भविष्य की गर्भ में था। वह उछलकर कैसे वर्तमान बन गया और अतीत में समा गया- इसे समझना है। इस हेतु क्षण-क्षण रेत कण के समान मुट्ठी से फिसलते वर्तमान को सहेजना होगा क्योंकि वर्तमान ही जीवन है और यही हमारे विकास का मूलमंत्र है। इस वर्तमान को सफल बनाने का एक ही उपाय है और वह है सतत् जागरण। जो सर्वदा जागरूक है वही विजयी है और वही इस अज्ञान, अंधकार व पाप के प्रतीक कलियुग में रहता हुआ भी सतयुग का प्रतीक बन सकता है।

सजनों ऐसा सदाचारी सतयुगी इंसान बनने के लिए हमें अपने ख़्याल को वर्तमान पतित अवस्था से उबार कर उन्नत करना है। इस हेतु भौतिक ज्ञान अर्जना के साथ-साथ, जगत में भटके हुए अपने ख़्याल को समभाव-समदृष्टि की युक्ति अनुसार, चेतन आत्मा के साथ सदैव जोड़े रखने में कुशल बनना है और इस तरह सजन भाव का व्यवहार करने

में निपुण बनना है। इस युक्ति में निपुणता द्वारा ही हम निर्मल आत्मिक प्रकाश को ग्रहण करने के योग्य बन सकते हैं और हमारी अन्दरूनी व बैहरूनी वृत्तियाँ एकरस स्वच्छ हो सकती हैं। परिणामतः हमारी बुद्धि तीक्ष्ण हो सकती है और ख़्याल की अफुरता व ध्यान की स्थिरता सधी रह सकती है। यह एकता, एक अवस्था में बने रह परस्पर सत्य-धर्म अनुसार निष्कपट जीवन व्यवहार करने की बात होती है। इस संदर्भ में याद रखो जो सदा नित्य प्रति अपने क्रियाक्लापों की शुद्धता के प्रति जाग्रत रहता है यानि युक्तिसहित आत्मनियंत्रण रखने में लापरवाही नहीं दिखाता उसके लिए अपनी प्रारब्ध को आने वाले स्वर्णिम भविष्य अनुरूप ढालना कोई कठिन कार्य नहीं रहता।

इस संदर्भ में सजनों मत भूलो कि जागरूकता मनुष्य की वह विशेषता है जो उसे कर्मठ बनाये रखती है, उसमें जीवन शक्ति का संचार करती है, चतुर्दिक परिवेश के प्रति उसे सजग रखती है तथा परम तत्त्व को प्रत्यक्ष महत्त्व और अंगीकार करने की शक्ति प्रदान करती है। याद रखो बाह्य और आन्तरिक सभी प्रकार के जीवन चक्रों का बोध कराने वाली शक्ति जागरूकता ही है। जागरूकता तारती है, सुषुप्ति डुबोती है। जागरूकता के अभाव में कोई कार्य पूर्ण नहीं होता। अतः यदि मनुष्य को सफलता प्राप्त करनी है तो उसके लिये जागरूक होना अनिवार्य है। याद रखो मानव जीवन के उत्कर्ष के प्रति जागरूकता उतनी ही अनिवार्य है जितनी जीवित रहने के लिये आक्सीजन। जागरूकता के अभाव में ही अज्ञान, पाप, हिंसा, अविद्या, अनाचार, निराशा, संत्रास, अशान्ति व दुःख आदि पनपते हैं। इसके विपरीत

जागरूक रहकर किए गए कार्य कभी निष्फल नहीं जाते यानि जागरूकता में ही जीवन की सफलता छिपी रहती है। इसीलिए तो समभाव-समदृष्टि के इस स्कूल से, जीवन के हर पहलू में आत्मिक ज्ञान के प्रयोग द्वारा जाग्रत रहने की बात गत वर्षों से चल रही है।

इस विषय में सजनों यदि आध्यात्मिक दृष्टिकोण से दृष्टिपात किया जाए तो ज्ञात होता है कि जागरूकता मनुष्य को लघु से विराट बनाती है। वही व्यक्ति जीवन के उत्कर्ष को प्राप्त कर सकता है, जो पूर्णतया जागरूक है। जागरूकता व्यक्ति के अंह का नाश कर उसमें श्रद्धा और प्रेम का पोषण करती है। तृष्णा, क्रोध, भय आदि वृत्तियों को नष्ट कर प्रज्ञा को स्थिर करती है। चारों ओर जागरूक रहने से आत्माभिव्यक्ति जाग जाती है, जिसके फलस्वरूप व्यक्ति के सारे सांसारिक व्यवहार और क्रियाकलाप उस प्रभुसत्ता को समर्पित हो जाते हैं, जिसके बिना ब्रह्माण्ड का पत्ता भी नहीं हिलता। ऐसी अवस्था में इंसान सहसा ही कह उठता है:-

करन करावन आपे ही आप,
मन में सजनों करो विश्वास
सारा खेल खिलारा सजनों उसे दा है।

इस प्रकार जागरूकता के द्वारा जिसके अन्तःचक्षु खुल जाते हैं व जीवन की क्षुद्र वासनाओं का विलय हो जाता है, उसे यह सत्य समझते देर नहीं लगती कि जिस निधि को वह बाहर खोज रहा है वह उसके भीतर विद्यमान है। अनन्त का अनुभव क्षण में कराने वाली वैयक्तिक चेतना की मूलाधार

शक्ति जागरूकता ही है, इसी में जीवन की उपलब्धि और सार्थकता निहित है। इसके विपरीत सुप्त और जड़ स्थिति वाला चित्त कभी भी चैतन्य को प्राप्त नहीं होता। अज्ञान की गहन निद्रा का त्याग करने से, विवेक और बुद्धि के बल से जागरूकता उत्पन्न होने पर मनुष्य का देहाभिमान नष्ट हो जाता है। इस स्थिति में परमात्म ज्ञान का अवलम्ब ग्रहण कर जहाँ-जहाँ भी उसका मन जाता है, वहाँ-वहाँ उसे अमृतत्व का अनुभव होता है। स्व-स्वरूप अखण्ड ब्रह्म का साक्षात्कार हो जाने पर, अज्ञान और अज्ञानजनित कार्य जो जगत तथा उनके द्वारा संचित जो कर्म-संशय-भ्रम आदि हैं, उनके प्रति जागरूक होने से, मनुष्य जीवन के समस्त बन्धन टूट जाते हैं, वह पूर्णतः ब्रह्मलीन हो जीवनमुक्त हो जाता है। यही सजनों जाग्रति का महत्त्व है।

सारतः सजनों जागरूकता के महत्त्व को सूक्ष्मतः अन्य पहलू से समझने हेतु जानो कि मानव जीवन एक यज्ञ यानि धार्मिक कृत्य है और भगवान श्री विष्णु यज्ञ पुरुष अर्थात् यज्ञात्मा हैं। व्यक्तिगत कामनाओं/इच्छाओं और आसक्ति की आहुति देकर कर्म फलों को होम करना व आत्मीयता की भावना से युक्त होकर, वैश्विक कल्याण के निमित्त, अपनी प्रतिभा, विद्या, बुद्धि, समृद्धि, सामर्थ्य, तन, मन और धन को परमार्थ प्रयोजन में समर्पित करना, मानव जीवन के इस यज्ञ का सच्चा प्रयोजन है। इस प्रयोजन सिद्धि हेतु सजनों सतत् जाग्रति में रह इस यज्ञ की पूर्ण आहुति के निमित्त अपना सर्वस्व त्यागना, विषम परिस्थितियों में भी यज्ञाग्नि के समान अपनी चारित्रिक प्रखरता बनाए रखना, जीवन भर पुरुषार्थ करते रहना और कर्त्तव्य पथ से विलग न होना आवश्यक है।

इस परिप्रेक्ष्य में सजनों यज्ञ की निर्विघ्न सम्पन्नता में निष्कामता का भी अतुलनीय महत्त्व है क्योंकि फल की आकांक्षा से रहित यज्ञ ही सात्विक कहलाता है। इसके विपरीत दंभ आचरण अर्थात् प्रदर्शन व स्वार्थ लाभ के लिए किया गया यज्ञ राजस दोष से युक्त हो जाता है। यह निष्कामता भी सजनों जाग्रति से ही आती है।

सजनों हम सब भी एक यज्ञ कर्त्ता की तरह इस जीवन यज्ञ को निर्विघ्न सम्पन्न करने के प्रयोजन में सफल हो सकें इस हेतु हमें इस यज्ञ की समुचित क्रियाओं का पूर्ण ज्ञान प्राप्त करना है ताकि इस यज्ञ में विघ्नकारी राक्षस वृत्तियाँ हमारे अन्दर उत्पन्न न हो जाएं। इस हेतु हमें सर्वप्रथम यज्ञशाला के स्थान हृदय अर्थात् अंतःपुर को विशुद्ध करना है। तत्पश्चात् नेक नीयती व त्याग भावना से युक्त होकर इस धार्मिक कृत्य को पूर्ण जागरूकता से, संकल्प रहित होकर सम्पन्न करना है। आशय यह है कि यज्ञ के दौरान अपने पाप कर्मों के चक्रव्यूह में उलझे रहने के स्थान पर, आत्मीयता के गुणों अनुसार, परमात्म स्वरूप होकर यथार्थ जीवन प्राप्त करने हेतु, यज्ञाग्नि में कर्म फलों को होम कर देना है। याद रखना है कि हमारे कर्म फल ही हमारे इस जीवन यज्ञ के विध्वंसक हैं। अतः इस विध्वंसकारी शक्ति से अपने ख़्याल को रक्षित रखने हेतु हमें शब्द ब्रह्म विचार ग्रहण कर, उनका विधिवत् प्रयोग करने की कला में निपुण बनना है। ऐसा करने पर मन में ऐसी प्रलय आ जाएगी जिससे जीवन की समस्त आधि-व्याधियों व सांसारिक इच्छाओं का नाश होगा। फलतः जीवन की काया कल्प हो जाएगी, जीवन में निरोगता व नवीनता का उद्भव होगा और अंतःकरण में

ऐसा दिव्य, अद्भुत, इलाही व अनूठा यथार्थ स्वरूप उपस्थित हो जाएगा जिसकी सुन्दरता का बखान नहीं हो सकता। यह होगा ख़्याल का बाह्य जगत/नश्वरता से नाता तोड़ अंतर्जगत अर्थात् नित्यता से जा जुड़ना। ऐसा होने पर मनमानी व बनावटी बातों से छुटकारा प्राप्त हो जाएगा और हम सम, संतोष, धैर्य, सच्चाई, धर्म जैसे गुणों से अलंकृत हो, खालस सोना हो जाएंगे। तब हृदय में व्याप्त यथार्थ परमेश्वर स्वरूप का बोध होगा और यज्ञ की समाप्ति पर हम परमार्थी धन अर्थात् परमपद प्राप्त कर, अमीरों के भी अमीर हो जाएंगे व अजर-अमर कहलाएंगे। सजनों यह है जागरूकता की सर्वोत्तम उपलब्धि।

इस उपलब्धि हेतु सजनों जीवन की प्रधान नीति और उद्देश्य, जीवन यज्ञ की निर्विघ्न सम्पन्नता हेतु ही निर्धारित करो अन्यथा जीवन का प्रयोजन विफल हो जाएगा। घबराओ नहीं, अपितु विश्वास रखो कि जगत के पालक व रक्षक परमेश्वर जो जगत सेतु हैं, उनके संग बने रहकर, हम सहजता से मृत्यु के चंगुल से मुक्त हो सकते हैं व इस तरह सरलता से आनन्दपूर्वक इस जगत रूपी भवसागर को पार कर सकते हैं। अतः उस जगत-गुरु के शब्द ब्रह्म विचारों को सजनों जानो-समझो व अमल में लाओ। ऐसा सुनिश्चित करने हेतु, तत्क्षण मोह-माया की निद्रा त्याग कर, सचेत व सावधान हो जाओ और इस प्रकार निरंतर जाग्रत अवस्था में बने रह अर्थात् बुद्धि को प्रकाशित रखते हुए, इस अनमोल जीवन यात्रा को सम्पन्न करो।

इन्हीं शुभकामनाओं के साथ।

दिनाँक 26 मार्च 2017 का सबक़

पुनरावृत्ति

साडा है सजन राम, राम है कुल जहान
अर्थात् ईश्वर हमारा मित्र/प्रियतम सर्वव्यापक है, उसी को जानो, मानो व वैसे ही गुण अपनाओ।

शब्द है गुरु, शरीर नहीं है,
अर्थात् ज्ञानी को नहीं ज्ञान को अपनाओ और निमित्त में नहीं नित्य में श्रद्धा बढ़ाओ।

इस पर सुदृढ़ता से डटे रह, इस अटल सत्य पर स्थिर बने रहोः-
ओ३म् अमर है आत्मा, आत्मा में है परमात्मा

सजनों समभाव-समदृष्टि का स्कूल खुले तीन वर्ष हो गए। इन तीन वर्षों में सजनों हमको सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में वर्णित, शब्द ब्रह्म विचारों अनुसार सविस्तार, आत्मिक ज्ञान प्रदान कर, आत्मीयता में ढलने के प्रति जाग्रत करने का प्रयास किया गया। इस के साथ ही उचित परिणाम प्राप्त करने के लिए यानि इन शब्द ब्रह्म विचारों को कर्मठता व समझदारी से अमल में लाने हेतु हमको, बुधवार के बोर्डों में समझाई गई युक्तियों से भी सूक्ष्मता परिचित कराया गया ताकि हम एक श्रेष्ठ मानव के रूप में ढलने के प्रति, किसी प्रकार से भी कमज़ोर न रहें। सबकी जानकारी हेतु बुधवार के इन तीन बोर्डों के अंतर्गत पहले बोर्ड में पढ़ाई, दूसरे बोर्ड में रैहणी-बैहणी तथा तीसरे बोर्ड में वर्त-वर्ताव करने का तरीका हमको समझाया गया।

इस विषय में सजनों, हमने जो-जो भी गत वर्षों में पढ़ा-समझा है, आओ सारतः उसे पुनः जानते हैं और आत्मनिरीक्षण करते हुए, व्यक्तिगत रूप से अपना नतीजा आप लेते हैं कि हम इस आत्मीयता

से परिपूर्ण आचार-संहिता को अपनाकर, अपने जीवन को सार्थक दिशा देने में, कितने कामयाब हुए हैं व एक श्रेष्ठ व नेक मानव की तरह, अर्थपूर्ण जीवन जीते हुए, पूर्ण सफ़लता प्राप्त करने हेतु, यानि इस अनमोल मानव जीवन का प्रयोजन सिद्ध करने हेतु, अभी हमें अपनी किन कमियों को दूर करना है। सजनों ध्यान से सुनना कि समभाव-समदृष्टि के इस स्कूल से, सजन श्री शहनशाह हनुमान जी के तेज-प्रताप व जीवन सफ़ल बनाने हेतु युक्तियों से परिचित कराते हुए, किस प्रकार अब तक हम सजनों का भाग्योदय करने का प्रयत्न किया गयाः-

1. 'विचार ईश्वर आप नूं मान' के सत्य का युक्तिसंगत बोध कराया गया ताकि हम 'ईश्वर है अपना आप प्रकाश, ईश्वर है जे अजपा जाप', इस तथ्य को अपनाने योग्य बन सकें और इस तरह ईश्वर को अपने से अलग जानने व मानने के अविचार में फँसने से बचे रह, सहजता और स्वतन्त्रता से, ईश्वरमय होकर सार्थक जीवन जी सकें। अन्य शब्दों में सजनों इस द्वारा हमको अविचार जो कठिनाईयों व उलझनों भरा रास्ता है व जिसका नतीजा हार है, उससे बचा, विचारयुक्त सवलड़े रास्ते पर चढ़ाने का यत्न किया गया ताकि हम सुखदाई कमाई कर, जीत-जीत और फ़तह-फ़तह प्राप्त कर सकें। इस हेतु सजनों हमें समर्पित भाव से, सम्पूर्ण जगत में, उसी परमेश्वर का वास होने का अनुभव करते हुए, एक कर्त्तव्यपरायण सुपुत्र की तरह, उन्हीं के चरणों में बने रहने के लिए प्रेरित किया गया।

2. 'शब्द है गुरु, शरीर नहीं है' इस तथ्य से परिचित कराते हुए, निमित्त के स्थान पर नित्य को व ज्ञानी के स्थान पर ज्ञान को अपनाने के लिए प्रेरित किया गया ताकि हम 'मूलमंत्र आद् अक्षर' को शब्द गुरु के रूप में स्वीकारें व उसके वचनों की प्रवानगी द्वारा, अंतर्निहित दिव्यता का द्वार खोल, निज आत्मस्वरूप का बोध करते हुए, उसे अपने मन-वचन-कर्म द्वारा प्रकट भी कर सकें। ऐसा

पुरुषार्थ दिखाने पर ही हम, इस नश्वर जगत व देह में विशेष रूप से विचरते हुए भी, सदा उससे निर्लेप अर्थात् रूप-रंग-रेखा के प्रभावों से मुक्त रहेंगे और अपनी पूजा-मानता में नहीं फँसेंगे।

3. तदुपरांत पथप्रदर्शक सजन श्री शहनशाह महाबीर जी के वचनानुसार, 'मूल मंत्र शब्द को गुरु' बताते हुए हमको समझाया गया कि, यह तेरी ही ब्रह्म सत्ता है जो कोने-कोने, डाली-डाली, हर अन्दर जाप रही है व हाज़रा हज़ूर प्रकाश रही है। इस तरह इस ब्रह्म सत्ता को ग्रहण कर, अपना आप पहचानने की युक्ति समझाई गई ताकि हम आत्मिक ज्ञान प्राप्त कर 'खुद हूँ मैं आप भगवान' के यथार्थ को स्वीकार सकें और भ्रमित बुद्धि इंसानों की तरह, ईश्वर को इधर-उधर स्थित देवालयों में, यानि मंदिर-मस्जिद, समाज-गुरुद्वारों में, जंगलों में, पहाड़ों में, तीर्थ स्थानों आदि में, ढूँढने के भटकाव से बचे रह, एक परम शक्तिशाली व विवेकशील इंसान की तरह, इस जगत में ब्रह्म भाव अनुसार, निर्भयता से विचर सकें।

4. सजन शब्द की महानता से अर्थ सहित परिचित कराते हुए, सजन-भाव को युक्तिसंगत वर्त-वर्ताव में लाने के लिए प्रेरित किया गया ताकि हम जिह्वा से सबको सजन बुलाते हुए, अपने यथार्थ स्वरूप का साक्षात्कार कर सकें और यह सारा ब्रह्मांड हमारे लिए एक सजन हो जाए। अन्य शब्दों में यह तरीका है, समभाव-समदृष्टि की युक्ति अनुसार, समभाव नज़रों में कर व सजन वृत्ति फड़, सजन-भाव प्रकृति में लाने का और अपना घर सतयुग बनाने का। इस तरह ही संकल्प रहित हो हम, एक निगाह एक दृष्टि द्वारा, कदम-कदम पर विचार पकड़ते हुए, दिव्य दृष्टि प्राप्त कर व एकात्मा के भाव से युक्त हो, परमात्मा से मेल खा, ज्योति स्वरूप जो अपना आप है, उसकी पहचान कर सकेंगे और रोशन हो जाएंगे। सजनों यह यत्न था हमको परस्पर द्वि-द्वेष, वैर-विरोध, लड़ाई-झगड़े, तेरी-मेरी, अपने-पराए इत्यादि के भाव से मुक्त रख, एकता और एक अवस्था में ला, प्रसन्नचित्तता से परस्पर मित्रता, प्रियता व

सहृदयता का यानि सजनता का आचार-व्यवहार सिखा, सजन पुरुष बनाने का।

5. सतवस्तु की रामसत् के द्वारा, आत्मिक ज्ञान की पढ़ाई स्वयं पढ़ते हुए व अमल में लाते हुए, घर-परिवार व संगी-साथियों को भी, इसके प्रति सचेत करने का निर्देश दिया गया ताकि सब एक चाल अपना कर, एक साथ उत्थान पथ पर अग्रसर हो सकें। इसके द्वारा हमकोः-

क) गृहस्थ-धर्म को ठीक निभाते हुए यानि अपनी हैसियत अनुसार विचरते हुए, व साग को कड़ाह समझते हुए, परिवारजनों व बुर्जुगों के प्रति, अपने दायित्वों का पालन, धीरता से हँसकर करने के लिए, प्रेरित किया गया व साथ-साथ जो लापरवाही वश, इस धर्म से विमुख हो, विकारों में रुढ़ रहे हैं, उन्हें भी सावधान कर, संभालने के लिए उत्साहित किया गया ताकि सबका उजड़ा हुआ घर बस जाए।

ख) सत् का वर्त-वर्ताव करते हुए, सच्चाई-धर्म के निष्काम रास्ते पर, ठीक से निरंतर चलने के लिए उत्साहित किया गया व साथ ही जो इससे विमुख हो चोरी-ठगी, छल-कपट व असत्य आचरण करने के कारण, कुकर्म-अधर्म के मार्ग पर बढ़ गए हैं, उन गिरते हुओं को यह बता कर कि 'सच बोलो, सच चानणा है, झूठ अंधेरा है', सत्य-धर्म के रास्ते पर चलने के प्रति, प्रेरित करने के लिए कहा गया, ताकि वे भी कुल दुनियां में, सत्य-धर्म का प्रसार करते हुए, धर्म के ऊपर अपना तन-मन-धन वारने से, न सकुचाएँ और जगत विजयी हों।

ग) हर समय नाम-ध्यान में महाराज जी के साथ ठीक जुड़े रहने के लिए प्रेरित किया गया, व साथ ही साथ, अन्य जो संकल्प कुसंगी के कारण विकारग्रस्त हो, रो-झुख रहे हैं, उन्हें भी शब्द के साथ जुड़ कर, अफुरता से, महाराज जी के

साथ नैन जोड़ने के प्रति उत्साहित कर, प्रसन्नचित्तता से जीवन जीने के योग्य बनाने के लिए कहा गया ताकि वे रोते हुए इंसान भी हँस पड़ें।

घ) तीन वक्त के अखण्ड पाठ द्वारा, प्रबल भक्ति-शक्ति धारण करने के प्रति जाग्रत किया गया ताकि हम बिन हथियारों बिन तीरों विजयी हो, एक पराक्रमी इंसान की तरह, पूर्ण आत्मविश्वास के साथ, अन्य सोए हुए सजनों को भी, इसके प्रति जगाने का समुचित पुरुषार्थ दिखा सकें।

च) अपनी यश और कीर्ति के प्रति सचेत रहने के लिए कहा गया ताकि सांसारिक भाव-स्वभाव के फलस्वरूप, उसमें किसी प्रकार का कोई फ़र्क न पड़े और इसी के साथ हम अन्य कुरस्ते पड़े हुए सजनों को, अधर्म का रास्ता छोड़, सत्य-धर्म के निष्काम मार्ग पर, पुनः अग्रसर होने के लिए प्रेरित कर सकें व इस प्रकार परोपकारी नाम कहावें।

6. 'ब्रह्म स्वरूप है अपना आप, हम तो हैं ओही प्रकाश', इस कथन के अनुरूप, जो प्रकाश या स्वरूप मन-मन्दिर में देखा है, उसी असलियत प्रकाश या स्वरूप को, बाहर हर एक में यानि जग अन्दर देखने के लिए, प्रेरित किया गया ताकि इस कमाल व विशाल ब्रह्म वृत्ति को धार, हम अपने ही प्रतिबिम्ब को, हर एक में देखने के योग्य बनें अर्थात् रूप-रंग-रेखा रहित, ब्रह्म की सर्वव्यापकता का बोध कर सकें व परमेश्वर के सर्गुण-निर्गुण खेल की अभेदता का सत्य हर प्राणी को जना सकें।

7. आत्मा की अजरता-अमरता से परिचित करा, आत्मिक

बल द्वारा, हर परिस्थिति व अवस्था में यथा जन्म-मरण, रोग-सोग, ख़ुशी-ग़मी, मान-अपमान व अमीरी-ग़रीबी में, एक रस बने रहने के लिए, प्रेरित किया गया ताकि अटलता से, सर्व एक आत्मा के भाव में स्थिर होकर व सजन भाव और गृहस्थ धर्म के वचनों पर परिपक्व हो हम, सर्व-सर्व वही ब्रह्म ही ब्रह्म है का साक्षात्कार कर सकें। इस प्रकार यह सत्य जान सकें कि, असलियत स्वरूप ब्रह्म, जैंदा रूप रेखा नहीं रंग, 'ओ३म् विच विशेष भी है, ओ३म् तूं निर्लेप भी है।

इसी सन्दर्भ में अब आगे जानो कि, एकता के प्रतीक, इस समभाव-समदृष्टि के स्कूल से, एक अवस्था में बने रहने हेतु हमें और क्या-क्या बताया गयाः-

8. बैहरूनी वृत्ति को छोड़ कर, अन्दरूनी वृत्ति को धार, अपने मन को सदा परमेश्वर में लीन रखने के लिए, प्रेरित किया गया ताकि हमारा ख़्याल ध्यान वल व ध्यान प्रकाश वल, अखंडता से जुड़ा रहे और हम बाल-अवस्था के चचंल भक्ति-भाव से छुटकारा पा, युवावस्था का भक्ति-भाव अपनाने योग्य बनें। यह हर खलबली को हटा, नादान बच्चों की तरह, दुःखमय जीवन जीने के स्थान पर, आत्मिक ज्ञान प्राप्त कर, नौजवानों की तरह सशक्त होकर, मौन की वृत्ति धार, प्रसन्नतापूर्वक विश्राममय, जीवन जीने की बात है।

9. अपने भाव-स्वभावों को पकड़ते हुए, सुरत (जो है अन्दर का ख़्याल व स्त्री भाव में नज़र आता है) को कंचन यानि निर्मल व उज्ज्वल रखने के लिए प्रेरित किया गया ताकि हम शारीरिक बंधन से मुक्त हो, यथार्थता कामयाबी की ओर बढ़

सकें व सुरत-शब्द के योग द्वारा, आकाशों-आकाश, पातालों-पाताल देख सकें व अपना जीवन सफ़ल बना सकें।

10. घरेलू बातों की कचहरी बन्द कर, सम, संतोष, धैर्य, सच्चाई, धर्म की कचहरी लगाने का निर्देश दिया गया ताकि हम स्वार्थपरता के स्वभाव से विमुक्त हो, परमार्थ का रास्ता अपना सकें व इस प्रकार संतोष, धैर्य, सच्चाई, धर्म, इन चारों सवालों को धारण कर, हल कर सकें और सम पर खड़े हो जाएं।

11. निर्विकारी बनाने हेतु, विकार-वृत्तियों से बचे रहने की युक्तियाँ समझाई गई। इस हेतु हमको यह बताया गया कि, काम ही सब विकारों की जड़ है। इसी से हर प्रकार की कामना उपजती है व कामना पूरी न होने पर क्रोध उत्पन्न होता है।

12. यह भी बताया गया कि पदार्थों को पाने की इच्छा ही, लोभ कहलाती है और यह लोभ-लालच हमें, मोह विकार में फँसा देता है। इस तरह समूलतः निरासक्त, निर्वैर, निर्भय, निर्विकारी, निष्कलंक, जीवन जीने के लिए, हमको कुलनाशक अहंकार से बचने के प्रति भी सावधान किया गया।

13. ब्रह्म नाल ब्रह्म अर्थात् समवृत्ति होने के लिए, इन्द्रियों पर कंट्रोल कर, जितेन्द्रिय बनने की युक्ति समझाई गई ताकि हम गृहस्थाश्रम में रहते हुए, शनैः शनैः अपने दुष्ट विकारों का अंत कर, चिंता, दुःख व उद्वेग आदि से रहित हो, अफुर व शांत अवस्था को धारण कर सकें।

14. सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में वर्णित आत्मिक ज्ञान को प्राप्त करने के लिए, हर प्राणी बराबर का हकदार है अर्थात् इसमें तूं-मैं का कोई सवाल नहीं, यह बताते हुए, विभिन्न युगों से प्रचलित बाल-अवस्था व युवावस्था के भक्ति-भाव के मध्य अंतर को, बखूबी समझाया गया ताकि हम बाल-अवस्था के मनगढ़ंत नाच-टाप वाले, चंचल भक्ति-भाव के स्थान पर, युवावस्था की भक्ति अर्थात् समभाव-समदृष्टि की युक्ति को, अपनाने का महत्त्व समझ सकें। इस प्रकार समभाव-समदृष्टि की युक्ति अपना, अपने संकल्प कुसंगी को संगी बना सकें व संतोष, धैर्य, सच्चाई, धर्म के सवाल हल कर, उच्च बुद्धि, उच्च ख्याल हो जाएं। निःसंदेह ऐसा होने पर सजनों, स्वतः ही नौजवान युवावस्था आ जाएगी और भक्ति प्रबल व शक्ति ताकतवर हो जाएगी।

श्रेष्ठ पद को प्राप्त करने हेतु, हम बुद्धिमत्ता से, सत्य-धर्म का निष्काम भक्ति-भाव, ताकतवर होकर अपना सकें व नेक नीयती से जीवन जीने योग्य बने, उस के लिए हमें और क्या बताया गया उसे अफुर होकर सुनोः-

15. बैहरूनी-वृत्ति की निर्मलता बनाए रखने हेतु

क. व्यक्तिगत स्वच्छता के साथ-साथ, आस-पास के रिहायशी वातावरण की स्वच्छता को बनाए रखने के विषय में, युक्तिसंगत ज्ञान दिया गया तथा अपनी हैसियत के अनुसार, साफ-सुथरा और उजला कपड़ा पहनने के लिए कहा गया।

ख. सर्वांगीण स्वस्थता हेतु, मन पर अंकुश रखते हुए,

हैसियत अनुसार सात्विक, संतुलित व पौष्टिक आहार का, सेवन करने के लिए प्रेरित किया गया।

ग. नीति-अनुसार आचरण व व्यवहार समझाते हुए, आत्मिक ज्ञान अनुरूप, मानवता की मर्यादाओं में बने रह, बाल-बच्चों की पालना प्यार से करने का, सही तरीका बताया गया ताकि शारीरिक-मानसिक स्वच्छता व स्वस्थता को धारण कर, उनके संस्कार अच्छे बन सकें और वे सच्चाई-धर्म की राह पर अग्रसर हो, कुरस्ते से बचे रह सकें। इस हेतु बच्चों को मारने के स्थान पर, कड़ी निगाह से समझाने के लिए कहा गया और दृष्टि ठीक रखते हुए परस्पर सजन-भाव के अनुकूल, सत् बातचीत व परस्पर जी-जी व आप जैसे आदरसूचक शब्दों का, वर्ताव करने के लिए, उत्साहित किया गया ताकि हम अपने गृहस्थाश्रम को ठीक चला सकें। इसका महत्त्व बताते हुए जनाया गया कि ऐसा सुनिश्चित करने पर अन्दरूनी वृत्ति अर्थात् शारीरिक स्वभावों की सफ़ाई करनी सहज हो जाएगी।

16. अन्दरूनी वृत्ति की निर्मलता बनाए रखने हेतु

क. अपनी जिह्वा को स्वतन्त्र करने अर्थात् शब्दों की निर्भयता पूर्ण सार्थक अभिव्यक्ति करने की युक्ति समझाई गई ताकि हम परस्पर अभद्र, कटु व गाली-गलौज युक्त, अप्रिय भाषा का प्रयोग व व्यवहार करने से बचे रह सकें।

ख. संकल्प को स्वच्छ रखने अर्थात् धारणा की शुद्धता सुनिश्चित करने का तरीका बताया गया ताकि संकल्प कुसंगी, सजन और संगी हो जाए और इसके प्रभाव से, त्रेता

से चला आ रहा रोना-झुखना मिट जाए व हमारा संतोष का सवाल हल हो जाए।

ग. दृष्टि को कंचन रखने अर्थात् देखने की शक्ति या वृत्ति की पवित्रता व स्वच्छता बनाए रखने का, युक्तिसंगत ज्ञान दिया गया ताकि हमारे हृदय में परिपूर्ण शुद्धता का वातावरण बना रहे और हम असीम शांति का अनुभव करते हुए, आनन्दमय जीवन जी सकें।

17. सुरत अर्थात् अपने अन्दर के ख़्याल को, शब्द ब्रह्म में ध्यान से स्थिर रखते हुए, हमें आत्मबोध कैसे करना है और तद्नुरूप अपने भाव-स्वभावों का ताना-बाना बुन कर, कैसे प्रकाशित बुद्धि द्वारा, इस जगत में विचरना है, यह सब युक्तिसंगत बताया गया ताकि हमारी सुरत, सद्भावों से श्रृंगारित हो जाए और संतोष के साथ-साथ, हमारा धैर्य का सवाल भी हल हो जाए। इस यत्न द्वारा सजनों हमें, सुरत को कंचन कर, खालस सोना होने के प्रति, उत्साहित किया गया।

18. सच्चाई का सवाल हल करने के लिए, हमें बताया गया कि, सत् बोलचाल अपनाओ व सच का वर्त-वर्ताव करते हुए, अपने शरीर को इस तरह सचखंड बनाओ कि इसकी सुगंधि देवलोक की सुगंधि को भी मात कर दे। इसी तरह धर्म का सवाल हल करने के लिए, हमें समझाया गया कि सत्य को धारण करते हुए 'जो प्रकाश महाराज जी का मन-मन्दिर में देखा है, वही प्रकाश जग अन्दर' देखते हुए, मुकम्मल एक निगाह एक दृष्टि दिखाओ और धर्म के रास्ते पर सीधे विचरते जाओ।

इस तरह हमें जनाया गया कि संतोष, धैर्य, सच्चाई, धर्म के चारों सवाल हल हो जाने पर अर्थात् हृदय के सत्य से प्रकाशित हो जाने पर, सचखंड में विद्यमान, रूप-रंग-रेखा रहित परमेश्वर, निगाह में ठहर जाएगा और हम सतवस्तु में प्रवेश कर जाएंगे। सजनों इस प्रयत्न द्वारा, हमारे ख़्याल यानि सुरत को, सर्गुण में प्रभु की चालें पकड़, यानि रैहणी-बैहणी अपना कर, श्रेष्ठ पद पर आसीन होने के लिए, उत्साहित किया गया ताकि सुरत-शब्द का मेल हो जाए और हमारा आवागमन का चक्कर मिट जाए।

19. तत्पश्चात् हमें सतवस्तु की आचार-संहिता के विषय में बताते हुए कहा गया कि 'सतवस्तु में विचार ते सत्-ज़बान होती है, एक दृष्टि, एकता महान होती है और बिना जप-तप, सिमरण व भजन-बन्दगी के ही एक अवस्था जगत जहान होती है। खुला प्रकाश होता है और कला से सब कुछ उपजता है' । सजनों इस उच्च अवस्था को प्राप्त करने हेतु, हमें इस सत्य से परिचित कराया गया कि 'कलुकाल जा रहा है और सतवस्तु आ रही है', इसीलिए समय रहते ही, अपना जीवन बनाने व प्रभु से मेल खाने हेतु, हमें विचार, सत्-जबान, एक दृष्टि और एक अवस्था में स्थिरता से बने रहने की युक्तियाँ सविस्तार समझाई गई ताकि हम बाल-अवस्था के कर्मकांड युक्त, बंधनमान भक्ति-भाव को छोड़, समभाव-समदृष्टि की युक्ति अनुसार, एक निगाह एक दृष्टि पर फतह पा जाएं और फिर हमारे लिए सम का कोई सवाल न रहे तथा हम दिव्य दृष्टि का सबक़ प्राप्त करने के योग्य बन जाएं।

इस संदर्भ में दिव्य दृष्टि के सबक को प्राप्त कर, सत्य बोध करने के प्रति, हमें उत्साहित करते हुए बताया गया कि यह सबक है 'अपनी असलीयत की पहचान, जेहड़ा मन मन्दिर प्रकाश, ओही असलीयत ज्योति स्वरूप मेरा अपना आप, एक निगाह ओ एक दृष्टि, ओ एक दृष्टि ओ एक दर्शन, जनचर, बनचर, ओ जड़ चेतन ओ एक दर्शन ओ एक दर्शन।' फिर कहा गया कि जो इस सबक अनुसार 'एक निगाह ओ एक दृष्टि' में फर्स्ट, सैकिन्ड और थर्ड डिवीज़न में पास होगा, वही सजन सतवस्तु की चाल अपना पाएगा अर्थात् इस वक्त की शुद्ध कमाई के मुताबिक, सतवस्तु में मौज उड़ा पाएगा। सजनों हम सबको इस आवागमन के चक्कर में न भटकना पड़े, इस हेतु हमें संकल्प पर पूरी तरह से फ़तह पाकर और फ़र्स्ट निकल कर, दिव्य-दृष्टि का सबक लेने के प्रति बार-बार प्रेरित किया गया।

20. हम एक सुपुत्र की तरह, सदाचारी बन, इस आत्मिक ज्ञान की पढ़ाई में फ़र्स्ट का नतीज़ा देने में कामयाब हो सकें, इस हेतु हमें हर क्षण, अपने ख्याल पर ध्यान का पहरा रख, कदम-कदम पर प्राप्त होने वाले शब्द ब्रह्म विचारों अनुसार, परमेश्वर के हुक्म पर बने रहने का तरीका समझाया गया तथा कार्यव्यवहार करते हुए, हर समय अपना ख़्याल परमेश्वर संग जोड़े रखने का आवाहन दिया गया ताकि हम एक निगाह एक दृष्टि हो जावें व इस प्रकार एक ख़्याल हो प्रभु संग मेल खा जावें।

हमें समझाया गया कि इसी प्रयत्न द्वारा, युगों से चला आ रहा, इंसान का संकल्प का झुखना-रोना मिट जाएगा और

इंसान युवावस्था की युक्ति अपना, संकल्प पर पूरी तरह से फ़तह पा, विचार, सत्-ज़बान, एक दृष्टि और एक अवस्था अपना, सतवस्तु में प्रवेश कर जाएगा। फिर जनचर, बनचर, जड़-चेतन में भासित, एक दर्शन सदा दृष्टिगोचर रहेगा।

21. सारतः सजनों हमें फिर से अपने जीवन के प्रधान लक्ष्य की प्राप्ति के प्रति प्रेरित करते हुए कहा गया कि 'एक निगाह ओ एक दृष्टि, ओ एक दृष्टि ओ एक दर्शन, जनचर, बनचर, जड़-चेतन, ओ एक दर्शन ओ एक दर्शन' में इस तरह से स्थित हो जाओ कि स्वतः ही अपनी ब्रह्म अवस्था अर्थात् 'मैं ब्रह्म हूँ' का आभास हो जाए और हम एक भाव हो, इस जगत में नीतियों के अनुसार विचरें भी और नहीं भी विचरें। इस तरह सजनों इस 'ब्रह्म पदवी' को पाकर कर्त्ता भी आप और अकर्त्ता भी आप होने की बात हमें समझाई गई।

अंततः सजनों हमें लगता है कि युवावस्था की इस अति महत्त्वपूर्ण समभाव-समदृष्टि की युक्ति की महत्ता को जानने-समझने के बाद, अब तो हमारे अन्दर, गृहस्थाश्रम में रहते हुए, इन शब्द ब्रह्म विचारों को धारण कर, अपने शरीर को पवित्र करने व खालस सोना हो, प्रभु के साथ प्रभु होने की तीव्र अभिलाषा जाग्रत हो गई होगी। अगर सजनों ऐसा ही है तो, ऐक्य भाव अपना, एकता में आ जाओ और सजन पुरुष कहलाओ।

इस संदर्भ में हमारी सबसे प्रार्थना है कि सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में वर्णित आत्मिक ज्ञान की पढ़ाई के दौरान, अब तक

जो भी जीवन उपयोगी व जीवनदायक शब्द ब्रह्म विचार बताए गए हैं उनको ही इस जगत में, निर्लिप्तता से विचरने का यथार्थ ज्ञान मानो और उन्हीं विचारों अनुसार आचार-व्यवहार अपना कर, इस संतप्त जगत में, पुनः सजन युग की स्थापना कर दो। जानो कि अपना जीवन चरित्र सुन्दर व परम पवित्र बनाने के लिए, दिल लगा कर, ऐसा सुनिश्चित करना आवश्यक है ताकि हमारी वाणी व कर्म दोनों ही अन्यों के लिए जीवनप्रदायक सिद्ध हो व इस तरह हम निष्काम भाव से अपने जीवन कर्त्तव्य धर्मसंगत निभाते हुए, परोपकारी नाम कहाएं। सजनों यही तरीका है कर्म फल से मुक्त रह व परमपद के अधिकारी बन, रोशन नाम कहाने का और इस प्रकार अपने सच्चे घर परमधाम पहुँच विश्राम को पाने का।

आप सब अपने जीवन के इस परम लक्ष्य को पाने में सफल हों इस हेतु हमारी शुभकामनाएँ आप के साथ हैं।

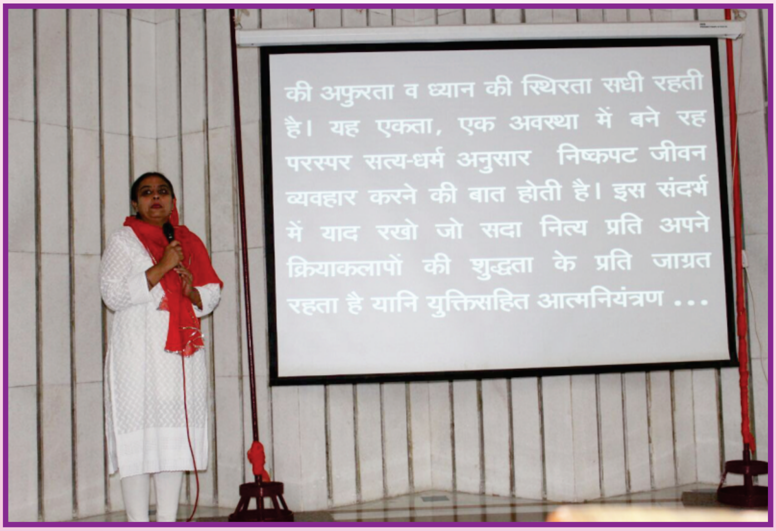

निवेदन

इस पुस्तक को और अधिक जीवन उपयोगी बनाने हेतु आपके सुझाव सादर आमन्त्रित हैं।

SATYUG DARSHAN TRUST (REGD.)

ALLEVIATING PHYSICAL, MENTAL AND SPIRITUAL SUFFERINGS OF HUMAN BEINGS.

info@satyugdarshantrust.org | www.satyugdarshantrust.org

Institutions under the aegis of Satyug Darshan Trust (Regd.)

SATYUG DARSHAN CHARITABLE DISPENSARIES & LABORATORIES

Multidiscipline dispensaries, labs & diagnostic centres spread in 15 cities

www.satyugdarshandispensaries.org

SATYUG DARSHAN VIDYALAYA

Nursery-XII, Co-Ed. English medium, residential & day boarding school. Affiliated to CBSE.

www.satyugdarshanvidyalaya.net

SATYUG DARSHAN INSTITUTE OF EDUCATION & RESEARCH

B.Ed. College for Girls. Affiliated to CRS University, Jind.

www.sdier.org

SATYUG DARSHAN INSTITUTE OF ENGINEERING & TECHNOLOGY

UG College, offering B.Tech. and BBA courses. Co-Ed., residential & day boarding facilities. Affiliated to Maharshi Dayanand University, Rohtak.

www.satyug.edu.in

DHYAN KAKSH

World's first School of Equanimity & Even-sightedness. It is open to all age and gender.

www.schoolofequanimity.com

SATYUG DARSHAN SANGEET KALA KENDRA

Imparting true teachings of music and dance, open to all age and gender. Present in 14 cities. Affiliated to Prayag Sangeet Samiti, Allahabad.

www.satyugdarshansangeet.org

Initiatives of Satyug Darshan Trust on Humanity and Ethics

INTERNATIONAL EQUANIMITY OLYMPIAD

www.equanimityolympiad.in

HUMANITY DEVELOPMENT CLUB

www.awakehumanity.org